अप्रैल, १९३३

[वर्ष ११, खण्ड १
सं० ६, पू० सं० १२६]

वार्षिक चन्दा ६॥)
छः माही चन्दा ३॥)

सम्पादक :—
मुन्शी नवजादिकलाल श्रीवास्तव

विदेश का चन्दा ८॥)
इस अङ्क का मूल्य ॥=)

रङ्ग-भूमि

चित्र-सूची

अँगड़ाई

नाज़ो-अन्दाज़ में, आज़ारो-सितम ढाने में,
तुझसे दो हाथ ज़ियादह तेरी अँगड़ाई है !

FINE ART PRINTING COTTAGE,]
ALLAHABAD.

[चित्रकार——श्री० शफ़ी

633

आध्यात्मिक स्वराज्य हमारा ध्येय, सत्य हमारा साधन और प्रेम हमारी प्रणाली है, जब तक इस पावन अनुष्ठान में हम अविचल हैं, तब तक हमें इसका भय नहीं, कि हमारे विरोधियों की संख्या और शक्ति कितनी है।

वर्ष ११, खण्ड १ | अप्रैल, १९३३ | सं० ६, पू० सं० १२६

हास्य-रुदन

[प्रोफ़ेसर रामकुमार वर्मा, एम० ए०]

जग क्या है, सुख-दुख के स्वप्नों की अस्पष्ट कहानी,
हास्य एक ध्वनि है, रोदन है केवल तोड़ा पानी।
माया की आँखों ने देखी, इन्द्र-धनुष की रेखा,
अरे, अपरिचित स्वप्न-राज्य में, क्या बनता है ज्ञानी।

आँखों की सज्योति पुतली में, अन्धकार है छाया,
शुभ्रचन्द्र के कालेपन में, कितना तत्त्व समाया।
मैं हँसता हूँ, वह रोता है, क्या वैषम्य नहीं है ?
हास्य-रुदन इन दोनों शिशुओं की जननी है माया !!

मैं का है तात्पर्य—विश्व के सत्वभाव का लेखा,
जिसमें है सुख-दुख के अक्षर की मिलती-सी रेखा।
उसे समझ लें फिर सुख-दुख का कुछ अस्तित्व नहीं है,
बन्द आँख से स्वप्न छोड़, क्या विश्व किसी ने देखा ?

अप्रैल, १९३३

भारत में बेकारी

त कई वर्षों से बेकारी की समस्या ने जैसा भीषण रूप धारण कर रक्खा है, उससे संसार के सभी राष्ट्र बड़ी चिन्ता और विपत्ति में पड़ गए हैं। वैसे तो व्यवसाय-क्षेत्र में समय-समय पर उलट-फेर होता ही रहता है, परन्तु इस बार आर्थिक हलचल ने जिस प्रकार संसार के सभी भागों पर एक साथ ही आक्रमण किया है और उसकी अवधि जैसी लम्बी होती जाती है, उसका उदाहरण इतिहास में ऐसा कदाचित् ही मिल सके। वर्तमान समय में संसार में कोई देश नहीं, जो इस व्याधि से पूर्णतया मुक्त हो। जो देश उद्योग-धन्धे तथा कारीगरी में अग्रगण्य हैं, उनकी दशा तो और भी ख़राब है। ऐसे देशों में मज़दूरों की बहुत बड़ी संख्या बेकार हो गई है अथवा आधा-चौथाई समय काम करती है और ऐसे लोगों के भरण-पोषण का भार वहाँ की सरकारों को उठाना पड़ रहा है। यद्यपि इन बेकार लोगों को इतनी ही सहायता दी जाती है, जिससे वे किसी प्रकार अपनी जीवन-रक्षा मात्र कर सकें, तो भी इस काम में प्रतिवर्ष अरबों रुपए ख़र्च करने पड़ते हैं और फल-स्वरूप जनता पर नए-नए करों का असह्य भार पड़ता जाता है। पर अधिकांश देशों में, जिनकी आर्थिक दशा गिरी हुई है अथवा जहाँ की सरकार जनता के प्रति विशेष उत्तर-दायित्व का अनुभव नहीं करती, वहाँ बेकार लोगों को या तो भूखों मरना पड़ता है या किसी की उदारता का आश्रय लेना पड़ता है।

भारत की दशा

इस दृष्टि से भारतवर्ष की दशा अन्य समस्त देशों की अपेक्षा अधिक शोचनीय है। क्योंकि यहाँ की सी बेकारी तथा भीषण दरिद्रता शायद ही कहीं दूसरी जगह मिले। परन्तु जब 'लीग ऑफ़ नेशन्स' जैसी अन्तर्राष्ट्रीय संस्था बेकारों का हिसाब प्रकाशित करती है, तो उसमें भारत का नाम भी नहीं रहता। अन्य देशों की सरकारें प्रतिमास अपने यहाँ के बेकारों की संख्या के घटने-बढ़ने की आलोचना करती हैं, पर इस देश में आज तक किसी ने इस बात का अनुमान भी नहीं लगाया कि यहाँ बेकारों की तादाद कितनी है। इसका प्रधान कारण यह है कि भारत कृषि-प्रधान देश है और यहाँ की अधिकांश जन-संख्या बड़े-बड़े व्यवसाय-केन्द्रों में नहीं, वरन् सात लाख छोटे-छोटे गाँवों और क़स्बों

में रहती है। जो लोग बड़े शहरों के कारख़ानों में मज़दूरी करते हैं, उनका भी एक बहुत बड़ा हिस्सा ग्रामीणों का ही होता है, जो नौकरी छूट जाने पर फिर अपने घरों को ही लौट जाते हैं। ऐसी दशा में जब तक विशेष प्रयत्न न किया जाय, तब तक यहाँ के बेकारों की संख्या तथा उनकी अवस्था का ज्ञान प्राप्त कर सकना सम्भव नहीं है। इसके अतिरिक्त इस देश के ग़रीब तथा भूखों मरने वाले लोग सङ्गठित होकर अपनी शिकायतों को शासकों अथवा संसार के सम्मुख प्रकट करना भी नहीं जानते। वे व्यक्तिगत रूप से कष्टों को सहन करते रहते हैं और सहते-सहते मर जाते हैं। उनके लिए न किसी तरह की योजना बनाई जाती है, न उनको सार्वजनिक सहायता का अधिकारी माना जाता है। यदि कभी यह असन्तोष बहुत बढ़ जाने पर किसी तरह के आन्दोलन के रूप में प्रकट भी होता है, तो उसको राजद्रोह या शासकों का विरोध कह कर दबा दिया जाता है। अधिकार और शक्ति-सम्पन्न लोग ग़रीबों के प्रति कभी सहानुभूति के दो-चार शब्द कह देते हैं, पर उनके वास्तविक उद्धार की कोई चेष्टा नहीं की जाती।

किसानों की दुर्दशा

जैसा हम कह चुके हैं, इस देश में सब से अधिक संख्या किसानों की है और वर्तमान आर्थिक सङ्कट के कारण कहीं-कहीं तो उनकी अवस्था बेकारी से भी अधिक भयङ्कर हो गई है। उदाहरणार्थ गत दो वर्षों से गुड़ का भाव इतना गिर गया है कि ऊख की खेती करने वाले किसानों की लागत भी वसूल नहीं होती और फलस्वरूप वे ऋण के भार से दबते जाते हैं। खेती से उत्पन्न अन्य पदार्थों की दर भी पूर्वापेक्षा बहुत घट गई है, जिससे किसानों की आमदनी दिन पर दिन कम होती जाती है और उनका जीवन-निर्वाह हो सकना अत्यन्त कठिन हो गया है। खेती की आमदनी घट जाने से उनमें काम करने वाले मज़दूरों की मज़दूरी भी कम हो गई है और कितने ही तो बिना काम के ठोकरें खाते फिरते हैं। इसमें सन्देह नहीं कि इन लोगों को सहायता देना तथा इनकी दशा सुधारना बहुत ख़र्च तथा बड़े आयोजन का काम है, पर यदि सरकार इस तरफ़ ध्यान देती और अपनी शक्ति तथा साधनों का उपयोग इन लोगों के हित के लिए करती, तो इनके कष्टों में बहुत-कुछ कमी हो सकती थी। इस अवस्था में सरकार का कर्तव्य था कि टैक्सों तथा रेल के भाड़े आदि में कमी करके तथा अन्य सुविधाएँ देकर किसानों की पैदावार को उपयुक्त मण्डी में पहुँचाने का प्रबन्ध करती; किस चीज़ का बोना विशेष लाभदायक है, इसकी विशेषज्ञों द्वारा जाँच करा के किसानों को सूचना देती रहती और उनमें खेती के ऐसे आधुनिक तथा सरल साधनों का प्रचार करती, जिनसे वे कम ख़र्च में अच्छी फ़सल उत्पन्न कर सकते। वह ज़मींदारों तथा बौहरों की असाधारण लूट से भी किसानों की रक्षा कर सकती थी और ख़ुद भी लगान में इतनी कमी कर सकती थी, जिससे इन ग़रीबों के पास कम से कम इतना तो बच जाता जिससे वे अपने पेट भर सकते और तन ढँक सकते। खेती के अतिरिक्त पशु-पालन, दूध-घी का व्यवसाय, पक्षियों का व्यवसाय, फल उत्पन्न करना आदि और भी कितने ही ऐसे काम हैं, जिनका भूमि से सम्बन्ध है और जिनमें विशेष लाभ रहता है। यदि सरकार गाँव वालों को इन व्यवसायों की तरफ़ प्रोत्साहित करती और आवश्यक सहायता भी देती, तो उनका सङ्कट किसी अंश में टल सकता था।

सरकार ने इस देश की कृषि की उन्नति के लिए एक कृषि-विभाग स्थापित किया है। साल में कई लाख रुपए इसके लिए ख़र्च भी कर देती है। आधुनिक वैज्ञानिक ढङ्ग की खेती की ओर इस देश में किसानों का ध्यान आकर्षित करने के लिए कभी-कभी कृषि-प्रदर्शनियों का भी आयोजन हो जाता है। परन्तु इस कोरे उपदेश से इस देश के ग़रीब किसानों का विशेष उपकार नहीं होता। क्योंकि जो बीज के लिए असाधारण ब्याज देकर महाजनों से रुपए उधार लेते हैं, वे मूल्यवान वैज्ञानिक हल और खाद का प्रबन्ध कैसे कर सकते हैं? इस देश के किसानों को तो ऐसे सरकारी कृषि-विभाग की आवश्यकता है, जो उन्हें नाम मात्र के ब्याज पर रुपए उधार दे, स्वल्प भाड़े पर वैज्ञानिक हल प्रदान करे और खाद आदि के सम्बन्ध में आवश्यक उपदेश प्रदान किया करे। परन्तु सदैव आर्थिक कमी का रोना रोने वाली और हर साल कर पर कर लादते जाने वाली सरकार से ऐसी आशा करना, केवल विडम्बना है।

फलतः सरकारी कृषि-विभाग किसानों के आँसू पोंछने के एक व्यर्थ प्रयास के सिवा और कुछ नहीं है।

कारख़ानों के मज़दूर

यद्यपि भारतवर्ष इङ्गलैण्ड, जर्मनी और जापान आदि व्यवसाय-प्रधान देशों के मुक़ाबले में उद्योग-धन्धे की दृष्टि से बहुत पिछड़ा हुआ है तो भी यहाँ के कारख़ानों, कोयले तथा धातुओं की खानों, चाय के बग़ीचों, रेलवे, बन्दरगाहों आदि में क़रीब दो-डेढ़ करोड़ मज़दूर काम करते हैं। वर्तमान आर्थिक दुरवस्था का प्रभाव इन तमाम मज़दूरों पर बहुत बुरा पड़ा है और उनकी आमदनी पूर्वापेक्षा बहुत घट गई है। आजकल ऐसे कारख़ानों की संख्या बहुत कम है; जिन्होंने अपने मज़दूरों की संख्या अथवा काम करने के घण्टे कम नहीं किए हैं। बम्बई की कपड़े की मिलों में सन् १९२६ में जहाँ १ लाख ४८ हज़ार आदमी काम करते थे, सन् १९३० में उनकी संख्या केवल १ लाख १८ हज़ार रह गई। इसी प्रकार जमशेदपुर के लोहे के कारख़ाने में सन् १९२६ में जहाँ ३२॥ हज़ार मज़दूर काम करते थे, वहाँ १९३० में उनकी संख्या केवल २८॥ हज़ार रह गई। यही दशा अन्य व्यवसायों की भी हुई है। रेलवे वर्कशॉपों में पाँच-छः वर्ष के भीतर मज़दूरों की संख्या लगभग दो तिहाई रह गई है। पर दो-चार स्थानों के मज़दूरों को छोड़ कर इस देश के किसानों की भाँति यहाँ के मज़दूर भी अशिक्षित और सङ्गठनशक्ति-विहीन हैं और बेकारी के कष्टों को चुपचाप सहन करने के सिवा उनको कोई अन्य मार्ग दिखलाई नहीं देता। यदि कहीं उनकी एकाध संस्था स्थापित भी हुई है, तो वह प्रायः आरम्भिक दशा में है और मालिकों के विरोध के कारण उसका अस्तित्व भी अधिक दिनों तक स्थिर रह सकना कठिन होता है। दूसरा कारण यह है कि गाँवों से सम्बन्ध-विच्छेद न करने तथा संयुक्त कुटुम्ब-प्रथा के कारण बेकार रहने वाले कितने ही लोगों को किसी प्रकार खाने को मिल जाता है और बाहरी लोग उनकी दुर्दशा को अनुभव नहीं कर सकते।

मज़दूरों की बेकारी के दो प्रधान कारण हैं। एक बिक्री के घट जाने अथवा विदेशी माल की आमदनी के बढ़ जाने से स्थानीय व्यापार का मन्दा पड़ जाता और दूसरे मैशीनों तथा कारख़ानों के प्रबन्ध में इस प्रकार उन्नति होना, जिससे नियत कार्य पहले की अपेक्षा अल्पसंख्यक मज़दूरों द्वारा कराया जा सके। इनमें से पहली अवस्था तो अस्थायी है और सोने के थोड़े से लोगों के पास इकट्ठे हो जाने, विभिन्न देशों के सिक्के की दर गिर जाने तथा एक देश में दूसरे देशों के माल पर अत्यधिक कर लगाए जाने के फल-स्वरूप उसका जन्म हुआ है। जब पारस्परिक समझौते अथवा अन्तर्राष्ट्रीय विग्रह द्वारा ये कारण दूर हो जाएँगे, तो इस अवस्था में भी परिवर्तन हो जायगा। पर दूसरा कारण, अर्थात् मैशीनों और प्रबन्ध में सुधार तथा परिवर्तन होना एक स्थायी बात है, और इसके कारण जो बेकारी उत्पन्न होती है, वह तब तक दूर नहीं हो सकती जब तक मज़दूरों से वर्तमान समय की भाँति यथाशक्ति अधिक काम कराके थोड़ी मज़दूरी दी जाती है। यह समस्या केवल भारत से ही सम्बन्ध नहीं रखती, वरन् संसार के सभी अर्थशास्त्री, राजनीतिज्ञ तथा व्यवसायी इस पर विचार कर रहे हैं और सभी अन्त में इसी निर्णय पर पहुँचे हैं कि यदि बेकारी को मिटा कर संसार में वास्तविक शान्ति और सुव्यवस्था स्थापित करना है तो इसका एकमात्र उपाय मज़दूरों के वेतन को बिना घटाए उनसे वर्तमान समय की अपेक्षा कम काम कराना है। हाल में जेनेवा के इण्टर नेशनल लेबर ऑफ़िस ने, जो 'लीग ऑफ़ नेशन्स' का एक अङ्ग है और जिसकी कॉन्फ़्रेन्सों में संसार के सभी देशों के सरकारी प्रतिनिधि भाग लेते हैं, एक रिपोर्ट प्रकाशित की थी; जिसमें स्पष्ट कहा गया था कि जब तक मज़दूरों से काम कराने के घण्टों को घटा कर प्रति सप्ताह ४० या ३६ न कर दिया जायगा अर्थात् जब तक उनसे ९-१० घण्टे के बजाय ६-७ घण्टे प्रतिदिन काम न लिया जायगा, तब तक इस समस्या के हल हो सकने की कोई आशा नहीं है। कुछ दिन पहले ब्रिटिश ट्रेड-यूनियन ने भी एक प्रस्ताव पास किया था, जिसमें समस्त देशों की सरकारों से मिल कर ४० घण्टे का सप्ताह जारी करने का आग्रह किया गया था, ताकि आर्थिक जगत में फिर से शान्ति स्थापित हो सके। इटली के प्रतिनिधि सीन्योर मिचेलिस ने इण्टरनेशनल ऑफ़िस को एक पत्र में सूचना दी थी कि

बेकार मज़दूरों को फिर से काम में लगाने के लिए यह आवश्यक है कि अन्तर्राष्ट्रीय समझौते द्वारा काम करने के घण्टों को घटा कर नियमित कर दिया जाय और जहाँ तक सम्भव हो, इस विषय में सब देश एक ही नियम के अनुसार आचरण करें।" फ्रान्स, जर्मनी, अमेरिका, ऑस्ट्रिया, ज़ैकोस्लोवैकिया और बेलजियम की सरकारें भी इस प्रश्न पर विचार कर चुकी हैं और प्रायः सब इससे सहानुभूति रखती हैं। पर तो भी इस आशङ्का के कारण कि यदि कुछ देश काम करने के घण्टों में कमी कर दें और कुछ पूर्ववत् आचरण करते रहें, तो इससे उनमें घोर असमानता उत्पन्न हो जायगी और वे बाज़ार में एक दूसरे की प्रतिद्वन्दिता न कर सकेंगे, कोई देश इस विषय में उस समय तक क़दम बढ़ाने को राज़ी नहीं होता, जब तक इस आशय के किसी समझौते पर समस्त राष्ट्र सहमत नहीं हो जाते।

यद्यपि अभी तक भारत के कारख़ानों के प्रबन्ध में बहुत कम उन्नति हुई है और मैशीनें भी अधिकांश में पुराने ढङ्ग की ही चल रही हैं, तो भी उपर्युक्त नियम इस देश के श्रमजीवियों की हित की दृष्टि से बहुत लाभजनक है। इसके फल से यहाँ के कई लाख बेकार मज़दूरों को काम मिल जायगा और श्रमजीवियों को पशुओं की तरह रात-दिन पिसते रहने के बजाय मनुष्य-जीवन के सुख उपभोग करने का कुछ अवसर मिल सकेगा। आजकल इन लोगों को प्रायः १० घण्टे काम करना पड़ता है, जिससे उनको ज्ञान-प्राप्ति और मनोविनोद के लिए तो क्या, समुचित विश्राम करने और खाने-पीने के लिए भी यथेष्ट समय नहीं मिलता। यदि कारख़ानों के मालिक तथा पूँजीपति मैशीनों की उपयोगिता तथा उनकी कार्यकारिणी शक्ति के बढ़ने का लाभ अपने ही हिस्से में न रक्खें और श्रमजीवियों को भी उसमें से कुछ बाँट दें, तो इससे संसार का बड़ा उपकार हो सकता है। ऐसा होने से वर्तमान समय की सी विकट आर्थिक हलचल उत्पन्न होने की सम्भावना कम हो जायगी तथा मज़दूरों के कष्टों तथा असन्तोष में भी बहुत अन्तर पड़ जायगा।

पढ़े-लिखे लोग

सबसे अधिक कष्टमय बेकारी हमारे देश में साधारण स्थिति के पढ़े-लिखे लोगों की है। ये लोग न खेती कर सकते हैं, न मज़दूरी करने की उनको आदत है और न वे किसी तरह की कारीगरी जानते हैं। उनके लिए एकमात्र मार्ग सरकारी नौकरी, ऑफ़िसों की क्लर्की, हिसाब-किताब रखना, अथवा किसी व्यवसायी का एजेण्ट आदि बन कर जीवन-निर्वाह करना है। वर्तमान समय में, जबकि सब प्रकार के व्यवसायों में ख़र्च घटाने की चेष्टा की जा रही है और सरकार भी कितने ही विभागों को तोड़ कर तथा कितने ही विभागों को संयुक्त करके थोड़े नौकरों द्वारा काम चलाना चाहती है, इन लोगों की दुर्दशा अवर्णनीय हो गई है। मज़दूरों की तरह इनके लिए यह भी सम्भव नहीं कि चाहे जो काम करके दो-चार आने रोज़ कमा लें और उसीसे आधा पेट खाकर दिन काट लें। इनको सबसे पहले अपनी 'इज़्ज़त' का ख़्याल रहता है और कोई ऐसा काम, जिसे सर्वसाधारण 'छोटा' समझते हैं, ये नहीं कर सकते। पर इसमें इन विचारों का दोष बहुत कम है। इनको जीवन के आरम्भ से शिक्षा ही इस प्रकार की दी गई है कि वे बाबू कहला के १५-२० रुपए की नौकरी करना गौरवास्पद समझते हैं, पर मज़दूरी या शिल्पकला द्वारा २५-३० रुपए कमाना उनके लिए अपमान की बात है। हमारे देश में जो शिक्षा-प्रणाली आज से सौ-सवा सौ वर्ष पूर्व जारी की गई थी वही आज भी प्रचलित है। खेद है कि हमारे शासकों ने समय के परिवर्तन की गति पर ध्यान देकर उसके अनुसार शिक्षा-प्रणाली को बदलते रहने की कभी चेष्टा नहीं की। यद्यपि आजकल यूनीवर्सिटियों के एम० ए० और बी० ए० डिग्रीधारी तीस-चालीस रुपए की नौकरी के लिए एक ऑफ़िस से दूसरे ऑफ़िस में मारे-मारे फिरते हैं और कितने ही एल्-एल्० बी० अदालतों में दस रुपए महीना भी नहीं कमा सकते, तो भी अधिकारियों ने इस प्रकार की शिक्षा देने वाले कॉलेजों को बदस्तूर क़ायम रक्खा है और प्रति वर्ष ऐसे उपाधिधारियों की एक नई सेना तैयार कर दी जाती है। यदि इस देश की यूनीवर्सिटियाँ कुछ वर्षों के लिए साहित्य और क़ानून की परीक्षाओं को बन्द करके विद्यार्थियों को ऐसे विषयों की शिक्षा देने लगतीं, जिनसे उनको रोटी कमा सकने में सुविधा होती तो इससे देश का बहुत-कुछ उपकार हो सकता।

सरकार का कर्तव्य

यह कहना अनावश्यक है कि इस प्रकार की देश-व्यापी समस्या का हल कर सकना किसी व्यक्ति विशेष अथवा किसी सार्वजनिक संस्था का कार्य नहीं है, वरन् उसका भार सरकार पर है। यदि किसी देश के बहुसंख्यक लोग भूखों मरते हैं और नङ्गे फिरते हैं तो इसका उत्तरदायित्व उस देश के शासनकर्ताओं पर ही समझा जाता है। यदि सरकार को सचमुच क़ानून और शान्ति की रक्षा की चिन्ता है तो उसे सबसे पहले इस बेकारी के ख़तरे का मुक़ाबला करना चाहिए। किसी भी देश के क़ानून और शान्ति की रक्षा के लिए इससे बढ़ कर भयजनक बात दूसरी नहीं हो सकती कि वहाँ के लाखों पढ़े-लिखे अथवा काम कर सकने योग्य व्यक्ति बेकार फिरते रहें और कोई उनको जीवन-निर्वाह का साधन प्राप्त कराने की चेष्टा न करें। ऐसे देश के भविष्य के उज्ज्वल हो सकने की आशा रखना व्यर्थ है और न ऐसे राष्ट्र के निवासी कभी सच्चे सुख और सन्तोष का अनुभव कर सकते हैं। इसलिए यदि सरकार वास्तव में अपना और जनता का कल्याण चाहती है तो उसको अशान्ति और असन्तोष के मूल पर ही कुठाराघात करना चाहिए और यह तभी हो सकता है जब उद्योग-धन्धों की वृद्धि, व्यवसाय के संरक्षण और शिक्षा-प्रणाली के सुधार द्वारा देश में सर्वत्र फैली हुई बेकारी का प्रतिकार किया जाय।

❀ ❀ ❀

चीन-जापान सङ्घर्ष

जापान के सम्बन्ध में भारतीय पाठकों का ज्ञान बहुत अल्प और अधूरा है। एक समय था जबकि वे जापान को एशिया के उद्धारक की दृष्टि से देखते थे। विशेषतः जब जापान ने विशालकाय रूस को रण-क्षेत्र में पछाड़ दिया तब से उसका सिक्का भारतवासियों पर अच्छी तरह जम गया और वे उसे आदर्श की भाँति मानने लगे। तभी से उन्होंने जापान को अपना सहधर्मी और आत्मीय बतलाना भी आरम्भ किया और प्रत्येक बात में जापान का पक्ष ग्रहण करना तथा उसका अनुकरण करना प्रशंसनीय समझा जाने लगा। जापान की सफलता तथा उन्नति पर भारतवासी गर्व करते थे और स्वदेशी के अभाव में जापानी वस्तुओं के उपयोग पर विशेष रूप से ज़ोर दिया जाता था। कितने ही लोग तो जापानी माल को अर्द्ध-स्वदेशी तक मानते थे।

परन्तु देखते-देखते ज़माना बदल गया। जो जापान एशिया के निर्बल देशों का उद्धारक तथा रक्षक समझा जाता था, वह साम्राज्यवाद की नीति का अनुयायी बन कर अपने पड़ोसियों को पराधीन बनाने का उद्योग करने लगा। आरम्भ में उसने कोरिया पर हाथ साफ़ किया। वहाँ के निरीह अधिवासियों पर घोर अत्याचार किए गए और उनको सब प्रकार से दुर्दशाग्रस्त कर दिया गया। उन्होंने स्वाधीन होने अथवा शासन-सुधार की जो चेष्टाएँ कीं उनको पाशविक बल द्वारा कुचल डाला गया। कोरिया के पश्चात् जापान ने चीन के मञ्चूरिया प्रान्त पर अपना पञ्जा फैलाया। यद्यपि मञ्चूरिया की समस्या ने दो-एक वर्ष से ही विकट रूप धारण किया है, पर वहाँ जापानी सत्ता का बीज रूस-जापान-युद्ध के पश्चात् सन् १९०६ से ही बो दिया गया था। दरअसल रूस-जापान संग्राम का एक प्रधान कारण मञ्चूरिया के प्रभुत्व का प्रश्न भी था। उससे पूर्व इस प्रदेश पर रूस का प्रभाव था, वहाँ पर रूस वालों ने चीन की सरकार से कितने ही विशेषाधिकार प्राप्त कर लिए थे और ६९० मील लम्बी एक रेलवे लाइन भी बनाई थी, जिसका उद्देश्य युद्ध-काल में जापान की तरफ़ जल्दी से सेना भेजना था। रूस की पराजय के फल-स्वरूप इस रेलवे लाइन पर जापान का अधिकार हो गया और मञ्चूरिया में रूस को जो विशेषाधिकार प्राप्त थे वे भी उसको मिल गए। जैसे ही यह रेलवे लाइन जापान के अधिकार में आई और उसे उस प्रदेश में पैर जमाने का अवसर मिला वैसे ही वहाँ की परिस्थिति बदलने लगी और दस-पन्द्रह वर्ष के भीतर ही उसकी कायापलट हो गई। जो रेलवे लाइन रूस ने केवल युद्ध के प्रयोजन से बनाई थी और जिसमें एक कौड़ी के लाभ की भी आशा न थी, वह व्यवसायशील जापानियों के अधिकार में आकर कामधेनु बन गई। जापान ने रेल के आसपास के जङ्गली और उजाड़ प्रदेश को मञ्चूरिया के व्यापार-व्यवसाय तथा सभ्यता

का केन्द्र बना दिया। वह इस रेल से केवल मुसाफ़िरों और माल को भेजने का ही काम नहीं करता, वरन् इसके द्वारा उसने मन्चूरिया के सार्वजनिक जीवन के प्रत्येक विभाग में प्रवेश कर लिया है और वहाँ पर अपनी जड़ ख़ूब मज़बूती के साथ जमा ली है। रेल के आसपास पच्चीस नए नगर बसाए गए हैं और तमाम शहरों में सड़कों, पुलों, रोशनी, पार्क और नालियों का आधुनिक ढङ्ग से प्रबन्ध किया गया है। रेलवे के भूतत्व-विभाग ने मन्चूरिया में लोहे और कोयले की खानों का पता लगाया है और रेलवे की प्रयोगशाला ने वहाँ पर कितने ही व्यवसायों की नींव डाली है। जापानियों ने वहाँ पर १६० स्कूल और कॉलेज स्थापित किए हैं, जिनमें क़रीब ३०हज़ार विद्यार्थी शिक्षा पाते हैं। इन सब उपायों से जापान का प्रभाव उस प्रदेश में बहुत अच्छी तरह जम गया और उसके कितने ही सहायक भी उत्पन्न हो गए। इसके अतिरिक्त प्रति वर्ष हज़ारों जापानी वहाँ जाकर बसाए जाने लगे, जिनको जापान-सरकार की तरफ़ से सब प्रकार के सुभीते दिए गए।

जब जापान ने समझ लिया कि अब उसकी स्थिति काफ़ी मज़बूत हो गई है, तो उसने मन्चूरिया में प्रत्यक्ष रूप से अपनी शासन-सत्ता जमाने की चालें चलनी आरम्भ कीं। १८ सितम्बर १९३१ की रात को रेलवे की सीमा में रहने वाले जापानी सिपाहियों ने मुकदन (मन्चूरिया की राजधानी) में रहने वाली चीनी सेना पर अकस्मात् आक्रमण किया और दो-तीन सप्ताह के भीतर उसे उस प्रदेश की सीमा के बाहर खदेड़ दिया। इसके पश्चात् वे अन्य नगरों में स्थित सेना को निकालने लगे और १९३२ के फ़रवरी तक सम्पूर्ण मन्चूरिया जापानियों के अधिकार में आ गया। बाहरी दुनिया को दिखलाने के लिए उन्होंने प्रत्येक प्रान्त में मन्चूरिया ही के किसी सरदार या सेनापति को शासक बना दिया, जो बिना जापानी अधिकारियों की अनुमति के अँगुली भी नहीं हिला सकता था। ९ मार्च १९३२ को मुकदन में समस्त प्रान्तों की प्रतिनिधि-स्वरूप एक केन्द्रीय सरकार की स्थापना की गई और चीन के भूतपूर्व पद-च्युत सम्राट हेनरी पूयी को, जो गद्दी से उतारे जाने के बाद से जापानियों की संरक्षकता में रहता था, उसका अधिपति नियत किया गया। इस नवीन शासन के प्रत्येक विभाग के प्रधान सञ्चालक जापानी नियत किए गए और उन्हीं के द्वारा नियत एक बोर्ड अथवा मन्त्रि-मण्डल इसकी नीति तथा कार्य-प्रणाली का निर्देश करने लगा। नई सरकार ने जापान की सरकार के साथ एक सन्धि की, जिससे मन्चूरिया व्यवहारिक दृष्टि से जापानियों का एक प्रदेश मात्र बन गया।

जापानियों ने चीन की मुकदन-स्थित मुख्य सेना को तो पहले ही हल्ले में चीन की बड़ी दीवार के पार भगा दिया था, पर प्रान्तीय सेनाओं को देश से बाहर निकाल सकना इतना सहज न था। इन स्थानों में रेल तथा सड़कों का अभाव था और सेना के आवागमन में कठिनाई होती थी। चीनी सेनाएँ जापानी सेनाओं का खुले मैदान मुक़ाबला कर सकने में असमर्थ होने के कारण तितर-बितर हो गईं और छोटे-छोटे दलों में बँट कर गुप्त रूप से शत्रु का मुक़ाबला करने लगीं। इसके अतिरिक्त वहाँ कितने ही शक्तिशाली लुटेरों के दल पहले से मौजूद थे। इन दोनों से जापानियों की आकांक्षाओं में बाधा पड़ने लगी तथा उनको दबाने में बहुत अधिक कठिनाई पड़ने लगी।

जापान के इस अन्याय तथा अपहरण-नीति के विरुद्ध चीन ने 'लीग ऑफ़ नेशन्स' के सामने फ़रियाद की। 'लीग ऑफ़ नेशन्स' के नियमों तथा 'कीलॉग पेक्ट' आदि अन्य अन्तर्राष्ट्रीय समझौतों के अनुसार जापान का यह कार्य संसार की शान्ति भङ्ग करने वाला था और एक सदस्य की हैसियत से जापान इस विषय में लीग का निर्णय मानने को बाध्य था। पर जब यह प्रश्न लीग की एसेम्बली के सम्मुख पेश हुआ, तो उसके सदस्य बड़ी दुविधा में पड़ गए। क्योंकि एक ओर तो लीग का एक मुख्य सदस्य ऐसा कार्य कर रहा था, जिससे लीग के उद्देश्यों पर हरताल फिरती थी, और दूसरी ओर एक प्रथम श्रेणी के शक्तिशाली राष्ट्र से झगड़ा मोल लेने का भय था। इसके अतिरिक्त लीग के प्रधान सदस्य-राष्ट्र स्वयं ऐसी नीति के अनुयायी थे और चीन के दबे रहने में उनका भी स्वार्थ था। ऐसी दशा में जो होना था, वही हुआ और लीग दोनों राष्ट्रों में समझौता कराने की ऊपरी चेष्टा के सिवा कुछ न कर सकी। इस बीच में ज्यों-ज्यों समय गुज़रता जाता था, जापान मन्चूरिया में

अपनी ताक़त बढ़ाता जाता था और वहाँ के निवासियों में से अपने सहायक बनाता जाता था। इसके विरुद्ध चीन संसार के सामने न्याय की दुहाई दे रहा था। अन्त में कई अधिवेशनों में वादविवाद होने के पश्चात् इस मामले की जाँच के लिए एक कमीशन नियत किया गया। पर इस कमीशन के प्रस्ताव को स्वीकार करते समय जापान ने एक पख यह लगा दी कि इस कमीशन की जाँच के कार्य-काल में डाकुओं और अन्य विद्रोहियों के आक्रमण से मन्चूरिया-प्रवासी जापानियों के जान और माल की रक्षा के लिए जापान को सैनिक कार्यवाही करने का अधिकार रहेगा। इस विशेषाधिकार की आड़ में जापान को चीनी सेनाओं को, जो इस समय सङ्गठन-हीन होकर स्वतन्त्र रूप से देश की स्वतन्त्रता की रक्षा की चेष्टा कर रही थीं, दबाने का पूर्ण सुयोग मिल गया।

लीग द्वारा नियत लिटन कमीशन ने मौक़े पर जाकर परिस्थिति का अध्ययन किया और उसके सदस्य इस निर्णय पर पहुँचे कि इस घटना में ज़बर्दस्ती जापान की तरफ़ से ही की गई है और न्याय की रक्षा तभी हो सकती है, जब कि वह मन्चूरिया का शासन-भार पूर्णतया चीन-सरकार को सौंप कर अलग हो जाय। पर जापानी राजनीतिज्ञ ऐसी रिपोर्टों की कब परवाह करने वाले थे। उन्होंने मन्चूरिया को छोड़ने के बजाय लीग की मेम्बरी से ही स्तीफ़ा देने की धमकी दी।

२१ नवम्बर, १९३२ को लीग की कौन्सिल का अधिवेशन हुआ, जिसमें जापान और चीन दोनों के प्रतिनिधि मौजूद थे। वहाँ पर उन दोनों ने अपने पक्ष-समर्थन में जो बयान दिए उससे एक निष्पक्ष व्यक्ति इसी निर्णय पर पहुँच सकता है कि जापान चीन को निर्बल देख कर अपनी शक्ति का दुरुपयोग कर रहा है। जापानी प्रतिनिधि मत्सुका के कथन का सारांश यह था कि जापान ने गत वर्ष जो कार्यवाही की है, उसका आधार आत्म-रक्षा था। चीन में जो जापानी माल के बॉयकॉट का आन्दोलन चल रहा है, उससे जापान को बहुत हानि पहुँची है। चीन में कम्यूनिज़्म और लुटेरों के कारण जैसी अव्यवस्था हो रही है; वह जापान तथा संसार के लिए बड़े भय का कारण है। जापान ने किसी सन्धि को नहीं तोड़ा है, क्योंकि मि० कीलॉग के सिद्धान्तानुसार "आत्म-रक्षा का अधिकार प्रत्येक स्वतन्त्र राष्ट्र को प्राप्त है और उसे प्रत्येक सन्धि-पत्र में समाविष्ट मान लेना चाहिए।" अमेरिका की शासन-सभा के एक प्रस्ताव में यह भी कहा गया है कि "आत्म-रक्षा के अधिकार का उपयोग अपने राष्ट्र की सीमाओं के बाहर भी किया जा सकता है और प्रायः किया जाता है।" इस सिद्धान्त को दृष्टि-गोचर रखते हुए जापान को दोषी ठहराना अन्याय है। उसने जो कुछ किया है, आत्म-रक्षार्थ किया है। कितने ही वर्षों से चीन की अवस्था संसार के लिए भयजनक हो रही है और जापान सुदूर पूर्व की स्थिति को दृढ़ तथा सुरक्षित बनाने की चेष्टा करता आया है।

जापानी प्रतिनिधि के बयान का खण्डन करते हुए चीन की तरफ़ से वेलिङ्गटन कू ने बतलाया कि यदि चीन की दशा वैसी ही अव्यवस्थापूर्ण होती, जैसा कि कहा जाता है, तो उसे एक राष्ट्र की हैसियत से लीग का सदस्य न बनाया जाता। अन्य राष्ट्रों के साथ उसका व्यापार बराबर बढ़ता जाता है और दूसरे देशों के साथ उसने जो सन्धियाँ की हैं, उनका वह सन्तोषजनक रीति से पालन कर रहा है। मन्चूरिया और शङ्घाई पर आक्रमण करने से जापान का उद्देश्य यही है कि वह धीरे-धीरे समस्त चीन पर अधिकार कर ले। चीन का बॉयकॉट आन्दोलन आत्म-रक्षा का साधन है और उसका जन्म बाहरी कारणों से हुआ है। गत २५ वर्षों में नौ बार जापानी माल के बॉयकॉट का आन्दोलन उत्पन्न हो चुका है और उसका कारण चीन के स्वत्वों पर जापान का आक्रमण करना ही है। अन्यथा चीन किसी विदेशी जाति से द्वेष नहीं करता। इस समय चीन में ८२०० विदेशी व्यापारिक कार्यालय हैं, जो स्वतन्त्रतापूर्वक व्यवसाय कर रहे हैं। यदि लीग इस समस्या के हल करने में देर लगाएगी तो उसके फल से रक्तपात की वृद्धि होगी और मन्चूरिया में निवास करने वाले तीन करोड़ चीनियों को अपार कष्ट भोगने पड़ेंगे।

उपर्युक्त बयानों से स्पष्ट प्रकट होता है कि जापान निश्चयात्मक रूप से पश्चिमी साम्राज्यवादी देशों का पथानुसरण कर रहा है और उन्हीं के सिद्धान्तों तथा उद्गारों को अपना आदर्श वाक्य (Motto) मानता है। जिस अपहरण-नीति का उपयोग आज तक यूरोपियन राष्ट्र अफ़्रिका और एशिया के देशों में करते आए

हैं, उसी का प्रयोग आज जापान, जिसे कितने ही लोग 'पूर्व दिशा का जर्मनी' के नाम से पुकारते हैं, अपने पड़ोसियों पर कर रहा है। यूरोपियन कूटनीतिज्ञों की तरह ही वह भी अपनी स्वार्थपरता को परोपकार और संसार के कल्याण के आवरण से ढँकने की चेष्टा करता है। कुछ भी हो, बेचारे चीन को अपनी निर्बलता का फल भोगना ही पड़ेगा। वह न्याय और अपने स्वत्वों की चाहे कितनी भी दुहाई क्यों न दे और अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय का दरवाज़ा कितने ही ज़ोर से क्यों न खटखटाए, सबल के मुक़ाबले में उस निर्बल की सहायता कोई न करेगा। निन्दा का प्रस्ताव पास कर देना एक बात है और अन्याय-पीड़ित की रक्षा के लिए अपना खून बहाना दूसरी। जब तक चीन जीवनी-शक्ति-रहित होकर निश्चेष्ट अवस्था में पड़ा है, तब तक लालची गृद्धों की आँखें उस पर लगी ही रहेंगी। मन्चूरिया की घटना स्पष्ट बतला रही है कि चाहे कितने भी अन्तर्राष्ट्रीय सङ्घ क़ायम हो जायँ और कितनी भी निःशस्त्रीकरण कॉन्फ्रेन्सें की जायँ, संसार में अभी तक पशुबल की ही प्रधानता है और सम्भवतः ऐसी ही स्थिति बहुत समय तक बनी रहेगी।
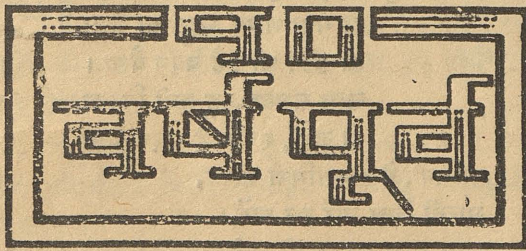
चाँद—अप्रैल, १९२३

विधवाओं के कार्य

[श्रीमती पद्माबाई सञ्जीवराव, एम० ए०]

सम्पादक महोदय ने इस बात की इच्छा प्रगट की है कि मैं एक छोटा सा लेख 'चाँद' के विशेषाङ्क के लिए लिखूँ। मैं पहिले तो भारतवर्ष की अभागी विधवाओं के लिए एक विशेष अङ्क निकालने की वजह ही नहीं समझ सकती, क्योंकि मैं ऐसा अनुभव करती हूँ कि जितना कम ज़ोर उनके विधवा होने पर, और जितना कम ध्यान उनकी विशेष अवस्थाओं पर दिया जायगा, उतना ही अधिक, मुझे आशा है कि वे अपने जीवन की तरफ़ हर्षपूर्ण भाव रक्खेंगी और वास्तव में मैं इसी बात को बार-बार अनेक प्रकार से दुहराऊँगी।

मैं इस बात में विश्वास करती हूँ कि वैधव्य का प्रश्न किसी अनिपुण चेष्टा से, जीवन की वाह्य दशा को परिवर्तन करने के लिए, सन्तोषजनक रीति से हल नहीं हो सकता। पहिले इसके कि भारतवर्ष की विधवाओं की दशा की भौतिक उन्नति की जा सके, दो परिवर्तन अत्यन्त आवश्यक हैं।

पहले विधवाओं के प्रति एक मौलिक परिवर्तन की आवश्यकता है। सबसे पहले विधवाओं के प्रति, समाज की दृष्टि में एक मौलिक परिवर्तन होना चाहिए। उसे गृहस्थी का निकृष्ट काम करने वाली दीन-वृत्ति, असहाय, पराश्रिता और अधिक भाग्यशाली कुटुम्बीजनों के दीन-वत्सलता और अनुकम्पा का पात्र न समझना चाहिए।

प्राचीन भारतीय भाव यह था कि वह वैधव्य को, सामाजिक और कुटुम्ब सम्बन्धी श्रृङ्खलाओं से मुक्त होकर, समाज-सेवा द्वारा जीवन को पवित्र करने का चिह्न समझते थे, किन्तु आजकल अनात्मवादी प्रभावों के कारण यह विचार बदल गया है और लोग विधवाओं को घृणायुक्त असहायता की दृष्टि से देखते हैं। बजाय इसके कि विधवाएँ सांसारिक बन्धनों से निवृत्ति का अनुभव करें, वह आर्थिक और सामाजिक भार विशेष रूप से अनुभव करने लगती हैं। इस बात की अत्यन्त आवश्यकता है कि प्राचीन हिन्दू-भाव, आधुनिक आवश्यकताओं को देखते हुए, फिर से जीवित किया जाय और यह उपर्युक्त परिवर्तन, सिर्फ़ तभी सम्भव है, जब समाज, विधवा के जीवन को समाज-सेवा के लिए ही अर्पित समझे और वैधव्य को एक महान विरक्ति न ख़याल करे। बल्कि यह समझे कि परमात्मा की ओर से यह आज्ञा है कि जीवन के व्यक्तिगत सुखों का त्याग कर दिया जाय और उसे दूसरों के हित में लगाया जाय।

जब तक यह न होगा, तब तक विधवाएँ अपने जीवन में सुख का अनुभव न कर सकेंगी।

आजकल साधारण स्त्री वैधव्य को अत्यन्त दुःखपूर्ण स्थिति, केवल इसलिए समझती है कि इस स्थिति में पड़ कर वह आर्थिक रूप से बिलकुल पराश्रित हो जाती है और जीवन के सब सुखों से उसे ज़बरदस्ती दूर रहने पर मजबूर होना पड़ता है। हम यह भूल जाते हैं कि त्याग का महत्व और सौन्दर्य उसी समय तक है, जब तक कि स्वतन्त्रतापूर्वक किया गया हो। जिस समय कि किसी बाह्य कारणों से त्याग कराया जाता है, तो वह त्याग नहीं रहता, बल्कि अत्याचार हो जाता है। समाज-सुधारकों का विशेष कार्य तो इसी अत्याचार का नाश करना रहा है। किन्तु अभी तक यह कार्य केवल निषेधात्मक ही रहा। हम वैधव्य के प्रश्न का वास्तविक हल उस समय तक न कर सकेंगे, जब तक कि हम विधवाओं को कोई ऐसा काम न दें कि जिससे वह अपना वैधव्य काट सकें, और समाज में ऐसा स्थान दें कि लोग उनकी वास्तविक इज़्ज़त करने लगें।

यह स्पष्ट होता जाता है कि इस सम्बन्ध में रचनात्मक काम करने के लिए एक ऐसी श्रेणी के आदमियों की आवश्यकता है, जिनमें औरों की अपेक्षा स्वार्थ या ख़ुदग़रज़ी नहीं पाई जाती। जिससे कि वह इसी काम में अपना सारा समय लगा सकें। यूरोपीय देशों में परोपकार का अधिकांश काम 'सिस्टर ऑफ़ मारसी' (Sister of mercy) करती हैं। डॉक्टर और नर्सों में भी अधिक संख्या अविवाहिता और विधवा स्त्रियों की होती है। हिन्दुस्तान में इस क़िस्म के काम के लिए बहुत विस्तृत क्षेत्र पाया जाता है। हमें बालिकाओं की शिक्षा के लिए, अध्यापिकाओं की एक बहुत बड़ी संख्या की ज़रूरत है। हमें स्त्री डॉक्टर और स्त्री-वकीलों की ज़रूरत है, जो स्त्रियों की आवश्यकताओं की पूर्ति करें। हमें स्त्री म्युनिसिपिल कमिश्नरों की ज़रूरत है, जो नगर को उतना ही साफ़ और सुथरा रक्खें जितना अपना घर, और जो सार्वजनिक जीवन में शुद्धता और शिष्टता पैदा करें, जो इस समय नहीं पाई जाती। कई और प्रकार के ऐसे क्षेत्र हैं, जहाँ विधवा की सहायता से हमारा जीवन अधिक सुन्दर और गौरवान्वित हो सकता है। हमें भारत के लिए विधवाओं से ही आशा रखनी चाहिए। हमारा मत है कि विधवाओं की अनुपम परोपकार-वृत्ति को जनता के हित के लिए काम में लाना चाहिए और स्वार्थपूर्ण व्यक्तिगत हितों के लिए उनसे कदापि बेजा फ़ायदा न उठाना चाहिए।

❀ ❀ ❀

विधवाएँ

[श्री० अनूप शर्मा, बी० ए०]

थी बदी भाग्यहीन भारत की,
इस तरह हाय! दुर्गती होना।
इन दुराचार के प्रभावों से,
श्रेय था अग्नि में सती होना॥

देश की ये असंख्य विधवाएँ,
बालिकाएँ विदीर्ण-हृदया सी।
रो रहीं फूट-फूट कर दिल में,
कुप्रथा की वृथा बनी दासी॥

हाय! इनके जले कलेजे से,
पूछिए तो भला कथा इनकी।
कौन सहृदय सदय न कह देगा,
'हो रही दुर्दशा वृथा इनकी॥'

हो गया भाग्य सङ्कुचित जैसा,
हो चला क्षीण है बदन वैसा।
सास सधवा, बहू बनी विधवा,
हो जहाँ, स्वाँग है सदन कैसा?

कामिनी, ये अस्वामिनी होकर,
मारतीं चित्त मार कर ढाढ़ें।
भस्म सारा समाज हो जावे,
चित्त से आह! आह! जो काढ़ें॥

माँग है शून्य, स्वल्प इच्छा है,
लाख की चूड़ियाँ चहैं दो ही।
देके छीना कठोरता द्वारा,
ईश लोभी हुआ महा द्रोही॥

जिनके हों भाव वे तहा डालें,
जिनके हो धैर्य वे ढहा डालें।
नेत्र को फोड़-फोड़ कर अपने,
जितने आँसू हों, वे बहा डालें॥
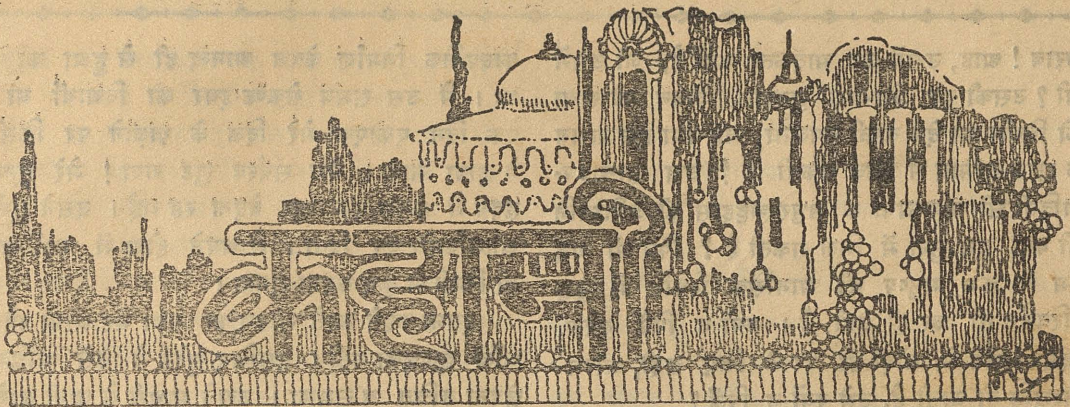
शराबी

[श्री० श्यामसुन्दर खत्री, बी० ए०]

"निर्दय उँगली अरी ठहर जा,
पल भर अनुकम्पा से भर जा;
यह मूर्छित मूर्छना आह सी
निकलेगी निस्सार।"

थोड़ी देर रुक कर माधुरी की स्वर-लहरी कमरे में एक बार फिर गूँज उठी और साथ ही सुरेश की चञ्चल उँगलियों ने भी वीणा को प्रकम्पित कर दिया। उसने शुरू किया ही था—

"छेड़-छेड़ कर मूक तन्त्र को × × ×"

कि इतने ही में किसी ने बाहर से भर्राई आवाज़ में गाया—

"क्या जानिए क्या सेहर था उस शोख़ नज़र में।
एक आग सी भर दी है मेरे क़ल्बोजिगर में॥
अल्लाह री ! शोख़ी यह तेरे तीरे-नज़र में।
आँखों से कभी दिल में, कभी दिल से जिगर में॥"

और इसके अन्तिम पद को दोहराता हुआ एक छरहरे बदन का, गोरा और नशे में चूर नवयुवक कमरे में आया। उसने अपनी लाल-लाल आँखों से एक बार चारों ओर देखा और फिर पास पड़े हुए एक कोच पर लुढ़क गया।

"क्यों मोहन, आज फिर?"—सुरेश की वाणी काँप उठी।

शराबी ने अपनी झपकती हुई आँखें प्रयास से उठाईं और पूछा—क्या ?

"मैंने कहा, आज तुमने फिर शराब पी!"

"तो और क्या करता? आह प्यारी सुरा—नीरव थी न्यारी रजनी, प्याले पर प्याले ढाले।"

"क्यों कविता को भी अपने साथ दूषित करते हो?" सुरेश अपने मित्र की इस दशा को देख न सका और बोला—"कविता तुम्हारे जैसे पातकी पुरुषों द्वारा नहीं बनाई जानी चाहिए। न जाने क्यों परमात्मा ने तुम्हें व्यर्थ ही प्रतिभा दे दी है। अगर कविता करना चाहते हो तो उसके योग्य बनो।"

मोहन अब न सह सका। यथासम्भव सँभल कर बोला—तो क्या मैं शराब अपनी इच्छा से पीता हूँ?

"अच्छा, अब तुम शराब मत पिया करो।"—माधुरी ने करुणा-भरी वाणी में कहा।

अब मोहन बहुत कुछ सचेत हो चुका था; जैसा कि एक शराबी के लिए सम्भव है। उसने माधुरी से कहा—भाभी, तुम मेरे हृदय की व्यथा नहीं समझ सकतीं और न सुरेश ही समझ सकते हैं। क्या तुम लोग समझते हो कि मुझे सुरा-पान में सुख मिलता है और मैं उसे आनन्द के लिए पीता हूँ? नहीं, मैं केवल उन विगत स्मृतियों को अपने मस्तिष्क से निकाल बाहर करने के लिए शराब पीता हूँ। शराब,

शराब! आह, उसमें वह मादकता कहाँ है, जो उसमें थी? उसकी वह प्रेम-भरी मुस्कान, जीवन की सत्ता को विभोर कर देने वाली चपलता, वह क्या इस शराब के शुष्क उन्माद में मिल सकती है? उस साम्राज्य-वादिनी सी आशामयी के मधुर अट्टहास की प्रतिध्वनि भी क्या इस सुरा में मिल सकती है? फिर भी यह कम से कम मनुष्य की मानसिक स्थिति में कुछ परिवर्तन तो कर ही देती है। क्यों न पिऊँ सुरेश, जिसको पीने से, थोड़ी ही देर के लिए सही, आत्म-विस्मृति हो जाती है, उसे क्यों न पिऊँ?

ग़म ग़लत करने को मैं पीता हूँ मै,
इससे बेहतर ग़मरुबा देखी न शै!

कुछ देर चुप रहने के बाद एकाएक मोहन की आँखें अङ्गारे सी प्रज्ज्वलित हो उठीं। उसमें अनायास ही बल का सञ्चार हो गया। व्यथा से तमतमाता हुआ चेहरा भर गया। फिर एकाएक आकृति कुछ कोमल हो उठी। आँखों से आँसू की दो बूँदें निकल कर ज़मीन पर टपक पड़ीं। पर उसका प्रलाप एकदम बन्द हो गया।

सुरेश अब अपने मित्र की ऐसी दशा न देख सका। उसने उठ कर मोहन की जलती हथेलियों को अपने हाथों में ले लिया और बोला—मोहन! क्षमा करना मित्र, मैं नहीं जानता था कि तुम्हारे हृदय में कोई आँधी चल रही है, अन्यथा मैं इस तरह तुम्हारी भर्त्सना नहीं करता। परन्तु मुझे दुःख है कि आज तक तुमने मुझे अपनी मनोव्यथा की बात न सुनाई। मोहन, तुम्हारा अन्तरङ्ग मित्र होने के नाते क्या उसे जानने का मुझे अधिकार न था? क्या वह ऐसी गुप्त बात थी, जो मुझसे भी नहीं कही जा सकती थी? क्या उसके प्रतिकार का उपाय केवल सुरापान ही था, मैं कुछ नहीं कर सकता था?

शराबी के मुख पर एक सूखी हँसी की क्षीण रेखा दिखलाई दी। उसने कहा—असम्भव है सुरेश, असम्भव। अब वह तुम्हारे या मेरे वश के बाहर की बात है। आह, एक दिन मैं तुमसे भी अधिक सुखी था। उस समय मेरे हृदय पर किसी का अधिकार नहीं था। उसमें हज़ारों आशाएँ और लाखों अभिलाषाएँ थीं। मेरे लिए संसार सोने का था और भविष्य का काल्पनिक निर्माण केवल आनन्द ही से हुआ करता था। मैं उस समय सेकण्ड-इयर का विद्यार्थी था। एक दिन एकाएक मेरे दिल के ख़ज़ाने पर किसी ने छापा मारा। मेरा सर्वस्व लुट गया! मेरे शून्य हृदय में केवल एक मधुर वेदना रह गई। उसने मुझे आत्मविभोर कर दिया। मैं अपने होश में कहाँ था, जो किसी से कुछ कहता-सुनता।

इतना कहते-कहते मोहन का गला भर आया और आँखें छलछला उठीं। इसलिए सुरेश ने उसे अधिक छेड़ना उचित न समझा। उसने माधुरी से पानी लाने के लिए कहा और स्वयं मोहन के पास बैठ कर उसे सान्त्वना देने लगा।

मुँह-हाथ धोकर किञ्चित् सुस्थ होने पर मोहन ने कहा—अच्छा तो आज मैं तुम्हें अपने दर्दे-दिल का हाल सुनाता हूँ और बिना अनुमति की प्रतीक्षा किए ही कहने लगा—"तुम्हें याद होगा, मेस के जिस कमरे में मैं रहता था, उसके सामने एक बड़ा सा बाग़ था और ठीक उसके दूसरे सिरे पर एक प्रोफ़ेसर का मकान था। मेरी खिड़की के ठीक सामने ही उस मकान की भी एक खिड़की पड़ती थी, जो हमेशा बन्द रहती थी। जानते हो सुरेश, मुझे कविता और गाने का शौक़ है। एक दिन किताबों से ऊब कर मैंने गाना आरम्भ किया। एक गाने के बाद दूसरा और दूसरे के बाद तीसरा। एकाएक हवा के एक झोंके ने दूर देश से मस्त पियानो की एक मधुर ध्वनि को लाकर मेरे कमरे को गुञ्जित कर दिया। मैंने उठ कर देखा, सामने के मकान की खिड़की खुली हुई थी और एक सुन्दरी बालिका तन्मय होकर पियानो बजा रही थी, वह सुन्दरता की देवी थी। मानो प्रकृति स्वयं मूर्तिमान होकर अलाप रही हो।

बस, उसी दिन से प्रतिदिन मैं ठीक समय पर अपने कमरे की खिड़की खोल कर खड़ा हो जाता था, और वंशी की ध्वनि से मन्त्र-मुग्ध हिरण की भाँति उस स्वर्गीय सङ्गीत का आनन्द लिया करता। कभी अगर जी न मानता तो मैं भी उसके स्वर में स्वर मिला कर हारमोनियम बजाने लगता। इस तरह हम दोनों आपस में अपरिचित होते हुए भी परिचित हो जाते थे। वह मुझे परास्त कर देने के लिए न जाने कितने लय, स्वर और रागिनियों को बदला करती थी और मेरी

खिड़की की ओर देख कर कभी-कभी मुस्करा देती थी। पर मेरी उँगलियाँ उसकी चञ्चल आँखों का इशारा पा अनायास ही और चञ्चल हो जाती थीं। मेरा जीवन एक प्रकार की नई धारा में बहने लगा। अगर वह कभी गाती तो मैं उसी के स्वर में स्वर मिला कर बाजा बजाने लगता, कभी वंशी पर और कभी हारमोनियम पर। उसी तरह अगर मैं किसी दिन कुछ गुनगुनाने लगता तो वह अपना पियानो बजाना आरम्भ कर देती। उस समय उसकी चञ्चल उँगलियाँ इस सुन्दरता और तत्परता के साथ मेरा साथ देतीं, मानों मैं सदा से एक ही गाना गाता हूँ और वह अनन्त काल से उसी की गत बजाया करती है।

इस घटना को वर्षों बीत गए, फिर भी उसके सङ्गीत की स्वर-लहरी मेरे कानों में गूँज रही है। उसकी बड़ी-बड़ी आँखें, उसका भोला चेहरा और उसकी मधुर मुस्कान आज भी मेरी आँखों में नाच रही है। मैं उसे भूलने की चेष्टा करता हूँ, पर भूल नहीं सकता। उसकी पूजा करने के लिए मेरी कल्पना आज भी हृदय-सुमन लिए उसके द्वार पर खड़ी है।

इतना होने पर भी संसार की दृष्टि में हम लोग अपरिचित थे।

२

धीरे-धीरे दिन बीतने लगा और उसके साथ जीवन की कुछ घड़ियाँ भी नित्य नए-नए आमोद-प्रमोदों में पलने लगीं। अब सुशीला मेरे लिए एक पहेली; एक मूक, पर मोहक सङ्गीत ही न रह गई। अब मैं उसके घर जा सकता था, उससे घण्टों बातें कर सकता था, उसके साथ टहलने जा सकता था और उसके पियानो-बोर्ड पर सिर रख कर उसके मुख-सौन्दर्य की तुलना उसके सरस सङ्गीत के साथ कर सकता था। अब अनजाने में ही वह मेरा सर्वस्व हो चली थी। उसकी बड़ी-बड़ी आँखें ही मेरे लिए स्वर्ग के द्वार थीं। उसकी एक चितवन मेरे लिए कुबेर की सम्पत्ति थी। वह मेरे हृदय-साम्राज्य की एकछत्र सम्राज्ञी थी और मैं उसके हाथों बिना मोल बिका हुआ, उसका ग़ुलाम था।

एक दिन मैंने पूछा—सुशीले, अगर हम लोग एक ऐसे जगत में होते, जहाँ केवल सङ्गीत ही सङ्गीत होता; तुम गातीं और मैं सुनता; मैं गाता और तुम सुनतीं; तो क्या ही अच्छा होता।

सुशीला ने एक भेद-भरी दृष्टि मेरे ऊपर डाली। आह! उस दृष्टि में क्या नहीं था। फिर भी और स्पष्ट सुनने के लिए मैंने पूछा—सुशीला, कुछ बोलो, उत्तर दो।

अपने वीणा-विनिन्दित स्वर में उसने बिना आँखें ऊँची किए ही कहा—"क्या वैसा संसार इस संसार में नहीं बनाया जा सकता?" फिर आँखों को ऊपर उठा कर, सहज भृकुटी सञ्चालन करती हुई बोली—"पर इससे कवि लोग नहीं सन्तुष्ट होने के, उन्हें तो कोई संसार ऐसा मिलना चाहिए, जो इस संसार में न बन सके और जिसकी नींव कल्पना-जगत में हो। मोहन, तुम भी तो कवि हो।"

आज यह पहला ही अवसर था, जब उसने मुझे मि० मोहन की जगह केवल 'मोहन' कहा।

मैं उसके कहने का मतलब ख़ूब समझ रहा था, पर समझते हुए भी न समझने का भान कर बोला—पर सुशीला, हम लोग इसी तरह तो जीवन बिता नहीं सकते। कभी तो इस सङ्गीत की दुनिया से दूर, जीवन की प्रबल थपेड़ों में पड़ना ही होगा। पता नहीं, काल का प्रबल प्रवाह हमको कहाँ ले जाकर फेंकेगा। इस संसार में हरएक को अपना रास्ता स्वयं ही ढूँढ़ना पड़ता है। कोई किसी का साथ तो देता नहीं, ख़ास कर स्त्रियों के लिए तो हमारे समाज ने बड़ा ही कठोर नियम बना रक्खा है। तुम्हें भी तो उसी का अनुसरण करना पड़ेगा।

भला सुशीला इसका क्या उत्तर देती। उसने केवल इतना ही कहा—समाज या समाज के नियम किसी के हृदय पर अपना अधिकार नहीं जमा सकते।

इसी तरह प्रतिदिन नाना प्रकार की बातें आपस में हुआ करती थीं। पर अपने दिल की कमज़ोरी के कारण मैं खुल कर सुशीला से कुछ भी नहीं कह सकता था। अपने होस्टल के कमरे में बैठा हुआ मन ही मन जिन बातों को न जाने कितनी बार दुहराता था और प्रतिज्ञा करता था कि आज उन्हें सुशीला पर अवश्य ही प्रगट कर दूँगा, वे सारी बातें उसके सामने जाने पर न जाने क्यों भूल जाती थीं।

अभी कुछ दिन ही बीते थे कि मुझे पिता जी के बीमार होने का समाचार मिला और मैं सुशीला से बिना मिले ही घर चला गया। परन्तु घर आकर मैं सुशीला को नहीं भूल सका। फ़ुर्सत पाने पर उसीकी बातें सोचा करता था। अथवा अपने हृदय के उद्गारों को पद्य का स्वरूप दिया करता था। इस बीच में मैंने सुशीला को दो पत्र भी लिखे, परन्तु कोई उत्तर नहीं आया। धीरे-धीरे पिता जी की अवस्था सुधर गई। प्रायः दो-तीन सप्ताह के बाद मैं फिर अपने होस्टल में लौट आया और आते ही मैंने अपनी खिड़की खोली। पर सामने के मकान की खिड़की बन्द थी। मैं फ़ौरन सुशीला के मकान की ओर गया; परन्तु मकान के दरवाज़े में ताला लगा था। मालूम हुआ कि प्रोफ़ेसर साहब मकान छोड़ कर चले गए। परन्तु यह पता न लग सका कि वे कहाँ गए? वे पेन्शनर थे और विचरणशील। कभी दो महीने इस शहर में रहते और कभी उस शहर में। मैं इस आशा में था कि सुशीला का कोई पत्र मिलेगा, पर वह आशा भी पूरी न हुई। मैं लाचार होकर बैठ गया। मेरी व्याकुलता बढ़ चली और पढ़ना-लिखना सब मिट्टी में मिल गया। मैं रात भर होस्टल के कमरे में पड़ा, सुशीला की मोहनी मूर्ति का ध्यान किया करता था। कभी अगर झपकी आ जाती, तो स्वप्न में भी वही प्रेममयी दिखाई पड़ती थी। दिन भर न जाने कितने करुण-सङ्गीत मेरे हृदय से निकल कर कॉपी पर अङ्कित हो जाते थे। तुमने वे कविताएँ नहीं देखीं सुरेश, उनमें मेरी हृत्तन्त्री के टूटे तारों की झङ्कार भरी है।

३

कुछ ठहर कर मोहन फिर कहने लगा—हमारे कॉलेज में कवि-सम्मेलन होने वाला था। शहर भर के सारे स्कूलों और कॉलेजों में उसकी धूम मची थी। परन्तु मैं अब ज़्यादा हो-हल्ले से बचना चाहता था। मेरी इच्छा कवि-सम्मेलन में जाने की न थी, पर मित्रों की ज़िद से जाना ही पड़ा।

हॉल ठसाठस भरा हुआ था। मञ्च पर हमारे नवयुवक कविगण गप्पें लड़ा रहे थे। मैं भी जाकर एक कोने में बैठ गया। मैं सुस्त था; निराशा के बादल मेरे मानस-पट पर मँडरा रहे थे। इतने ही में अचानक दरवाज़े से अन्दर आती हुई लड़कियों के एक झुण्ड पर मेरी नज़र पड़ी। मेरी बाछें खिल गईं। मैं आनन्दातिरेक से घबरा उठा। क्या यह सम्भव था कि मेरी सुशीला इस प्रकार दिखलाई दे जायगी। उसके साथ ही एक और लड़की थी, वह उसकी सहेली प्रेमा थी। मैं उसको भी पहिचानता था। अचानक मेरी और सुशीला की आँखें चार हुईं। उस समय मेरे हृदय में एक विचित्र हलचल मच गई। मानो मैं जी उठा।"

मोहन का अङ्ग-प्रत्यङ्ग फिर उत्तेजित हो उठा। आँखों से वेदना-मिश्रित उल्लास के स्फुलिङ्ग साफ़ प्रकट होने लगे। चेहरा खिल उठा। सब शान्त थे। वह कहता जाता था और हम लोग उसकी बातें सुनते जाते थे। उसकी बातें शराबी का प्रलाप न थीं। नशा तो कभी का उतर चुका था।

कुछ क्षण ठहर कर उसने फिर कहना आरम्भ किया—"हाँ, मैं जी उठा। लोगों ने अपनी-अपनी कविताएँ सुनाईं, पर उन पर मेरा ध्यान न था। इनका वाह-वाह की ध्वनि से स्वागत किया गया, पर मेरा ध्यान उस तरफ़ नहीं था। मैं अपनी ही कल्पना के संसार में विचरण कर रहा था। सुशीला की तरफ़ देखता भी न था, अथवा यों कहिए कि देख नहीं सकता था। एकाएक मेरा ध्यान टूटा, जब सुशीला की सखी प्रेमा एक भावोत्पादक कविता पढ़ने लगी। अब मेरी समझ में आया कि सुशीला यहाँ कैसे आई थी! क्योंकि सुशीला को सभा-सोसाइटियों से एक प्रकार की नफ़रत सी थी। अस्तु—

प्रेमा की कविता बड़ी ही सुन्दर थी। भाव और भाषा दोनों में उसने कमाल कर दिया था। उसके सहज-सलोने चेहरे और उसकी मधुर वाणी ने तो मानों उसमें जान डाल दी थी। सारा समाज उसकी तान पर मस्त हो गया। करतल-ध्वनि और वाह-वाह की झड़ी सी लग गई। इसके बाद ही मेरा नाम पुकारा गया और लोगों की उत्सुक आँखें मेरी ओर लग गईं।

मैं उठा। पहली निगाह मेरी सुशीला पर पड़ी। वह उत्सुकता से मेरी ओर देख रही थी। मैं पलक मारते ही मैशीन की भाँति मञ्च पर जा पहुँचा। आज

पहला ही अवसर था, जब मेरा हृदय धड़क रहा था और हाथ-पैरों में मान कँपकँपी चढ़ गई थी।

मैंने प्रयत्न करके अपनी सारी शक्ति अपने में सञ्चित की। मैंने कविता का परचा हाथ में लिया। उसका शीर्षक था, 'विरह-वेदना।' मैं अपनी वाणी द्वारा अपने हृदयतल की मार्मिक चोटों को सुशीला के सामने प्रकट करने लगा। अपनी रचना और वाणी द्वारा—अपनी सारी शक्ति द्वारा मैंने विरह-वेदना का शब्द-चित्र श्रोताओं के सन्मुख अङ्कित कर देने की चेष्टा की। उसमें मेरी सारी आशाएँ, सारी अभिलाषाएँ और सारी वेदना भरी हुई थी। जनता स्तब्ध होकर सुनती रही। न किसी ने ताली बजाई और न किसी के मुँह से वाह-वाह ही निकला। परन्तु किसी-किसी की आँखों में दो-एक बूँद मोती के चमक रहे थे।

इसके बाद मैं अपने स्थान पर आकर बैठ गया, उस समय एक बार मेरी और सुशीला की आँखें आपस में मिल गईं। मैंने देखा, उसकी आँखों में स्वाभाविक चमक न थी। चञ्चलता के स्थान को गम्भीरता ने ले लिया था। मेरी दृष्टि पड़ते ही उसने अपनी आँखें नीची कर लीं। उसके गालों का गुलाबी रङ्ग बदल कर लाल हो गया।

सुशीला के पिता ने इसी शहर में, नदी किनारे एक बङ्गला किराए पर ले लिया था। बङ्गला बदलने की खाबवी के कारण ही वह मेरे पत्रों का उत्तर भी नहीं दे सकी थी। साथ ही उसे यह भी न मालूम था कि मैं कहाँ हूँ। अस्तु—

इस घटना के बाद मैं नियमपूर्वक दूसरे-तीसरे रोज़ उसके यहाँ जाया करता था। मेरी विरह-वेदना दूर हो चुकी थी। मेरे बुरे दिन बीत चुके थे! मैं सुखी था।

उफ़! उस दिन बड़ी गर्मी थी। लड़के बाहर की लॉन पर बैठे गपशप कर रहे थे। मैंने भी नदी की ओर की राह ली। सरला का बङ्गला हमारे स्थान से कोई डेढ़ मील पर था। मेरा चित्त उस समय कुछ उद्विग्न सा हो रहा था। मैंने सीधी सड़क छोड़ दी और पार्क से होकर जाने लगा। सामने ही नदी थी। पार्क में घुसते ही फूलों के एक झाड़ के पास मुझे लड़कियों का एक झुण्ड दिखलाई पड़ा। उन्हीं में सुशीला भी थी। मैंने ऐसे अवसर पर उसके पास जाना उचित नहीं समझा और एक झाड़ी की आड़ से उन लोगों की अठखेलियाँ देखने लगा। मेरे वहाँ जाने से अवश्य ही वे कुछ गम्भीर सी हो जातीं और मैं उनके सरल स्वाभाविक आमोद-प्रमोद को न देख सकता।

भगवान भास्कर अस्ताचल की ओर जा रहे थे। उनकी अरुण स्निग्ध अन्तिम किरणें सुशीला के सुन्दर मुख पर नृत्य कर रही थीं। वह एकटक नदी की ओर निहार रही थी, मानों उसकी लहरें गिन लेना चाहती हो। उसके घनकृष्ण-केश मन्द वायु के झोंकों से लहरा रहे थे। मैं उसकी इस अनिन्द्य रूप-छटा को अतृप्त नेत्रों से देखता-देखता विमुग्ध सा हो गया था। मानों उसकी ओर देखता हुआ भी नहीं देख रहा था।

एकाएक एक धमाके की आवाज़ से मेरी तन्मयता छितरा गई। जैसे कोई पानी में गिर पड़ा हो। मेरे सारे शरीर में बिजली दौड़ गई, शरीर के रोएँ खड़े हो गए। मेरी विकल दृष्टि वहीं छटपटाने लगी, जहाँ सुशीला खड़ी थी। परन्तु सुशीला गई कहाँ? मैं झाड़ी के पीछे से दौड़ा। मुझे अपने कपड़े उतारने की भी धुन न थी। मैं सीधे कगारे पर जाकर नदी में कूद पड़ा। धारा तेज़ थी। सुशीला, मेरी प्यारी सुशीला कहीं भी न दिखलाई दी। मेरा हृदय काँप उठा। आँखों के सामने अँधेरा छा गया। मैं रहस्यवादी कवि की भाव-धारा की तरह नदी की तेज़ धार में अनन्त की ओर बह चला। इतने में कोई सफ़ेद चीज़ कुछ दूर पर उतराती दिखलाई दी। मैं लहरों को चीरता हुआ बड़ी तेज़ी से लपका और जाकर उसको पकड़ लिया। धारा बहुत तेज़ थी। हम दोनों उसमें बह चले। सुशीला मुझसे लिपट गई। उसी प्रकार जैसे डूबता हुआ मनुष्य बचाने वाले से उलझ जाता है। परन्तु मुझे इस भीषण स्थिति में भी एक प्रकार का आनन्द प्राप्त हो रहा था। उस अथाह जल-राशि में हम दोनों एक साथ ही बहे जा रहे थे। आह! वह कितना आनन्दप्रद समय था। इतना होते हुए भी मैंने सुशीला को अपने से कुछ दूर रखने का प्रयत्न किया, जिसमें परस्पर लिपट कर हम दोनों न डूब जायँ। सुशीला के चेहरे और शरीर पर उसकी धोती इस तरह लिपट गई थी कि उसका चेहरा न दिखलाई देता था। जल से युद्ध

करते-करते उसकी कोमल बाँहें शिथिल हो गई थीं। वह प्रायः मूर्छित सी हो गई थी।

न जाने हम नदी की धारा के साथ बहते-बहते कितनी दूर चले आए। मेरा सारा शरीर शिथिल हो गया था। सुशीला हाथ से छूटने लगी। परन्तु मुझे तैरने का अभ्यास था। सन्तरण-प्रतियोगिता में मैंने कई बार पुरस्कार प्राप्त किया था। मैं सावधान हो गया और मुस्तैदी से अपनी और सुशीला की रक्षा करने लगा। कपड़े भींग कर भारी हो गए थे, इसलिए मैंने एक-एक करके उन्हें उतारना आरम्भ किया। धीरे-धीरे कोट, जूता, कुरता सब उतार फेंका। धोती की जगह हाफ़पैण्ट पहने था, इतना अच्छा था। मैं अपनी सारी शक्ति लगा कर किनारे की ओर बढ़ने लगा। पर मैं कब किनारे लगा, इसका कुछ ज्ञान नहीं। क्योंकि थोड़ी देर बाद ही मैं भी बेसुध हो गया था। पीछे मुझे पता चला कि उस बेसुध गठरी को मेरे हाथ से छुड़ाने में लोगों को बड़ी कठिनाई हुई थी।

मुझे अपनी बेहोशी की हालत में भी ऐसा प्रतीत हुआ, मानों सुशीला घबराई आँखों से मेरी ओर देख रही है। मेरा सिर किसी कोमल चीज़ पर था। शायद वह मेरी भावनाओं वाली सुशीला की हथेली हो।

४

जब मैंने आँखें खोलीं, तो ऐसा मालूम हुआ कि सारा संसार कोहरे के भीतर छिपा हुआ है। सारी वस्तुएँ धुँधली दिखलाई देती थीं। मेरा सारा शरीर टूटा जा रहा था। अङ्ग-अङ्ग में पीड़ा हो रही थी। मैंने आँखें बन्द कर लीं। थोड़ी देर के बाद एक मधुर ध्वनि मेरे कानों में पड़ी। किसी ने पूछा—कैसी तबियत है?

मैंने कोई उत्तर नहीं दिया। मुझसे बोला नहीं गया। फिर किसी ने कहा—चैतन्यता आती मालूम होती है। ईश्वर करे जल्दी आराम हो जाय।

इसके आगे मैं कुछ न सुन सका और मालूम नहीं, कितनी देर तक इस दशा में पड़ा रहा। कुछ देर बाद जब फिर आँखें खोलीं, तो किसी स्त्री को अपनी ओर झुके हुए देखा। ध्यान से देखने पर मालूम हुआ कि चेहरा परिचित है। फिर तो पूर्णरूप से विश्वास हो गया कि वह सुशीला ही है। धीरे-धीरे सारी बातें स्मरण हो आईं। पर नदी के किनारे आने के बाद, इस बिस्तर पर किस प्रकार आ पहुँचा, यह समझ में नहीं आया।

मैंने पूछा—मैं कहाँ हूँ?

उसी परिचित स्वर में सुशीला ने कहा—"घबड़ाओ नहीं, तुम मेरे घर पर हो।" उसकी आवाज़ में प्यार था और उसकी विश्वविजयिनी आँखों में आह्लाद खेल रहा था। मुझे उठने का प्रयत्न करते देख, उसने कहा—उठो मत। उसने अपने हाथ से मेरा तकिया ठीक कर दिया और अपनी हथेली को मेरी छाती पर रख कर मुझे उठने से मना किया।

उसके स्पर्श से मेरे सारे शरीर में एक प्रकार की तीव्र झिनझिनी नाच उठी। पर मैं आश्चर्य में था कि माजरा क्या है? क्योंकि सुशीला को तो मुझसे भी अधिक बीमार होना चाहिए था। मुझे तो जल से निकलने तक होश था। पर वह तो जल ही में बेहोश हो गई थी। फिर मैं किस प्रकार उसे पूर्ण स्वस्थ और अपने को बिस्तर पर देख रहा हूँ। मुझे अच्छी तरह विश्वास हो गया कि मैं स्वप्न देख रहा हूँ। मैंने अपनी आँखें मींच लीं और पूछा—"क्या मैं स्वप्न देख रहा हूँ?" उत्तर मिला—"नहीं, आप स्वप्न नहीं देख रहे हैं।" कण्ठ-स्वर में उत्साह था।

मुझसे अब न रहा गया, मैंने पूछा—सुशीला, मैं तो जल में तुम्हें बचाने के लिए कूदा था। फिर तुम्हें इस समय पूर्ण रूप से स्वस्थ क्योंकर देख रहा हूँ? तुम्हें तो इस समय बिस्तर पर होना चाहिए। यह पहेली मेरी समझ में नहीं आती।

मैंने देखा, उसके गुलाबी गालों पर हँसी की एक रेखा चमक रही थी। उसने प्रेम-भरी दृष्टि से मेरी ओर देख कर मुस्कराते हुए कहा—पीछे सब पता चल जायगा। इस समय अपने मस्तिष्क पर ज़ोर मत दो। डॉक्टर साहब ने मना किया है।

इतना कह वह मेरे बिस्तर के पास पड़ी हुई कुर्सी पर बैठ गई; और अपनी हथेलियों से मेरे ललाट का तपन देखने लगी। दूसरे हाथ को अनायास ही मैंने अपनी हथेली में दबा लिया।

पर मैं शुरू से अन्त तक सारी कहानी जानना चाहता था। मैंने कई बार उससे पूछा, पर उसके इतना कहने पर कि—"अगर तुम इतना बोल कर अभी अपने

मस्तिष्क पर अनुचित ज़ोर डालेंगे तो मैं कमरे से बाहर चली जाऊँगी।" मुझे अधिक आग्रह करने का साहस न हुआ।

५

कहावत है कि 'किसी को बैगन बादी और किसी को बैगन पथ्य।' एक के लिए जो चीज़ नरक के समान प्रतीत होती है, वही दूसरों को स्वर्ग से भी अधिक आनन्दप्रद होती है। फलतः इस अस्वस्थता में मुझे जो आनन्द था, सो स्वस्थ शरीर में कहाँ? मैं महीनों तक बिस्तर पर पड़ा रहा। मुझे ज्वर हो गया। सरला बिस्तर के पास दिन-रात बैठी रहा करती थी और नाना प्रकार की बातों से मेरा मनोरञ्जन किया करती थी। दिन भर में सहस्रों भाव उसके सुन्दर चेहरे पर बदला करते थे। आह! मैं इतना सुख किस प्रकार बटोर सकता था। मैं कभी-कभी आनन्द-विभोर हो जाने लगा।

सुशीला की सेवा और डॉक्टर की दवा से मैं धीरे-धीरे अच्छा होने लगा। परन्तु मुझे हर घड़ी आने वाले वियोग की आशङ्का होती थी और मैं विचलित हो उठता था। सुशीला की अनुपस्थिति में मैं ऐसे ही ऐसे विचारों में ग़ोते खाया करता था। पर मेरे विचार के विपरीत सुशीला मुझे स्वस्थ होते देख कर प्रसन्न होती थी। पर उसे प्रसन्न देख कर मैं झुँझला उठता था। क्योंकि मेरी शारीरिक स्वस्थता धीरे-धीरे मानसिक अस्वस्थता में परिणत होती जाती थी। अच्छा हो जाने पर मुझे सुशीला से अलग हो जाना पड़ेगा, यह ख़याल मुझे व्याकुल कर देता था। परन्तु धीरे-धीरे मैं पूर्ण स्वस्थ हो गया।

एक दिन मैं बारामदे में टहल रहा था कि सुशीला आ पहुँची। मानों मेरे स्वप्नों की शृङ्खला नष्ट हो गई और उसमें से एक दैदीप्यमान मूर्ति का आविर्भाव हुआ। मैंने कितनी ही बार उसके नेत्रों से प्रेम का सन्देश पाया था, पर कभी भी मैं उसका उत्तर न दे सका था। चाहता था कि उससे कह दूँ कि वह कितनी सुन्दर है। उससे कह दूँ कि मैं उसके ही लिए जीवन को हथेली पर रख कर पानी में कूदा था। मैंने कितनी सावधानी से उस गठरी को हाथ में रक्खा, जिसे मैं अपनी सुशीला समझ रहा था। परन्तु कगारे पर से सरला नहीं, प्रेमा गिरी थी। अगर मैं जानता कि सुशीला की जगह प्रेमा उस गठरी में है, तो मैं अवश्य उसे भी बचाने की चेष्टा करता। परन्तु जिस समय मेरे प्राण मुझको ही छोड़ देने के लिए उतावले हो रहे थे, उस समय मैं क्या करता? निश्चय ही मैं अपने प्राणों की रक्षा करता।

मेरे चेहरे पर खेलते हुए इन भावों को पढ़ कर सुशीला बोली—मोहन, क्या कोई कविता सोच रहे हो? माता जी ने तुम्हें कितना पुकारा, पर तुम न बोले। ऐसा क्या सोच रहे थे?

मेरी आँखें आप ही आप उसकी ओर फिर गईं।

मैंने कहा—तुम्हीं बताओ, मैं क्या सोच रहा हूँ?

शायद मेरे भावों को वह समझ गई थी। उसने मुँह बना कर कहा—तुम्हीं जानो, किसको याद कर रहे हो। मैं तुम्हारे भावों को क्योंकर जान सकती हूँ।

मेरे हाथों ने जाने कब उसके हाथों को कस कर जकड़ लिया था। मैं अपने को न रोक सका। धरती पर घुटने के बल अपनी इष्टदेवी के सामने बैठ गया और बोला—"सुशीले क्या तुम्हें बतलाना होगा? क्या तुम प्रेम की मौन भाषा नहीं समझ सकतीं? क्या मुझे स्पष्ट ही कहना होगा कि मैं तुम्हारे प्रेम में पागल हो रहा हूँ, उस दिन से ही, जिस दिन पहले-पहल मैंने तुम्हें देखा था। न जाने कितने दिन और कितनी रातें तुम्हारी चिन्ता में बीत गईं। तुम सब जानती हो, अवश्य जानती हो कि तुम्हारे सिवाय और कोई मेरे ध्यान में नहीं है। मैं तुम्हारे ही लिए नदी में कूदा था। उस समय मेरे हृदय की क्या दशा थी, उसका तुम अनुमान भी नहीं कर सकतीं। सुशीले, कह दो तुम मुझे निराश नहीं करोगी। मेरी जीवन-सङ्गिनी होकर मुझे सुखी बनाओगी। मेरे पास धन नहीं है, पर हृदय है, जो तुम्हारा है।" आगे मैं कुछ न कह सका। सुशीला के नेत्रों में भी आँसू थे, जिसे उसने छिपा लिया। मैं अब खड़ा हो गया था। मैंने कहा—"सुशीला, बोलो! चुप क्यों हो गई? कह दो कि तुम भी मुझसे प्रेम करती हो। तुम्हारी आँखें कहती हैं। बस, मेरी सान्त्वना के लिए एक बार मुँह से भी कह दो। बोलो।" मैंने उसे अपने हृदय से लगा लिया।

सुशीला अपना सिर मेरी छाती पर रख कर अबोध बालक की तरह रोने लगी। भगवान अंशुमाली अस्ताचल की ओर जा रहे थे। प्राची में अरुणिमा छाई थी। जल की तरङ्गें स्तब्ध हो धीरे-धीरे छोटे-छोटे बादलों के टुकड़े को डुलाती हुई बह रही थीं। नदी के उस पार एक दीपक टिमटिमा रहा था। एक नाव दूर-दूर बही जा रही थी, उस पर बैठा हुआ कोई गा रहा था—

"उन आशा की आँखों में,
भर-भर कर आसव-प्याला।
तेरी सुन्दरता देती,
मैं पीता हो मतवाला॥
इस सुरभित सरस हिंडोले,
के झोंकों में लहराती।
इस मिलन साँझ की बातें,
मलयज है ढो ले जाती।"

६

मेरा और सुशीला का हृदय प्रेम के सुदृढ़ सूत्र में बँध गया था। मुझे उसके बिना चैन न पड़ता था और उसे—हाँ, न जाने कितने बहाने मेरे पास आने के लिए करने पड़ते थे। पर मेरे ये सुख के दिन स्थायी न हो सके। मैं पूर्ण स्वस्थ हो गया था। अब सुशीला के घर और ठहरना उचित नहीं प्रतीत हुआ। मैंने एक दिन घर जाने की इच्छा की। कॉलेज भी दशहरा की छुट्टी में बन्द था। जाने की तैयारी हो गई।

"जाते हो मोहन ?"—सुशीला ने कहा। उसकी आँखें भरी हुई थीं।

मैं अपने को न सभाल सका—मैंने अपने रूमाल से उसके आँसू पोंछे। आँखों में आँसू भर कर उसे सान्त्वना दी। कहा—फिर मिलेंगे।

मैं ताँगे पर बैठ गया। जब तक ताँगा आँखों से ओझल नहीं हो गया, तब तक वह द्वार पर खड़ी एकटक मुझे देखती रही और मैं उसे।

परन्तु घर आकर मैं सुखी न हुआ। एक-एक दिन पहाड़ से प्रतीत होने लगे। सुशीला ने पत्र भेजने का वादा किया था। मैं बड़ी उत्सुकता से उसके पत्र की प्रतीक्षा करने लगा। कई दिनों के बाद उसका एक पत्र मिला। उसने लिखा था:—

"प्यारे मोहन ! तुमसे अब यह बताने की आवश्यकता नहीं कि मैं तुमसे कितना प्रेम करती हूँ। जिस दिन मैंने तुम्हें पहले-पहल देखा था, उसी दिन से मैं तुमसे प्रेम करने लगी थी। मैं जानती थी कि तुम मुझे कितना प्यार करते हो, फिर भी मैं अपने प्रेम को तुमसे छिपाती रही। पर अन्त तक नहीं छिपा सकी। उस दिन की तुम्हारी कविता ने मुझे विशेष व्याकुल कर दिया। तुम्हारा करुण सङ्गीत मेरे रोम-रोम में समा गया। मैं जानती थी कि मैं भूल कर रही हूँ, तथापि मैंने अपने हृदय को नहीं रोका। पर अब इस समय जो बातें मैं तुमको लिखने जा रही हूँ, उससे तुम मुझे तुच्छ और प्रेम के अयोग्य मत समझ लेना। क्या करूँ, परिस्थिति सब कुछ कराती है। एक ओर कुल की लाज है और दूसरी ओर तुम्हारा प्रेम। परन्तु अन्त में मुझे कुल-मर्यादा और पिता की इच्छा और आज्ञा की बलि-वेदी पर निछावर हो जाना पड़ा। मैं अपने माता-पिता की एकमात्र सन्तान हूँ, अतः उनकी आज्ञा से भाड़ में जा रही हूँ।

जिस दिन तुम यहाँ से गए थे, उसी दिन पिता जी ने मेरी शादी एक जगह पक्की कर ली। बातचीत पहले से ही चल रही थी। पर मुझे इसका कुछ पता न था। तुम समझ सकते हो कि इस अचानक वज्रपात से मेरी क्या दशा हुई होगी। मैंने लाख चाहा कि मैं इस विवाह को वर्ष-दो वर्ष और टाल दूँ, पर अब मुझे प्रतीत होता है कि यह मेरी सामर्थ्य के बाहर की बात है। मेरी शादी को पाँच रोज़ और हैं। आज ही पिता जी ने एक आमन्त्रण-पत्र तुम्हें भी भेजा है, शायद इसी डाक से तुम्हें मिलेगा। पर कृपा कर तुम इसमें सम्मिलित मत होना। क्योंकि तुम्हें देख कर मेरी वेदना और बढ़ जायगी और फिर कदाचित् मैं अपने को न सँभाल सकूँ। मोहन, यहाँ जाति-भेद है। यहाँ हम-तुम नहीं मिल सकते। पर विश्वास रक्खो, स्वर्ग में हम अवश्य मिलेंगे। प्यारे मोहन ! मैं जानती हूँ, इस पत्र को पढ़ कर तुम्हारी क्या अवस्था होगी। पर धैर्य धरो। देखो, मैं दुर्बल अबला होकर धैर्य धरती हूँ। बस; विदा !

अभागिनी,
—सुशीला"

× × ×

मुझे ज्वर की दशा में बेहोश पड़े चार दिन हो गए थे। पाँचवें दिन मेरी आँखें खुलीं। सुशीला का वह पत्र अब भी मेरे पास पड़ा था। उस पर नज़र पड़ते ही मेरे हृदय में एक चोट सी लगी और मैं व्याकुल हो गया। तथापि मैंने निश्चय कर लिया कि सुशीला के बिना मेरा जीवन वृथा है। परन्तु एक बार, अन्तिम बार सुशीला को देख लेने की इच्छा को मैं किसी तरह भी रोक न सका।

मैं जानता था कि मेरे पिता-माता इस दशा में मुझे घर से भी बाहर नहीं निकलने देंगे। इसलिए मैं उनकी नज़र बचा कर घर से चल दिया। यद्यपि मैंने चार-पाँच रोज़ से कुछ खाया-पिया नहीं था, परन्तु मैं टेढ़े-मेढ़े रास्ते से होकर ठीक समय पर स्टेशन पहुँच गया।

आज सुशीला का ब्याह था। प्रोफ़ेसर साहब के बङ्गले पर चहल-पहल थी। बारात भी आ गई थी। अपनी एकमात्र कन्या के विवाह में प्रोफ़ेसर साहब ने दिल खोल कर ख़र्च किया था और कर रहे थे। मैं दूर से ही यह सब देख रहा था। क्योंकि इस दशा में आमन्त्रित की तरह प्रगट रूप से वहाँ जाना मैंने उचित नहीं समझा। मैं प्रेमा की तलाश में था। क्योंकि बिना उसकी सहायता के सुशीला के अन्तिम दर्शन की कोई सम्भावना न थी। मैं सोचने लगा कि किस तरह प्रेमा से भेंट हो। इतने में प्रोफ़ेसर साहब के मकान में कुहराम सा मच गया। रङ्ग में भङ्ग हो गया। मालूम हुआ कि सुशीला एकाएक संज्ञाशून्य हो गई है। अब मैंने अपने को छिपाना उचित न समझा और जिस अवस्था में था उसी अवस्था में अन्दर पहुँच गया और बिना किसी रोक-टोक के उस कमरे में पहुँचा, जहाँ मेरी सुशीला थी। कमरा स्त्री-पुरुषों से ठसाठस भरा था। प्रोफ़ेसर साहब और उनकी स्त्री पलङ्ग के पास बैठे नीरव अश्रु-विसर्जन कर रहे थे और डॉक्टर लोग उपचार में लगे थे। मैं भी एक तरफ़ खड़ा होकर यह परम कारुणिक दृश्य देख रहा था। इतने में एक बार सुशीला की आँखें खुलीं। उसने पहले अपने पिता-माता की ओर देखा। मैं भी पास ही था। उसकी दृष्टि मुझ पर भी पड़ी और चेहरा एक अपूर्व ज्योति की तरह चमक कर बुझ गया। आँखें खुली ही थीं, परन्तु उनमें संज्ञा न थी। डॉक्टरों का चेहरा उतर गया और प्रोफ़ेसर साहब बेहोश होकर गिर पड़े।

मैंने अन्तिम बार सुशीला को देख लिया और निश्चय कर लिया कि हम दोनों स्वर्ग में मिलेंगे। मैं तेज़ी से निकल कर शहर में आया। प्यास के मारे गला सूख रहा था। हवास भी ठीक न थे। मैं एक दूकान में घुस गया और एक कुर्सी पर बैठ गया। मैं ख़ुद भी नहीं जान सका कि यहाँ क्यों आया हूँ। दूकान के एक नौकर ने आकर पूछा, क्या लाऊँ?

मैंने कहा—शर्बत पिलाओ।

वह मुस्कुराता हुआ चला गया और बराण्डी की एक बोतल तथा प्याले आदि लाकर टेबिल पर रख दिया। मैंने सुरा ढाली और पी।

मोहन एकाएक चुप हो गया और थोड़ी देर के बाद ही विक्षिप्त की भाँति दौड़ कर कमरे से बाहर हो गया। सुरेश ने नीचे तक उसका पीछा किया। परन्तु वह गलियों में घुस कर न जाने कहाँ ग़ायब हो गया।

इसके कुछ दिन बाद से ही 'चाँद' में धारावाहिक रूप से किसी पागल महाशय की "दिल की आग उर्फ़ दिल-जले की आह!" निकलने लगी!

☾ ☾ ☾

"मनुष्य स्वतन्त्र है। वह चाहे जो कर सकता है। बीच में दख़ल देने वाला कोई नहीं, इतनी स्वतन्त्रता रहते हुए भी मनुष्य भाग्य के अधीन होकर महाअनर्थ करते हैं।"

"जो तुम होना चाहते थे, वह हो चुके हो; अब तुम जो होना चाहते हो वही हो जाओगे।"

"ग्रह-नक्षत्रादि द्वारा भाग्य-परीक्षा करा लेने और दैव पर ही निर्भर रहने वाले को समझना चाहिए कि मनुष्य के ग्रह-नक्षत्र मनुष्य ही हैं और उसका दैव उसके ही किए का फल है—वह चाहे अच्छा हो या बुरा।"

"मनुष्य को मनुष्य बन कर अपना भाग्य अपने अधीन रखना चाहिए।"

652

राजा मेहरा

[श्री० अन्तर्वेदी]

लखनऊ के विख्यात दानी और उदार-हृदय मुसलमान शासक नवाब आसिफुद्दौला के दरबारियों में राजा मेहरा नाम के एक सज्जन रहते थे। ये नवाब के निकट पार्श्ववर्तियों में थे और इन पर उसकी विशेष कृपा-दृष्टि भी रहती थी।

राजा मेहरा स्वयं भी बड़े उदार, दानी और धर्मात्मा पुरुष थे। उनकी बनवाई हुई अन्यान्य कीर्त्तियों के सिवा लखनऊ में राजा मेहरा की हवेली और इमामबाड़ा आज भी मौजूद है।

नवाब आसिफुद्दौला का ज़माना 'हातिमे सानी का ज़माना' कहा जाता है। उदारता, गुणग्राहिता और दानशीलता में नवाब आसिफुद्दौला वास्तव में बेजोड़ था। धार्मिक कट्टरता और जातिगत भेद-भाव का उसमें नितान्त ही अभाव था। वह गुणों का प्रेमी था, गुणियों का आदर करना जानता था। उसकी दृष्टि में हिन्दू-मुसलमान और ऊँच-नीच का कोई भेद-भाव न था। वह किसी के ज़रा से सद्‌गुण पर उसे मालामाल कर देता था। किसी कवि या शायर की एक चुटीली उक्ति पर उसे अयाची कर देता था। उसके शासनकाल में लखनऊ कवियों, शायरों, गायकों, मदारियों, कारीगरों और पहलवानों का प्रधान केन्द्र बना था। नवाब आसिफुद्दौला की उदारता का हाल सुन कर देश-देश से गुनी-ज्ञानी आकर लखनऊ में बस गए थे। उसके राज्य में हिन्दू-मुसलमान और ईसाई सभी सुखी थे। उसकी दानशीलता के सम्बन्ध में यह कहावत प्रचलित थी कि 'जिसको न दे मौला, उसे दे आसिफुद्दौला!'

ऊँचे-ऊँचे सरकारी ओहदों पर हिन्दू और मुसलमान दोनों थे। एक ओर सरफ़राज़ुद्दौला, नवाब हसन रज़ा ख़ाँ, नवाब मुख़्तारुद्दौला, सय्यद मीरतक़ी ख़ाँ, नवाब हैदरबेग ख़ाँ आदि मुसलमान राजकर्मचारी थे, तो दूसरी ओर राजा टिकैतराय, राजा झाऊलाल और राजा मेहरा आदि हिन्दू राजकर्मचारी भी मौजूद थे। नवाब बहादुर की तरह राजा टिकैतराय और राजा झाऊलाल भी बड़े दानी और उदार थे। ये दोनों ही धर्मात्मा राजे साल में लाखों रुपए धर्म-कार्य में ख़र्च करते थे। राजा टिकैतराय और राजा झाऊलाल की बनवाई हुई धर्मशालाएँ, कुएँ, तालाब, मन्दिर और मसजिदें आज भी उनकी पवित्र स्मृति-स्वरूप मौजूद हैं। इसी तरह राजा बलभद्रसिंह नाज़िम भी बड़े शाह-ख़र्च और उदार थे। नवाब आसिफुद्दौला के ज़माने में मुसलमान हिन्दुओं की होली और दीवाली पर आनन्द मनाते थे और हिन्दू उनके मुहर्रम में आँसू बहाते थे। होली और दीवाली पर नवाब-सरकार की ओर से हर साल साठ लाख रुपए ख़र्च होते थे। इन दोनों त्यौहारों के समय हफ़्तों नहीं, महीनों तक एक विचित्र चहल-पहल मची रहती थी।

इसी उदार-हृदय दानी मुसलमान नरेश ने अपनी पालकी ढोने वाले एक कहार की सेवा से प्रसन्न होकर, उसे लाखों रुपए की जागीर, महल, नक़दी और हाथी-घोड़े के साथ राजा की पदवी प्रदान की थी, जो अन्त में 'राजा मेहरा' के नाम से विख्यात हुआ। राजा मेहरा के सम्बन्ध में एक बड़ी मज़ेदार कहानी प्रचलित है।

उन दिनों पालकी सर्वश्रेष्ठ और बड़ी शानदार सवारी समझी जाती थी। राजा, महाराजा, रईस और ज़मींदार अधिकतर पालकियों पर ही सवार होते थे। ऐसा कोई बड़ा आदमी न होता था, जिसके पास एक-दो पालकियाँ और उन्हें ढोने वाले चार-छः कहार नौकर न हों। शहरों में इक्कों और ताँगों की तरह किराए पर पालकी और कहार मिला करते थे। नवाब के दरबारी अपनी-अपनी पालकियों पर ही दरबार में हाज़िरी देने आया करते थे। नवाब बहादुर की भी प्रधान सवारी पालकी

ही थी। यहाँ तक कि ईस्ट इण्डिया कम्पनी के लखनऊ के रेज़ीडेण्ट मि० जॉन चेरी भी नवाब के दरबार में आते थे, तो पालकी पर ही आते थे। पालकी की उन दिनों बड़ी महिमा थी।

एक दिन दरबार में सवारियों की चर्चा चल पड़ी। किसी ने घोड़े की तारीफ़ की और किसी ने हाथी की। ऊँट, बहली और बैलगाड़ी का भी ज़िक्र आया। परन्तु अन्त में पालकी का लोहा सबको मानना पड़ा।

रेज़ीडेण्ट ने कहा—हुज़ूर, मैं पालकी की ख़ूबी का क़ायल हूँ। बेशक वह बड़े आराम की सवारी है। परन्तु हमारे देश में तो आजकल बग्घियों का बड़ा रिवाज है। एक से एक बढ़ कर सुन्दर और तरहदार बग्घियाँ वहाँ तैयार होती हैं। मैंने हाल में अपनी सवारी के लिए एक बहुत ही अच्छी बग्घी इङ्गलैण्ड से मँगवाई है। दो निहायत अच्छे घोड़े भी रख लिए हैं। हुज़ूर एक दिन उस पर सवार हों तो स्वयं अनुभव करेंगे कि आराम और शीघ्र-गमन के विचार से बग्घी और पालकी में ज़मीन-आसमान का अन्तर है। जितनी देर में पालकी चार क़दम जायगी, उतनी देर में बग्घी कोस भर निकल जाएगी।

नवाब का कहार सुरजी पास ही खड़ा था और बड़े ध्यान से रेज़ीडेण्ट साहब की बातें सुन रहा था। रेज़ीडेण्ट का कथन समाप्त होने पर नवाब बहादुर ने सुरजी की ओर देखा। उसने हाथ जोड़ कर रेज़ीडेण्ट साहब से कहा—हुज़ूर, जैसे घोड़ों में बाज़ अड़ियल टट्टू होते हैं, वैसे ही कहारों में भी सात जातियाँ होती हैं। जो अच्छी जाति के कहार हैं, उनकी पालकी बग्घी से चार क़दम आगे जाती है, चढ़ने वाले के पेट का पानी तक नहीं हिलता और न पैरों के चाप की आवाज़ आती है। सवार को इतना आराम मिलता है कि नींद आने लगती है। परन्तु बग्घी की खड़खड़ाहट, घोड़ों की टापों का शब्द और सड़क की विषमता के कारण लगने वाले धक्के अच्छे स्वस्थ आदमी को भी बीमार डाल देते हैं।

रेज़ीडेण्ट ने कहा—अच्छा, यह तो बताओ, तुम नवाब साहब का बोझ हमारी बग्घी के बराबर ले जा सकते हो?

सुरजी ने उत्तर दिया—नवाब बहादुर के इक़बाल से आशा है कि दो कोस तक तो पालकी आपकी बग्घी से दो-चार क़दम आगे ही रहेगी। बस, इससे अधिक शेख़ी यह सेवक नहीं बघाड़ना चाहता।

रेज़ीडेण्ट ने कहा—सुरजी, यह तो तुम हँसने की बातें करते हो। भला, घोड़ों की बराबरी आदमी कैसे कर सकता है। शायद तुमने अच्छे घोड़े नहीं देखे।

सुरजी ने नम्रतापूर्वक निवेदन किया—सरकार, सेवक ने सब कुछ देखा है। अरबी घोड़े भी अच्छे कहारों की बराबरी नहीं कर सकते।

रेज़ीडेण्ट ने कहा—अच्छा, तुम हमारी बग्घी को एक बार देख लो, तब अपने विचार प्रकट करना।

सुरजी बोला—नवाब साहब की बदौलत मैंने बहुत-कुछ देखा-सुना है। आपको विश्वास नहीं होता तो एक दिन बग्घी और नवाब बहादुर के 'बूचे' को एक साथ ही छोड़ कर देख लीजिए।

रेज़ीडेण्ट साहब सुरजी की बातें सुन कर हँस पड़े और नवाब से कहा—हुज़ूर, दिल्लगी ही सही। एक रोज़ आप बूचे पर सवार हों और मैं अपनी बग्घी पर बैठूँ। दोनों का मुक़ाबला करके देखा जाए।

नवाब ने अविश्वासपूर्वक कहा—ऐसा नहीं हो सकता। भला, कहार बेचारे घोड़ों का मुक़ाबला कैसे कर सकते हैं!

सुरजी ने हाथ जोड़ कर कहा—हुज़ूर, एक बार अवश्य परीक्षा करें।

नवाब बोले—परन्तु अगर तुम हार गए तो तुम्हारी सज़ा?

सुरजी ने कहा—हुज़ूर, जो चोर की सज़ा वही मेरी सज़ा।

नवाब ने कहा—अच्छा, अगले सोमवार को रमने के मैदान वाली सड़क पर दोनों का मुक़ाबला हो जाए।

उस समय लखनऊ में यही एक चौड़ी सड़क थी। बात पक्की हो गई। परन्तु नवाब को विश्वास न था कि सुरजी इस दौड़ में विजयी होगा। इसलिए रेज़ीडेण्ट के चले जाने पर उन्होंने कहा—तुमने यह क्या मूर्खता कर डाली?

सुरजी ने विश्वासपूर्वक कहा—हुज़ूर, अगर हार जाऊँगा तो शहर में मुँह नहीं दिखाऊँगा।

नवाब ने कहा—तुम तो अपना मुँह काला करके शहर से चले जाओगे, परन्तु मुझे कितना लज्जित होना पड़ेगा।

सुरजी ने कहा—लज्जित होना पड़ेगा हुज़ूर के शत्रुओं को। मैं श्रीमान के चरणों पर उत्सर्ग न हो गया तो श्रीमान को लज्जित न होना पड़ेगा।

दौड़ के लिए केवल एक कोस का स्थान निर्दिष्ट हुआ। सड़क के ढेले और कङ्कड़ आदि साफ़ करा दिए गए और उस पर सुर्ख़ी बिछा दी गई। कहारों को पाला बदलने के लिए जहाँ-तहाँ निशान भी लगा दिए गए।

सुरजी ने अपनी मदद के लिए आठ कहार चुन लिए और उन्हें आध-आध मील के अन्तर पर खड़ा कर दिया।

सोमवार को नौ बजे रेज़ीडेण्ट साहब अपनी बग्घी पर सवार होकर आ गए। थोड़ी देर के बाद नवाब साहब की सवारी भी आ गई। नवाब साहब का 'बूचा' बग्घी के बराबर रक्खा गया। सुरजी अपने कई साथियों को लेकर एक मील के अन्तर पर खड़ा हुआ। दूसरे कहारों ने 'बूचा' उठाया। साहब ने घोड़ों की रास ढीली की और कहारों ने भी दुलकना आरम्भ किया। आध कोस तक नवाब का बूचा घोड़ों के साथ-साथ रहा; न एक क़दम आगे न एक क़दम पीछे। आध कोस पर सुरजी ने अपने साथियों के साथ पल्ला बदला और बूचा लेकर हवा हो गया। साहब ने घोड़ों को शिशकारना आरम्भ किया, परन्तु वे सुरजी को नहीं पा सके। सुरजी ने बग्घी से पहले ही निर्दिष्ट स्थान पर ले जाकर सवारी रख दी और ईश्वर का नाम लिया।

सड़क के दोनों किनारों पर तमाशा देखने वालों की भीड़ लगी थी। सारा लखनऊ यह अजीब दौड़ देखने के लिए टूट पड़ा था। वाह-वाह की आवाज़ से आकाश गूँज उठा। रेज़ीडेण्ट साहब आश्चर्य में पड़ गए और नवाब को सलाम करके अपनी कोठी पर चले गए।

नवाब बहादुर उसी बूचे पर अपने महल में आए और प्रसन्न होकर सुरजी को 'राजा' की पदवी प्रदान की। साथ ही बहुत से घोड़े, हाथी, झालरदार पालकी, नौकर-चाकर और सवारों का एक रिसाला दिया। साथ ही ख़र्च के लिए यथोचित वेतन नियत कर दिया और नाम रख दिया, राजा सूर्यनारायण। रेज़ीडेण्ट साहब ने भी काफ़ी इनाम-इकराम दिया। परन्तु सुरजी का यह सम्मान दरबार के अन्य राजाओं तथा सरदारों को अच्छा नहीं लगा। उन्होंने नवाब बहादुर की ख़ातिर से इसका विरोध तो नहीं किया, परन्तु इस पर कोई प्रसन्नता नहीं प्रगट की और ईर्ष्यावश होकर उसे 'राजा मेहरा' कहने लगे। कहारों ने भी राजा सूर्यनारायण की पालकी उठाने से इनकार कर दिया था। परन्तु उसने उन्हें समझा-बुझा कर राज़ी कर लिया।

'राजा मेहरा' कुछ पढ़े-लिखे और दरबार के क़ायदे-क़ानून से वाक़िफ़ थे। राजा की पदवी प्राप्त कर लेने पर उन्होंने फ़ारसी और थोड़ी सी अरबी तथा संस्कृत का भी अभ्यास किया। कुछ दिनों के बाद ही नवाब ने इन्हें अपने 'पुस्तकालय' का दारोग़ा मुक़र्रर कर दिया, इससे उन्हें विद्या-चर्चा के लिए सुन्दर सुयोग प्राप्त हो गया।

नवाब बहादुर ने गञ्ज नामक मुहल्ले में राजा मेहरा के लिए एक सुन्दर हवेली बनवा दी थी और उसी के आस-पास राजा मेहरा ने अपने लिए कुछ जायदाद भी मोल ले ली थी। अन्त में नवाब ने रूमी दरवाज़ा के पास उनके रहने के लिए एक दूसरा सुन्दर मकान बनवा दिया और वे उसी मकान में आजीवन रहे। यह इमारत अभी तक मौजूद है।

राजा मेहरा जाति के मल्लाह थे। बड़े बुद्धिमान और विचारशील आदमी थे। उनकी जाति वालों ने उन्हें अपना सरपञ्च नियुक्त किया था। उच्च पद प्राप्त करने पर भी वे अपनी बिरादरी वालों की बड़ी ख़ातिर करते थे और उनकी भलाई के लिए नवाब साहब से सदैव सिफ़ारिश किया करते थे।

राजदरबार में उनका यथेष्ट मान था। वे झालर-दार पालकी में सवार होकर नवाब के दरबार में जाते थे और दूसरे सरदारों के बराबर के आसन पर बैठते थे। बड़े चतुर और हिसाब-किताब में इतने चौकस थे कि राजा झाऊलाल कभी-कभी हँसी में उन्हें 'कायस्थ का बच्चा' कहा करते थे।

एक बार एक मुसलमान मन्त्री ने नवाब साहब से कहा कि हुज़ूर, आपने एक नीच जाति के मनुष्य को इतना उच्च पद प्रदान करके अपने दरबार के सरदारों को दुखी किया है। वे लोग सदैव उससे जला करते हैं।

नवाब ने कहा, जलने दो। मैंने उसके गुणों का आदर किया है, जो मेरा कर्तव्य था। उच्च वंश में जन्म लेने से ही कोई उच्च नहीं हो जाता। जिसमें सद्गुण होते हैं, वही उच्च पद प्राप्त करता है। सुरजी ईमानदार

है, हमारे राज्य का शुभचिन्तक और धर्मभीरु है। सच बोलता है, झूठी ख़ुशामद नहीं करता और न कभी कोई अन्याय करने की सलाह देता है।

एक दिन नवाब ने कहा—मैंने कहारों का नाच नहीं देखा है। राजा मेहरा ने कई सुन्दरी स्त्रियों को कहारों का नाच, उनका गाना और 'हुडुक' बजाना सिखाया और एक दिन नवाब के सामने उन्हें उपस्थित किया। नवाब बहुत प्रसन्न हुए और उस नाच का नाम 'कहरवा' नाच रख दिया। इस नाच का इतना प्रचार हुआ कि तवायफ़ों और नक़्क़ालों (भाँड़ों) ने भी उसकी नक़ल की।

राजा मेहरा ने बड़ी लम्बी आयु पाई थी। नवाब सआदतअली ख़ाँ और नवाब नसीरुद्दीन हैदर के काल तक जीवित रहे। नवाब आसिफ़ुद्दौला की तरह ही उनके उत्तराधिकारी नवाबों के दरबार में भी राजा मेहरा का बड़ा मान था। नवाब आसिफ़ुद्दौला की तरह ये भी गुणियों का बड़ा आदर करते थे। मशायरों में बड़े शौक़ से जाते थे और कवियों को अपने घर बुला कर उनका सम्मान करते थे। आग़ा मीर नाम के एक कविता-प्रेमी सरदार से इनकी गहरी मित्रता थी। एक बार लखनऊ के विख्यात कवि 'नासिख़' ने आग़ा मीर की प्रशंसा में एक कविता लिखी। राजा मेहरा ने आग़ा मीर से उन्हें सवा लाख रुपए इनाम दिलवाए। ये स्वयं भी कवियों को बहुत रुपए दिया करते थे। इसके सिवा यदि कोई भी शरीफ़ आदमी इनके पास अपनी किसी आवश्यकता की पूर्ति के लिए जाता, तो कभी ख़ाली हाथ नहीं लौटता था। चुपके से जो कुछ बन पड़ता, उसे दे देते और कहते, मैं इस योग्य नहीं हूँ कि आपकी कुछ सेवा कर सकूँ। पान खाने के लिए जो कुछ बन पड़ा है, सेवा में उपस्थित किया है। इसे स्वीकार कीजिए। परन्तु इसका कहीं ज़िक्र न कीजिएगा।

अपने काम के लिए राजा मेहरा किसी को कष्ट देना नहीं चाहते थे। एक बार नवाब आसिफ़ुद्दौला ने कहा कि हमारी इच्छा है कि तुम अपना मकान छोड़ कर मेरे पास ही चले आओ। हमारे महल के आस-पास जो जगह पसन्द करो, तुम्हारे लिए मकान बनवा दिया जाए।

राजा ने हाथ जोड़ कर कहा—हुज़ूर, राजमहल के आसपास भले आदमियों की बस्ती है। किसी भले आदमी का मकान तुड़वा कर मेरे लिए मकान बनेगा, तो मैं उसमें सुख से न रह सकूँगा। जहाँ रहता हूँ, वहीं अच्छा है। अथवा फिर किसी ऐसी जगह बनवा दीजिए, जहाँ रहने से किसी को कष्ट न हो।

नवाब ने ऐसा ही किया और नदी किनारे ज़नाना-घाट के पास एक मकान बनवा दिया, जिसका ज़िक्र ऊपर हो चुका है।

नवाब आसिफ़ुद्दौला को मुर्ग़बाज़ी का बड़ा शौक़ था। इसलिए राजा मेहरा ने भी बहुत से लड़ाके मुर्ग़ पाल रक्खे थे। मुहर्रम में ताज़ियादारी भी करते थे। परन्तु अपने धार्मिक विचारों पर दृढ़ थे।

राजा मेहरा अपनी जाति के सच्चे सेवक थे और उसकी भलाई करने से कभी भी पराङ्मुख नहीं होते थे।

निराश जीवन

[श्री० शिवप्रसाद]

सिहर उठते हैं निर्बल मन।
निराशा है जिनका जीवन॥

उन्हीं के जीवन का ले सार।
रात्रि लेती रहती अवतार॥

हँसा करते तारक समुदाय!
यही जग का जीवन है हाय!!

अंगरेज़ों में अन्धविश्वास

[श्री० सत्यभक्त जी]

प्रत्येक देश और प्रत्येक समाज में ऐसी कितनी ही प्रथाएँ और रूढ़ियाँ प्रचलित होती हैं, जो अन्य लोगों की तथा उसी समाज के कितने ही सुधार-प्रिय तथा शिक्षित व्यक्तियों की दृष्टि में भ्रम-पूर्ण और मिथ्या प्रतीत होती हैं। ऐसी रूढ़ियों को 'अन्धविश्वास' के नाम से पुकारा जाता है और जो लोग उनका पालन करते हैं, वे जाहिल अथवा मूढ़ समझे जाते हैं। इसी प्रकार की अनेक रूढ़ियों के आधार पर भारतवर्ष से विद्वेष रखने वाले अनेक विदेशी लेखक इस देश के निवासियों को असभ्य अथवा अर्द्ध-सभ्य कहते हैं। जब कभी भारतवासी उन अधिकारों का दावा करते हैं, जो वर्तमान समय में संसार के स्वतन्त्र, उन्नतिशील राष्ट्रों को प्राप्त हैं, तो इसी प्रकार के अनेक आक्षेप करके उनकी माँग का विरोध किया जाता है। परन्तु ये लोग इस बात को भूल जाते हैं कि इस प्रकार की प्रथाएँ तथा रूढ़ियाँ सभ्य से सभ्य देशों में, जहाँ शिक्षा का पूर्ण-रूप से प्रचार हो चुका है तथा ज्ञान-विज्ञान की भली-भाँति उन्नति हो चुकी है, पाई जाती हैं। इतना ही नहीं, वहाँ के विद्वान उनकी खोज करके तथा उनको लिपि-बद्ध करके इस बात की चेष्टा करते हैं कि लोग इस विषय का अध्ययन करें तथा ऐसे साहित्य का सर्व-साधारण में प्रचार हो। इङ्गलैण्ड तथा अन्य यूरोपियन देशों में इस प्रकार की प्रथाओं तथा साहित्य की आलोचना करने वाली संस्थाएँ स्थापित हो गई हैं। इस विषय के मर्मज्ञों के मतानुसार इस प्रकार की जनश्रुतियों और लोक-कथाओं के द्वारा समाज के अज्ञात इतिहास पर प्रकाश पड़ता है और वर्तमान सामाजिक नियमों की वास्तविकता का पता लगता है। वे लोग इन प्रथाओं को समूल नष्ट करने के पक्ष में भी नहीं हैं, क्योंकि उनकी सम्मति में इनमें से अधिकांश सिवाय निर्दोष मनोविनोद के कुछ अर्थ नहीं रखतीं। हाँ, जो प्रथाएँ समाज के हित की दृष्टि से हानि-कारक तथा नृशंसतापूर्ण हों, उनको मिटाने की चेष्टा अवश्य की जानी चाहिए।

जन्म

भारतीय और अन्य पूर्वीय जातियों की भाँति अङ्ग-रेज़ों में भी ऐसी अनेकों रूढ़ियाँ प्रचलित हैं, जिनका कोई विशेष उद्देश्य नहीं जान पड़ता और न वे विज्ञान के अनुसार उपयोगिनी सिद्ध की जा सकती हैं। उनमें से कितनी ही केवल हँसने लायक़ हैं और कितनी ही कुसंस्कार की परिचायिका हैं। ये प्रथाएँ साधारण और नीची श्रेणी के लोगों में ही नहीं, बड़े-बड़े शिक्षित परिवारों तक में पाई जाती हैं। मि० बाल्डविन ने, जो कुछ वर्ष पहले तक इङ्गलैण्ड के प्रधान मन्त्री थे और अब भी राज-नीतिक क्षेत्र में कञ्जरवेटिव पार्टी के सबसे अधिक प्रभाव-शाली नेता हैं, सन् १९२६ में एक अवसर पर कहा था कि—"जिस दिन मैं पैदा हुआ था, हमारी रसोईदारिन, जो एक बुढ़िया थी, मुझे कम्बल में लपेट कर सीढ़ियों पर ले गई, ताकि मैं संसार में उन्नति के सोपान पर चढ़ सकूँ। उसकी इच्छा थी कि मैं बहुत बड़ी पदवी प्राप्त करूँ, इसलिए वह मुझे एकदम छत पर ले गई और कुर्सी पर चढ़ कर मुझे दोनों हाथों से ऊपर की ओर उठा दिया।" इस प्रकार के और भी कितने ही अन्धविश्वास प्रसवकाल के सम्बन्ध में वहाँ प्रचलित हैं। हमारे देश की भाँति इङ्गलैण्ड में बच्चे के जन्म-दिन के शुभ-अशुभ होने का भी बड़ा ख़याल रक्खा जाता है और इस सम्बन्ध में निम्नलिखित छन्दोबद्ध कहावत वहाँ के लोगों में आमतौर पर प्रचलित है :—

Monday's child is fair of face,
Tuesday's child is full of grace,
Wednesday's child is full of woe,
And Thursday's child has far to go,
Friday's child is loving and giving,
And Saturday's child has to work for a living,
But the bairn that is born on sabath day,
Is bonny and lucky and wise and gay.

इसका अर्थ यह है कि सोमवार को उत्पन्न होने वाला बच्चा सुन्दर होता है; मङ्गलवार का श्रीमान होता है; बुधवार का दुखी होता है; बृहस्पतिवार वाले को दूर की यात्रा करनी पड़ती है; शुक्रवार का प्रेमशील तथा उदार होता है; शनिवार वाले को परिश्रम द्वारा जीविका उपार्जन करनी पड़ती है, और रविवार वाला सुन्दर, सौभाग्यशाली, बुद्धिमान और प्रमुदित होता है।

इसी प्रकार बालक का जन्म-समय भी उसके सौभाग्य या दुर्भाग्य का कारण माना जाता है। ४, ८ और १२ अथवा ३, ६, ६ और १२ बजे उत्पन्न होने वाला बालक विशेष रूप से भाग्यशाली ख़याल किया जाता है। अगर जन्म के समय बालक का सिर झिल्ली से ढका हो, तो इसे बड़ा शुभ चिन्ह माना जाता है और उस झिल्ली को सदैव बहुत सँभाल कर रक्खा जाता है। अगर बालक की नाक पर नीली रेखा दिखलाई दे, तो उसके डूब कर मरने की सम्भावना की जाती है। जो व्यक्ति सर्वप्रथम बच्चे को चूमता है, उसका प्रभाव बच्चे पर पड़ता है और इसलिए ऐसा करने से पूर्व माँ की आज्ञा लेना आवश्यक समझा जाता है।

डेवनशायर नामक स्थान में प्रसवकाल के अवसर पर पनीर का एक बड़ा टुकड़ा तैयार किया जाता है और बालक के भूमिष्ठ होते ही उसका एक भाग डॉक्टर को खाना पड़ता है। उत्तरी प्रदेशों में एक 'केक' बनाया जाता है, जिसे बच्चे का जन्म हो जाने पर तमाम सम्बन्धी खाते हैं।

नवजात शिशु के सम्बन्ध में और भी अनेक नियमों का पालन आवश्यक माना जाता है। हमारे यहाँ की भाँति इङ्गलैण्ड वाले भी एक वर्ष की उम्र तक बच्चे के बाल और नाख़ून काटना बुरा समझते हैं। अगर सर्वप्रथम काटे हुए नाख़ूनों को 'ऐश' नामक पेड़ के नीचे गाड़ दिया जाय, तो बालक उच्चकोटि का गवैया होता है। आयु के प्रथम वर्ष में बालक को दर्पण दिखलाना निषिद्ध माना जाता है। बच्चे के दाहिने हाथ को धोने के बजाय गीले कपड़े से पोंछ देना चाहिए, क्योंकि ऐसा करने से वह धन-संग्रह करने में सफल हो सकेगा। लन्दन और कितने ही अन्य नगरों के निवासी बच्चे के तोले जाने को बहुत बुरा समझते हैं; क्योंकि उनकी सम्मति में ऐसा करने से बालक एक वर्ष के भीतर मर जायगा। कितने ही लोग बच्चे का नाम निश्चित करने के लिए बाइबिल को खोलते हैं और जो पृष्ठ सामने आता है, उसी में से कोई नाम चुन लेते हैं।

जब तक बालक का बपतिस्मा न हो जाय, तब तक उसे किसी के घर ले जाना अमङ्गलजनक माना जाता है। जिस समय उसे बपतिस्मा के लिए गिर्जे में ले जाते हैं, उस समय यदि वहाँ कोई नई खुदी क़ब्र दिखलाई दे तो यह बच्चे की मृत्यु का चिह्न है। ऐसे अवसर पर गिर्जे का उत्तरी दरवाज़ा खुला रक्खा जाता है, ताकि बच्चे के भीतर निवास करने वाला शैतान उसमें होकर भाग सके। अगर बच्चा "पवित्र जल" छिड़कने से न रोवे, तो इसे अशुभ माना जाता है और उसे चुपके से चिकोटी काट कर रुला दिया जाता है। अगर बपतिस्मा के लिए एक लड़का और एक लड़की पादरी के सामने एक ही समय लाए जायँ, तो पादरी पहले लड़के को बपतिस्मा देता है; क्योंकि ऐसा न करने से लड़के की दाढ़ी-मूँछें लड़की को निकल आएँगी।

इङ्गलैण्ड के लोगों में प्राचीन-काल से यह विश्वास फैला हुआ है कि बपतिस्मा के नवीन जलपात्र से सबसे पहले जिस बालक का संस्कार किया जायगा, उसकी मृत्यु हो जायगी। यह विश्वास उसी तरह का है जैसे कि हमारे यहाँ लोग विश्वास करते हैं कि कोई नवीन मकान या कुआँ या पुल मनुष्य का बलिदान पाने से ही सन्तुष्ट होता है। इसका एक उदाहरण 'हडर्सफ़ील्ड एकज़ामिनर' नामक पत्र की २५ नवम्बर १९१० की संख्या में प्रकाशित हुआ था। उसमें लिखा था—"डाल्टन में एक नया गिर्जाघर बनाया जा रहा था। उसी स्थान में एक लुहार था, जिसके सात लड़कियाँ

थीं और हाल ही में एक लड़का उत्पन्न हुआ था। नवीन गिर्जे के उद्घाटन के कुछ दिन पहले वह पादरी के पास पहुँचा और अस्थायी गिर्जे में अपने लड़के को बपतिस्मा देने की प्रार्थना की। पादरी बोला—"जोसफ़, जल्दी क्यों करते हो? बृहस्पतिवार तक ठहर जाओ, तुम्हारे लड़के का बपतिस्मा नए गिर्जे में उद्घाटन के अवसर पर किया जायगा।" लुहार ने कुछ सङ्कोचपूर्वक कहा—"यह तो ठीक है साहब, पर आप जानते हैं, इस बार हमारे यहाँ लड़का पैदा हुआ है और वह मर जायगा तो तमाम घर वालों को बड़ा दुःख होगा। अगर यह लड़की होती तो हमको ज़रा भी परवाह नहीं होती; क्योंकि हमारे यहाँ लड़कियाँ बहुत ज़्यादा होती हैं।"

बपतिस्मा हो जाने के बाद बच्चे को परिचित व्यक्तियों के घर ले जाया जाता है और सब जगहों से उसे कुछ भेंट मिलती है। पुराने विचारों के लोग अण्डा, नमक, डबल रोटी, केक या एक सिक्का देते हैं। कुछ स्थानों में चीनी और चाय भी दी जाती है। कभी-कभी भेंट का पदार्थ बच्चे के कपड़े से बाँध दिया जाता है और घर पहुँचने तक नहीं खोला जाता। लीसेस्टरशायर में बच्चे को देखने के लिए जितने मित्र और सम्बन्धी आते हैं, वे सब उसके हाथ में एक 'फ़्लोरिन' (२ शिलिङ्ग का चाँदी का सिक्का) देते हैं। ये सिक्के दूसरे सिक्कों से बदले नहीं जा सकते और बच्चे के कपड़े के लिए ही ख़र्च किए जाते हैं। जो व्यक्ति उस कपड़े को देखता है वह उसे सौभाग्य की कामना से छू लेता है।

बच्चा जब बड़ा होता है और उसका दूध का दाँत गिरता है, तो उसे आग में डाल कर कहा जाता है—'अच्छा दाँत—बुरा दाँत—भगवान दे मुझे नया अच्छा दाँत।'

विवाह

विवाह के सम्बन्ध में सर्व-साधारण में ऐसी कितनी ही कहावतें प्रचलित हैं, जिनको सिवाय अन्धविश्वास के कुछ नहीं कहा जा सकता। उदाहरण के लिए लोगों की धारणा है कि मई के महीने में विवाह करना अशुभ होता है। इसका फल यह होता है कि प्रायः अप्रैल के अन्त में विवाहों की संख्या बहुत बढ़ जाती है। इसी प्रकार विवाह के दिन के सम्बन्ध में शुभ-अशुभ का विचार किया जाता है। इस सम्बन्ध में निम्न-लिखित जनश्रुति प्रायः सर्वत्र सुनने में आती है:—

Monday for health,
Tuesday for wealth,
Wednesday best day for all.
Thursday for crosses,
Friday for losses,
Saturday no luck at all.

अर्थात्—"सोमवार का विवाह स्वास्थ्य के लिए, मङ्गल का धन के लिए और बुध का सब बातों के लिए शुभ है। बृहस्पति का विवाह असफलता, शुक्र का हानि और शनिवार का भाग्यहीनता का देने वाला है।"

दुलहिन के लिए अपने विवाह की घोषणा सुनना, विवाह की पूरी पोशाक पहिन कर दर्पण देखना, अथवा विवाह की पोशाक को दीपक के प्रकाश में देखना निषिद्ध माना जाता है। दुलहिन की पोशाक के सम्बन्ध में भी एक जनश्रुति प्रचलित है, जो इस प्रकार है:—

Something old, something new,
Something borrowed, something blue.

अर्थात्—"कुछ चीज़ें पुरानी हों, कुछ नई हों, कुछ माँगी हुई हों और कुछ नीले रङ्ग की हों।"

यदि विवाह के समय सूर्य निकला रहे, तो दुलहिन को भाग्यवान समझा जाता है। जब वह गिर्जे के लिए रवाना होती है, तो पहले दाहिना पैर घर की देहरी पर रखती है। गिर्जे में विवाह-कार्य होते समय अपने घर का दर्वाज़ा बन्द रखना बुरा माना जाता है। यदि गिर्जे में प्रवेश करने से ठीक पहले वहाँ की घड़ी बजे तो यह शुभ चिह्न है और इसके लिए देहातों की दुलहिनें जब तक घण्टा नहीं बजता, तब तक बाहर खड़ी रह कर उसकी प्रतीक्षा किया करती हैं। किसी-किसी स्थान में विवाह हो जाने के बाद दो पत्थर खड़े करके और उन पर एक पत्थर आड़ा रख कर अथवा एक लकड़ी की बेञ्च रख कर नव-दम्पति का रास्ता रोक दिया जाता है और उन्हें उछल कर उसे पार करना पड़ता है। जो मित्र उनको इस कार्य में सहायता देते हैं, उनको कुछ भेंट दी जाती है। जिस प्रकार हमारे देश में विवाह के अवसर पर धान की खीलें फेंकने की रीति है, उसी प्रकार अङ्गरेज़ों में भी गिर्जा से लौटते समय नव-दम्पति

पर चावल फेंके जाते थे। पर अब कितने ही वर्षों से चावल का रिवाज प्रायः मिट गया और उसके स्थान में 'कनफैटी' (चमकीले काग़ज़ की बनी छोटी-छोटी टिकुलियाँ) फेंकी जाती हैं। दम्पति पर पुराने जूते फेंकने का रिवाज भी अङ्गरेज़ों में सर्वत्र प्रचलित है। जब दुलहिन अपने पति के घर के पास पहुँचती है, तो उसकी गाड़ी पर या स्वयं उसी पर रकाबी में रख कर एक केक फेंका जाता है और यदि रकाबी गिर कर टूट नहीं जाती या कम से कम उसका किनारा झड़ नहीं जाता, तो इसे अशुभ चिह्न समझा जाता है। कहीं-कहीं पति के मकान की देहली पर पहुँचने पर दुलहिन को गोद में उठा कर भीतर ले जाते हैं। दुलहिन पति-गृह में प्रवेश करते समय एक पत्थर का टुकड़ा साथ में ले जाती है।

मृत्यु

जब कोई व्यक्ति मर जाता है, तो उसके मित्र, पड़ोसी तथा अन्य लोग उसके पास इकट्ठे हो जाते हैं और उसके हाथ को छूते हैं। आजकल इसका कारण यह बतलाया जाता है कि उन व्यक्तियों को मरने वाले के प्रति किसी प्रकार का द्वेष-भाव नहीं है, पर प्राचीन काल में इसका उद्देश्य प्रेतात्मा के कोप से सुरक्षित रहना था। इसी भय से कहीं-कहीं मृत व्यक्ति के कमरे को चारों तरफ़ से पर्दा डाल कर ढक देते हैं।

एक लेखक के मतानुसार अब से दो-तीन सौ वर्ष पहले किसी-किसी स्थान में मृत व्यक्ति के नाम पर एक रोटी, एक प्याला जौ की शराब तथा छः आना पैसा एक व्यक्ति को दिया जाता था, जिसे "पाप-भक्षक" (Sin Eater) कहते थे। वह इन वस्तुओं को खा-पीकर मरने वाले के पापों को अपने ऊपर ले लेता था। अब यह प्रथा तो शेष नहीं रह गई है और कितने ही लोग इसे कल्पित बतलाते हैं, पर अब भी कितने ही लोग मुर्दे के ऊपर रोटी का एक टुकड़ा या नमक से भरा प्याला रख देते हैं। यह भी विश्वास किया जाता है कि मरे हुए व्यक्ति के कपड़े बहुत जल्दी गल जाते हैं।

जिन लोगों की आर्थिक अवस्था अच्छी होती है, वे प्रायः मुर्दे को दफ़नाने में बहुत अधिक ख़र्च करते हैं। सन् १९२४ में एक औरत के शव पर एक सौ हार चढ़ाए गए थे, जिनमें से कितने ही बड़े मूल्यवान थे। मृत्यु के अवसर पर कुछ खाना-पीना भी होता है। कुछ व्यक्ति अब भी ऐसे मिलते हैं, जो प्राचीन काल की भाँति मुर्दे के नाम पर भोजन-सामग्री उत्सर्ग करते हैं। सन् १९२६ में नैण्टविच नामक स्थान के एक परिवार की तीन बहिनें अपनी मृता माता के शव के पास फल, रोटी, मक्खन, चाय आदि से भरी हुई थाली रखती पाई गई थीं। सन् १९२८ में डेवनशायर की एक स्त्री ने एक डिस्ट्रिक्ट बोर्ड पर इसलिए नालिश की थी कि उसे अपने मृत सम्बन्धी की क़ब्र पर भोजन और फूल चढ़ाने से रोका गया। यार्कशायर में एक मृत व्यक्ति की माता और बहिन प्रति सप्ताह उसकी क़ब्र पर चॉकलेट तथा मिठाई चढ़ाया करती थीं।

नवीन गिर्जाघरों के क़ब्रिस्तान में सब से पहले मुर्दा दफ़न करना अमङ्गलजनक समझा जाता है और इसलिए बहुत दिनों तक वे योंही पड़े रहते हैं। इस तरह के एक चर्च-यार्ड में बहुत समय बाद सड़क पर पड़ा हुआ किसी अनाथ व्यक्ति का शव दफ़नाया गया और उसके बाद अन्य लोग उसे काम में लाने लगे। इसी प्रकार एक दूसरे चर्च-यार्ड का उद्घाटन एक यात्री के नौकर के मर जाने से हुआ। चर्च-यार्ड के उत्तरी भाग में शव दफ़नाना भी अशुभ माना जाता है।

हमारे देश की भाँति अङ्गरेज़ों में भी कहीं-कहीं अशौच-पालन का नियम देखने में आता है। ऐसे स्थानों में मृत व्यक्ति के सम्बन्धी रविवार के दिन गिर्जाघर में दूसरे लोगों से अलग रहते हैं और घर लौटते समय बातचीत नहीं करते।

स्त्रियों की ख़रीद-फ़रोख़्त

पुराने ज़माने में इङ्गलैण्ड में प्रचलित राजकीय तथा धार्मिक नियमों के अनुसार कोई व्यक्ति अपनी पत्नी को तलाक़ नहीं दे सकता था। इसलिए वहाँ के निवासी ऐसी आवश्यकता पड़ने पर अपनी स्त्री को बेच डालते थे। अगर स्त्री की क़ीमत एक शिलिङ्ग (१२ आना) से कम न ली गई हो और उसे गले में रस्सी या पट्टा डाल कर ख़रीददार के सुपुर्द किया गया हो तो बिक्री क़ानूनन् जायज़ मान ली जाती थी। वर्तमान समय में तलाक़ की प्रथा प्रचलित हो जाने से स्त्री बेचने की प्रथा की आवश्यकता नहीं रह गई है, तो भी कभी-कभी ऐसी घटनाएँ होती रहती हैं।

सन् १९०८ में एक व्यक्ति ने अपनी स्त्री को मार-पीट कर घर से निकाल दिया था। स्त्री ने अदालत में दावा किया और वहाँ पता लगा कि उसके पति ने उसे सन् १८८० में ५ पौण्ड में ख़रीदा था और इस समय तक उसके १२ बच्चे उत्पन्न हो चुके थे। सन् १९१९ में कुली का काम करने वाली एक स्त्री ने टोटनहम के मैजिस्ट्रेट की अदालत में बतलाया था कि उसके पति ने उसे एक दूसरे व्यक्ति के हाथ बेच डाला है। सन् १९२० में साउथएण्ड की पुलिस-अदालत में एक मुक़दमे की कार्यवाही में प्रगट हुआ कि एक व्यक्ति ने एक चाय की दुकान में बैठ कर किसी अन्य व्यक्ति से एक राज़ीनामे पर दस्तख़त कराया था, जिसमें लिखा था कि दस्तख़त करने वाला व्यक्ति उसकी स्त्री को अपने पास रक्खेगा और उसकी देख-भाल करेगा। सन् १९२४ में 'न्यू कैसिल आन टेन' की अदालत में एक फल बेचने वाले की स्त्री ने बतलाया था कि उसके पति ने एक दूसरे व्यक्ति की स्त्री को ख़रीदने के लिए लिखा-पढ़ी की है। सन् १९२६ में लीड्स के मैजिस्ट्रेट की अदालत में एक मुक़दमे की कार्यवाही में प्रकट हुआ कि एक व्यक्ति ने अपनी पत्नी को उसकी रज़ामन्दी से १० पौण्ड में बेच डाला है। सन् १९२८ में ब्लैकवुड के एक व्यक्ति ने अपनी स्त्री को १ पौण्ड में ही बेच डाला था और अदालत के सामने इस बात को स्वीकार करते हुए कहा था कि—"मैंने अपने बच्चे को इसलिए नहीं बेचा कि वह मेरे ही रक्त-मांस से उत्पन्न हुआ है।" स्त्रियों को इस प्रकार बेचने और ख़रीदने का रिवाज अक्सर ग़रीब लोगों में पाया जाता है; क्योंकि क़ानून के अनुसार तलाक़ देने में बहुत सी उलझनें पड़ती हैं और ख़र्च भी काफ़ी पड़ता है, जिसे ऐसे लोग बर्दाश्त नहीं कर सकते।

कुछ व्यवसाय

कुछ समय पहले तक इङ्गलैण्ड के ग्वालों में यह विश्वास पाया जाता था कि अगर गाय को दुहने से पहले और पीछे हाथ न धो लिए जायँ, तो गाय का दूध सूख जाता है। अगर दुहते समय दूध की कुछ बूँदें गाय के पैर पर पड़ जायँ तो भी उसका दूध सूख जायगा। दुहने से पहले दूध की कुछ बूँदें ग्वाला अपने हाथ पर डाल लेता है। दुहने के आरम्भ में तथा बाद में कुछ बूँदें ज़मीन पर भी डालनी पड़ती हैं। गाय की पूँछ चाहे कैसी भी उलझी हुई हो, उसे तेज़ धार की चीज़ से नहीं काटना चाहिए, अन्यथा उसका बच्चा अधूरा ही उत्पन्न हो जायगा।

जहाज़ों के मल्लाह शकुनों और दैवी चिन्हों का बहुत ख़याल रखते हैं। जहाज़ पर अगर कोई शव या शव रखने का सन्दूक़ हो, या शव की क्रिया-कर्म कराने के लिए कोई पादरी यात्रा कर रहा हो, तो इसे बहुत अशुभ समझा जाता है। सीटी बजाने या मस्तूल में कील ठोकने से आँधी आने का भय रहता है। जिन जहाज़ों का नाम A (ए) पर समाप्त होता है (जैसे Victoria) उनको भाग्यहीन समझा जाता है। अगर जहाज़ में से कोई बिल्ली डूब जाय तो इससे जहाज़ के विपत्ति में पड़ने की आशङ्का होती है। अगर चूहे जहाज़ को छोड़ कर चले जायँ तो समझना चाहिए कि वह डूबने वाला है। यदि कोई स्थल का पक्षी आकर जहाज़ पर बैठ जाय तो यह बुरा समझा जाता है।

मछली पकड़ने वालों का विश्वास है कि ऋतुओं का अधीश्वर चन्द्रमा है और जब शुक्र के दिन नवीन चन्द्रमा उदय होता है, तो इसे ख़राब मौसम का चिह्न माना जाता है। अगर किसी घर की खिड़की के पास एक तरह की छोटी समुद्री चिड़िया आकर उड़ने लगे तो घर का जो व्यक्ति समुद्र में गया हो, उसका जीवन सङ्कटापन्न समझा जाता है। कुछ स्थानों के मछली वालों की औरतें दोपहर के बाद ऊन नहीं काततीं; क्योंकि इससे उनके पतियों को हानि पहुँचने का भय रहता है। जो नावें मनहूस समझी जाती हैं और जिनके चलाने वाले डूब जाते हैं, उनको कभी-कभी जला दिया जाता है।

पशु-पक्षी

भारतवासियों की भाँति इङ्गलैण्ड वाले भी पशु-पक्षियों द्वारा भविष्य घटनाओं का अनुमान करते हैं। लन्दन में अगर किसी के घर पर कबूतर आकर बैठ जाय, तो इसे मौत की निशानी माना जाता है। कबूतर का पङ्ख भी महा अशुभ माना जाता है और यदि किसी के तकिए या गद्दे में कबूतर का पङ्ख हो तो उसके घुल-घुल कर मरने की सम्भावना की जाती है। इङ्गलैण्ड में 'रॉबिन' पक्षी प्रायः शुभ समझा जाता है पर अगर

वह किसी खिड़की पर आकर बैठ जाय, तो इसे मृत्यु का सन्देश समझा जाता है। अगर बतखें किसी झाड़ी के नीचे इकट्ठी हों तो यह झगड़े की सम्भावना प्रकट करता है। कोयल की बोली से विवाह के समय का पता लगाया जाता है। शहद की मक्खियाँ अचानक अपना छत्ता छोड़ कर चली जाती हैं तो इससे लोग अनुमान लगाते हैं कि मक्खियाँ बड़ी जल्दी असन्तुष्ट होती हैं और उनको ख़ुश रखने के लिए घर में होने वाली घटनाएँ उनको सुना दी जाती हैं, ताकि वे अपने को एक कुटुम्बी की तरह समझें।

अन्य शकुन

ऊपर जिन अन्धविश्वासों का वर्णन किया गया है, उनके सिवाय और भी ऐसी सैकड़ों बातें हैं, जिनसे लोग विपत्ति अथवा मृत्यु के आने का अनुमान लगाया करते हैं। तस्वीर का गिरना, घर में बिल्ली का मर जाना, चूहों का मेज़, कुर्सी आदि को काटना, शीशे का टूटना, छछूँदर का घर की तरफ़ आना, कुत्ते का रोना, मुर्ग़े का आधी रात से पहले बोलना, शव-यात्रा के समय घोड़े का धीरे से हिनहिनाना आदि घटनाएँ सदैव अशुभ समझी जाती हैं। अगर किसी व्यक्ति के नाख़ूनों पर धब्बे पड़े हों तो इसे भेंट पाने का चिन्ह माना जाता है। अगर किसी की दोनों भौंहें मिली हों, तो उसके फाँसी पाने या डूब कर मरने की सम्भावना की जाती है। अगर किसी का बाल आग में डालने पर तेज़ी से जले तो इसे दीर्घ-जीवन का परिचायक समझा जाता है। कान में सनसनाहट होने से बदनामी की और नाक में खुजली होने से क्लेश की आशङ्का की जाती है। दाहिना हाथ खुजलाने से रुपया मिलने की और बाएँ हाथ में खुजली होने से रुपया जाने की सम्भावना की जाती है। पैर में खुजली होना यात्रा का चिन्ह माना जाता है। छींकना भी बड़ा महत्व-पूर्ण शकुन समझा जाता है और इसके विषय में यह जनश्रुति प्रसिद्ध है :—

Sneeze on Monday, sneeze for danger,
Sneeze on Tuesday, kiss a stanger,
Sneeze on Wednesday, get a letter,
Sneeze on Thursday, something better,
Sneeze on Friday, sneeze for sorrow,
Saturday, see your true love to-morrow.

अर्थात्—"सोमवार की छींक अमङ्गलजनक है, मङ्गल की किसी अजनबी से प्रेम कराती है, बुध को छींकने से किसी का पत्र आता है, बृहस्पति की छींक से कुछ भलाई होती है, शुक्र की छींक शोक उत्पन्न करने वाली होती है और शनिवार को छींकने से दूसरे ही दिन प्रियजन की प्राप्ति होती है।"

जन्त्र-मन्त्र और तावीज़

अङ्गरेज़ों में ज्योतिषियों से भाग्य-गणना कराना, हाथ दिखलाना, 'क्रिस्टल' में ताक कर भविष्य का पता लगाना; ताशों या चाय के प्याले से होनहार का ज्ञान प्राप्त करना; अङ्कों अथवा प्रश्नावलियों से अपने मनोरथ की सिद्धि का अनुमान करना, तावीज़ बाँधना, जन्त्र-मन्त्र करना आदि अन्धविश्वासों का ख़ूब प्रचार है। लन्दन की कितनी ही कुमारियाँ अपने प्रेमी को प्राप्त करने के लिए "ड्रैगन्स ब्लड" नामक पदार्थ को, जो किसी पेड़ का गोंद होता है या एक पेड़ की जड़ को आग में डालती हैं। अगर किसी के दाँत में दर्द होता हो, तो "ऐश" नामक पेड़ के नीचे बैठ कर पैर के अँगूठे का नाख़ून काटा जाता है। इङ्गलैण्ड में कितने ही लोग तावीज़ बेचने का पेशा करते हैं और कितनी ही स्त्रियाँ और पुरुष अपनी मनोकाम-नाओं की सिद्धि के लिए उनको ख़रीदते हैं। नवजात शिशु के मस्तक की झिल्ली डूबने से बचने के लिए बड़ा अच्छा टोटका मानी जाती है और एक समय था कि मुँहमाँगा दाम देने पर भी वह प्राप्त नहीं होती थी। अब भी कभी-कभी पत्रों में उसकी बिक्री के लिए विज्ञापन छपा करते हैं। कितने ही लोग विपत्ति से बचने के लिए भेड़ के गाल की हड्डी, विशेष शक्ल का आलू, चाँदी की अँगूठी, छछूँदर का पैर, तरह-तरह के पत्थर, कोयला, चमड़े से ढकी पारे की शीशी, ईंट का टुकड़ा आदि न मालूम क्या-क्या चीज़ें साथ में लिए फिरते हैं।

उपर जिन अन्धविश्वासों का वर्णन किया गया है, वे केवल उदाहरण की भाँति हैं। यदि सब तरह के अन्धविश्वासों का पूरी तरह से वर्णन किया जाय तो एक नहीं, कितने ही बड़े-बड़े पोथे लिखे जा सकते हैं और इस विषय की कितनी ही पुस्तकें अङ्गरेज़ी भाषा में मिलती भी हैं।
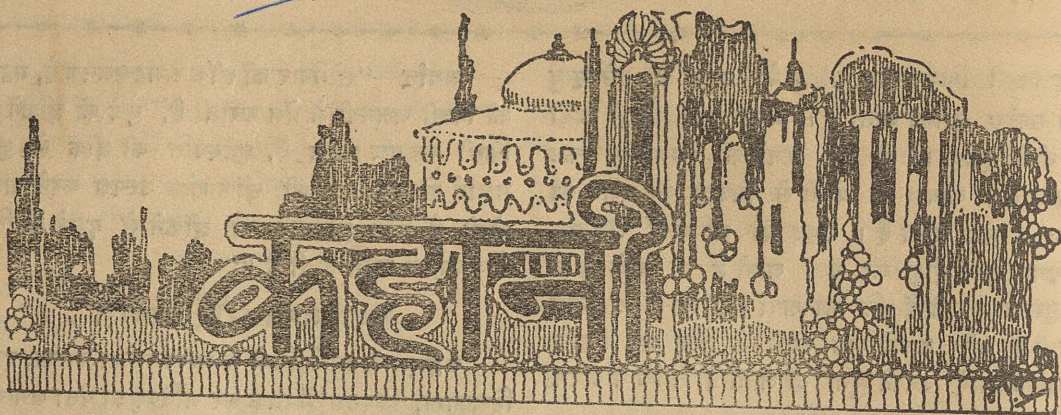
मँगरू का मार

[श्री० ललितकिशोरसिंह, बी० एस-सी०]

ग़रीबों के जीवन में भी कभी-कभी सुख की घड़ियाँ आती हैं। हीरा मुसहर की आज वही घड़ियाँ आई हैं। पिछले कई दिनों से उसने ताड़ी की दूकान का मुँह नहीं देखा था। आज दोपहर बाद खलिहान से छूटते ही वह ताड़ीख़ाने में जा पहुँचा और पासिन के छोटे से आँगन में आसन जमा कर बैठ गया। पासिन ने ताड़ी का घड़ा हीरा के आगे रख दिया और वह चुक्कड़ पर चुक्कड़ चढ़ाने लगा। जान पड़ता है, आज उसकी तृप्ति न होगी। एक तो कई दिनों बाद ताड़ी का घड़ा सामने आया है, दूसरे पासिन ने मीठी-मीठी बातों में उत्साह बढ़ाना शुरू कर दिया है। फिर, इस अनुपम रस से जाने कब भेंट हो! इसी से हीरा आज डट कर बैठा है, छक कर ही उठेगा।

पर सुख में विघ्न-बाधाएँ भी अनेक हुआ करती हैं! बाहर से किसी ने पुकार कर पूछा—हिरवा यहाँ आया है, पासिन?

हीरा चौंक पड़ा। उसने पासिन को इशारा किया। वह हीरा का आशय समझ गई और मुसकुरा कर बोली—"हीरा यहाँ नहीं आया है।" पाँच मिनट तक सन्नाटा रहा। आफ़त टली! हीरा ने फिर पीना शुरू किया।

थोड़ी देर बाद फिर बाहर से किसी ने चिल्ला कर कहा—तू झूठ बोलती है। हीरा अभी-अभी यहाँ आया है।

इस बार पासिन के भी होश उड़ गए। रङ्ग में भङ्ग पड़ गया। हीरा ताड़ी का अधूरा घड़ा छोड़ कर उदासी के साथ पासिन के झोंपड़े से बाहर निकला।

बाहर चार आदमी बड़े-बड़े लट्ठ लिए खड़े थे। उनमें से एक ने हीरा को देखते ही मुँह बना कर कहा—साला, कब से भागा-भागा फिरता है! चल बाबू के सामने। तेरी सारी बदमाशी अभी निकली जाती है।

हीरा उन चारों में से प्रत्येक से ड्योढ़ा था, बलवान था। उसका शरीर भी लम्बा-तगड़ा, गठीला, काला भूत सा था। ज़मींदार के सिपाही अकेले में उससे डरते थे। पर हीरा चुपचाप उनके साथ हो लिया।

हरदत्त बाबू बरामदे में कुर्सी पर बैठे थे। हीरा को देखते ही उनके तेवर चढ़ गए। उन्होंने क्रोध-भरे स्वर में कहा—और बातें पीछे होंगी। पहले इस हरामज़ादे को बीस जूते गिन कर लगाओ।

जूते पड़ने लगे। "एक, दो, तीन, × × ×" हरदत्त बाबू ने गिनना शुरू किया। बीस पूरा होने पर हरदत्त बाबू ने जोश में कहा—"एक और!" एक और पड़ा। हीरा पीठ से धूल झाड़, उठ कर खड़ा हुआ, मानों जूते की मार का उस पर कोई असर ही न पड़ा हो।

हीरा की हैकड़ी देख कर हरदत्त बाबू की आँखें लाल हो उठीं। उन्होंने सिपाही से कहा—जगदेवसिंह, इस बदमाश को रस्सी से बाँध कर धूप में लिटा दो।

हीरा तुरन्त रस्सियों से जकड़ कर धूप में लिटा दिया गया। एक तो ताड़ी का नशा, दूसरे कड़ी धूप की गर्मी! हीरा के बदन से पसीने की धार सी बह चली। हरदत्त बाबू ने कड़क कर पूछा—क्यों बे, तूने खलिहान से धान क्यों चुराया?

हीरा का गला रस्सी से जकड़ा हुआ था। वह धीरे से बोला—"मैंने नहीं चुराया, सरकार!" हरदत्त बाबू ने जगदेवसिंह की ओर देख कर कहा—"अभी इसका नशा नहीं उतरा है। इसे और जूते लगाओ।"

जूते फिर पड़ने लगे।

इतने में हीरा का बूढ़ा बाप मँगरू लाठी टेकता हुआ आ पहुँचा। उसके पीछे गोद में छोटा बच्चा लिए हीरा की जोरू रधिया भी आकर खड़ी हो गई। हीरा को जूते लगते देख रधिया आँचल से मुँह ढँक कर सिसकने लगी। हाँफते-हाँफते मँगरू ने हरदत्त बाबू के सामने माथा टेक दिया और भर्राई हुई आवाज़ में गिड़गिड़ा कर बोला—मालिक, हिरवा ने बड़ा क़सूर किया है। दया कीजिए सरकार! मैंने बूढ़े बाबू की बड़ी सेवा की है। आप ही हम ग़रीबों के माँ-बाप हैं, बाबू जी!

इतना कह कर मँगरू फूट-फूट कर रोने लगा। हरदत्त बाबू ने मँगरू को डाँट कर कहा—चुप रह बुड्ढे, नहीं तो तेरी भी मरम्मत हो जायगी।

मँगरू ने कातर दृष्टि से बाबू जी की ओर देखा और आँखें पोंछता हुआ पीछे हट गया।

हरदत्त बाबू ने सिपाही से कहा—चाबुक लाओ, यह हरामज़ादा जूतों की मार से सीधा न होगा।

नौकर ने चाबुक लाकर दे दिया। हरदत्त बाबू स्वयं चाबुक लेकर यमराज की तरह हीरा के पास आ खड़े हुए और डाँट कर बोले—बोल, तूने चोरी की है या नहीं?

हीरा आँखें बन्द किए पड़ा था। गर्मी के मारे उसका सिर चकरा रहा था। धीरे-धीरे आँखें खोल कर उसने कहा—"नहीं सरकार, मैंने नहीं चुराया।" फिर क्या था। हरदत्त बाबू के क्रोध का पारा और चढ़ गया। उन्होंने सपासप दो कोड़े हीरा की जाँघों पर लगाए। हीरा के मुह से आह निकल कर शून्य में विलीन हो गई और बेचारी रधिया चीख़ उठी। माता को रोती देख कर गोद का बच्चा भी बिलख उठा। मँगरू लड़खड़ाता हुआ आगे बढ़ कर रुँधे हुए स्वर में बोला—चोरी की है तो बता क्यों नहीं देता हीरा?

हरदत्त बाबू ने मँगरू की ओर घूर कर कहा—तू अभी यहाँ से चला जा, नहीं तो इसके साथ ही तेरी भी दुर्गत हो जायगी।

मँगरू हताश होकर बोला—"अच्छा, बाबू जी, मैं जाता हूँ।" फिर रधिया की ओर देख कर बोला—"चल बेटी, तू भी घर चल। बाबू जी दयावन्त आदमी हैं। आप ही छोड़ देंगे। तू घबराती क्यों है?"

मँगरू अन्तिम बार दया की बिनती करके लाठी टेकता हुआ और हरदत्त बाबू को आशीर्वाद देता हुआ वहाँ से चला गया। रधिया भी रोती-रोती उसके पीछे हो ली।

मँगरू के चले जाने पर हरदत्त बाबू ने निर्दय होकर चाबुक फटकारना शुरू किया। चाबुक की सपासप ध्वनि के साथ हीरा के कण्ठ से निकलती हुई आह एक निर्दय-करुण ध्वनि की सृष्टि कर रही थी। वे चाबुक मारते जाते थे और बीच-बीच में पूछते जाते थे—बोल हरामज़ादे, तूने चोरी की या नहीं?

मार खाते-खाते बेदम हो जाने पर उपायान्तर न देख कर हीरा ने लड़खड़ाते शब्दों में स्वीकार किया कि 'चोरी की है।' ज्यों-त्यों करके कोड़ा चलना रुका। हाँफते-हाँफते हरदत्त बाबू ने पूछा—"बता, क्यों चोरी की?" हीरा ने सिसकते हुए कहा—"सरकार, तीन-चार दिनों से ताड़ी नहीं मिली थी।"

इतना सुन कर हरदत्त बाबू फिर उबल पड़े। बोले—"अच्छा, तो अब देख ले ताड़ी का कैसा मज़ा होता है।" और फिर कोड़े लगाने लगे।

अन्त में थक कर हरदत्त बाबू कुर्सी पर जा बैठे। उनके बदन से पसीना चल रहा था। हाँफते-हाँफते उन्होंने बूढ़े मुन्शी को बुला कर कहा—मुन्शी जी, इसे पुलिस के सुपुर्द करना होगा।

बूढ़ा यह सुन कर भौंचक-सा रह गया। हरदत्त बाबू ने फिर कहा—आज ही जाकर पुलिस में रिपोर्ट लिखा दो और इसे दारोग़ा जी के हवाले करो।

मुन्शी ने दबी ज़बान से कहा—हुज़ूर, मार तो इस पर काफ़ी पड़ चुकी। अब इसे × × ×

हरदत्त बाबू ने तीव्र शब्दों में कहा—मार से क्या होता है जी! बिना सज़ा कराए काम नहीं चलेगा!

"बूढ़े सरकार तो ऐसी हालत में तम्बीह करके ही छोड़ दिया करते थे।"

"छोड़ देते होंगे, मैं नहीं छोड़ सकता इस पाजी को। जब तक एक की सज़ा न होगी, तब तक इन सालों की चोरी की आदत न छूटेगी। मैं रोज़-रोज़ का झगड़ा पसन्द नहीं करता।"

मुन्शी जी नम्रता से बोले—हुज़ूर, आख़िर ये अपने ही आदमी हैं। इनके लिए कुछ तो रहम चाहिए।

"मैं रहम-वहम कुछ नहीं जानता। तुम्हें सीधे से काम करना हो तो करो, नहीं तो अपने घर की राह लो।"

मुन्शी का मुँह काला पड़ गया। उनके मुँह से फिर कोई बात न निकली। बूढ़े सरकार का ज़माना याद कर आँखों में आँसू छलछला आए। चलते-चलते उन्होंने सोचा—अब पुराने दिन गए, नए दिन आए। भला मुझ बुड्ढे का इस ज़माने में क्या काम था?

२

आज ऑनरेरी मैजिस्ट्रेट ठाकुर चन्द्रभानसिंह के इजलास में हीरा के मुक़दमे की तारीख़ है। सवेरे से ही रधिया अपने बच्चों के साथ कचहरी के मैदान में घूम रही है। उसे किसी ने बता दिया था कि वकील-मुख़्तार हाकिम से कह-सुन कर आसामियों को छुड़ा देते हैं। इसीसे वह बहुत से वकील-मुख़्तारों के पास गई। पर किसी ने अलग से ही दुतकार दिया; किसी ने रुपए की माँग पेश की। किसी को दया आई तो उसने समझाया कि चन्द्रभानसिंह के इजलास में वकील-मुख़्तारों की नहीं चलती। वहाँ तो रुपए का राज है। घबराने की कोई बात नहीं। वे तीन महीने से ज़्यादा की सज़ा नहीं कर सकते। पर हीरा की अनुपस्थिति में तीन महीने भी कितने दीर्घ होंगे, यह रधिया ही जानती थी।

रधिया निराश होकर कचहरी के मैदान में एक पेड़ के नीचे जा खड़ी हुई। दस का घण्टा बजा। मुक़दमे-बाज़ों की भीड़ बढ़ने लगी। धीरे-धीरे काफ़ी चहल-पहल हो गई। रधिया बड़ी आतुरता से आते-जाते लोगों का मुँह ताकती, पर कुछ बोलने का साहस नहीं होता। इतने में सिपाहियों से घिरा हुआ हीरा दिखाई दिया। दृष्टि पड़ते ही रधिया का कलेजा फट गया। वह सिपाहियों के सामने जाकर फूट-फूट कर रोने लगी। हीरा को डर हुआ कि कहीं सिपाही जी चिढ़ न जायँ, इसलिए उसने रधिया को डाँट कर चुप रहने को कहा। सिपाहियों ने भी समझाया। जब हीरा हवालात की ओर चला तो रधिया सिपाहियों के पैरों पड़ने लगी और कहने लगी—बाबू जी, इसको किसी तरह छुड़ा दीजिए। नहीं तो बाल-बच्चे बिलट जायँगे। जब तक जीऊँगी, असीसती रहूँगी।

सिपाहियों ने समझा-बुझा कर रधिया को शान्त किया। जब वह चुप हुई तो एक सिपाही से धीरे से बोली—बाबू जी, इसके खाने के लिए कुछ लाई हूँ। आप हुकुम दें तो खिला दूँ।

एक सिपाही ने कहा—पहले क्यों नहीं बोली? अब तो मुक़दमा शुरू होने वाला ही है। अच्छा जल्दी ले आ।

हीरा कचहरी के ओसारे के नीचे ही बैठ गया। रधिया ने एक पोटली में से दो मोटी-मोटी रोटियाँ और कुछ चने का साग निकाल कर हीरा के हाथ पर रख दिया। हीरा खाने लगा और अभी आधा ही खा पाया था कि पुकार हुई। हीरा ने मुँह का कौर किसी तरह गले के नीचे उतारा और जल्दी-जल्दी पानी पीकर सिपाहियों के साथ इजलास में हाज़िर हुआ।

न्यायाधीश चन्द्रभानसिंह पहले ही से 'अग्निशर्मा' बने बैठे थे। यह कहने की आवश्यकता नहीं कि हरदत्त बाबू का दूत चन्द्रभानसिंह के दरबारे-ख़ास में नज़र लेकर पहुँच चुका था और हीरा के भाग्य का फ़ैसला बहुत पहले ही हो चुका था।

हरदत्त बाबू चतुर आदमी थे। उन्होंने देखा कि इस नीति के बिना राजधर्म का पालन होना कठिन है। इसके सिवा ठाकुर चन्द्रभानसिंह भी ज़मींदार ठहरे। यदि ज़मींदार, ज़मींदार के ऐसे अवसर पर भी काम न आया तो पारस्परिक एकता कैसे रहेगी? इसलिए चन्द्रभानसिंह हीरा के मुक़दमे में अवश्य न्याय करेंगे। फिर भी सन्धि की शर्तों का स्मरण दिलाने के लिए हरदत्त

बाबू का एक प्रतिनिधि ठाकुर साहब के सामने ही बैठा था।

हीरा को देखते ही चन्द्रभानसिंह बोल उठे—इसकी तो सूरत ही चोर सी मालूम होती है।

हीरा ने सुन कर सर झुका लिया और चुपचाप कटघरे में जा खड़ा हुआ। मुक़द्दमे की पेशी हुई। कुछ गवाहों के इज़हार हुए। जगदेवसिंह ने कहा कि मैंने हीरा को खलिहान से धान का बोझ उठा कर ले जाते देखा था। चौकीदार का बयान हुआ कि उसने हीरा के घर से दो बोझ धान बरामद किया। गाँव के एक-दो प्रतिष्ठित लोगों ने भी इसी बात की पुष्टि की। चौकीदार ने यह भी कहा कि हीरा ने हम लोगों के सामने स्वीकार किया है कि उसने चोरी की है। इसकी भी पुष्टि हो गई।

चन्द्रभानसिंह ने अभियुक्त से पूछा—तेरा नाम क्या है?

"हीरा।"

"वाह! नाम तो बड़ा अच्छा पाया। ज़ात क्या है?"

"मुसहर।"

चन्द्रभानसिंह झुँझला कर बोले—इन मुसहरों के मारे तो लोगों का खेती-बारी करना मुशकिल हो रहा है।

कोर्ट के दारोग़ा साहब ने जोश के साथ सर हिलाते हुए कहा—बेशक हुज़ूर का फ़र्माना बजा है। इन कम-बख़्तों का तो पेशा ही चोरी हो गया है।

चन्द्रभानसिंह ने हीरा से पूछा—तूने खलिहान पर से धान चुराया था?

हीरा दुविधा में पड़ गया। कुछ जवाब न दे सका। चन्द्रभानसिंह ने फिर वही बात पूछी। इस बार हीरा ने कहा—सरकार, मैंने चोरी नहीं की।

"चोरी नहीं की है! फिर झूठ बोल रहा है। क्या तूने इतने लोगों के सामने क़बूल नहीं किया है?"

"क़बूल किया है। पर किस दुर्गति पर क़बूल किया, यह भी देख लीजिए मालिक।"—इतना कहते-कहते हीरा का गला भर आया और वह हाकिम को अपने बदन के दाग़ दिखाने लगा।

चन्द्रभानसिंह ने जैसे उधर से निगाह फेर ली और झल्ला कर कहा—यह नाटक रहने दे! बोल, तेरा कोई गवाह भी है?

"बाबू जी, मुझे गवाह कहाँ से मिलेंगे?"

चन्द्रभानसिंह चिल्ला कर बोल उठे—दुनिया क्या तेरी ही तरह चोर है, जो तुझे गवाह मिलेंगे?

इसके बाद दारोग़ा साहब की बहस हुई। चन्द्र-भानसिंह ने हीरा से पूछा—तेरे कोई मुख़्तार-वकील हैं?

हीरा रुआँसा होकर बोला—मुझ ग़रीब को मुख़्तार-वकील कहाँ से मिलेंगे, सरकार? मेरे लिए तो जो कुछ हैं, वह ऊपर भगवान, नीचे हजूर हैं!

चन्द्रभानसिंह ने झल्ला कर कहा—बस, ज़्यादा बक-बक मत कर! चोरी करके चला है, भगवान की दुहाई देने।

हीरा की रही-सही आस भी टूट गई। उसका मुँह उदास हो गया। मैजिस्ट्रेट ने राय सुनाई—हीरा को दो महीने की सख़्त क़ैद की सज़ा! बेचारी रधिया पास ही खड़ी थी; हाकिम का फ़ैसला सुनते ही बिलख उठी। उसे रोती देख बच्चे भी चिल्ला उठे। कचहरी में शोर मच गया। चन्द्रभानसिंह ने क्रुद्ध होकर पूछा—कौन हल्ला मचा रहा है?

एक सिपाही ने कहा—हुज़ूर, आसामी की जोड़ू है।

"निकालो यहाँ से। तुम लोग खड़े-खड़े मुँह क्या देख रहे हो?"

रधिया निकाल दी गई। परन्तु जब हीरा को लेकर सिपाही जेलख़ाने की ओर चले, तो वह भी रोती-पीटती पीछे-पीछे चली। हीरा अब तक चुप था, परन्तु जब सिपाहियों ने उसे जेलख़ाने में ढकेल कर बाहर का फाटक बन्द कर दिया, तो उसका धैर्य जाता रहा और वह बच्चों की तरह सिसक-सिसक कर रोने लगा। बाहर रधिया और बच्चों का रोना सुनाई देता था, जिससे वह और भी व्याकुल हो उठा। वह दौड़ कर फिर फाटक की ओर बढ़ा, पर सिपाहियों ने आगे बढ़ने न दिया। हीरा हताश होकर बैठ गया और एक लम्बी साँस खींच कर बोला—जिसने मुझे सताया है, भगवान उसका भला करे।

३

हरदत्त बाबू के खलिहान में मँगरू पयाल से धान निकाल रहा है। उसकी कमर झुक गई है, हाथों में बल नहीं, आँखें भी काम नहीं देतीं। फिर भी वह इस कठिन काम में दत्तचित्त है। हाथ धीरे-धीरे चलते हैं। थक कर हाँफने लगता है तो थोड़ा सुस्ता लेता है। फिर ज़मीन टेक कर उठता है और धान पीटने लगता है।

उसकी ऐसी दशा देख युवक मजूर गुलाब ने कहा—दादा, तुम तो बहुत थक गए। अब थोड़ा सुस्ता लो। आओ, बैठ कर सुरती खा लें। फिर काम करेंगे।

मँगरू भी यही चाहता था। पास ही एक पेड़ की छाया में दोनों बैठ गए। सुरती बनाते-बनाते गुलाब ने पूछा—दादा, क्या हीरा भैया से कभी जेल में तुम नहीं मिले?

मँगरू ने उदास होकर कहा—नहीं भाई। एक तो मैं बूढ़ा आदमी, इतनी दूर जा नहीं सकता। दूसरे कहीं एक-दो दिन भी घर बैठना पड़ा तो हिरवा के बाल-बच्चे भूखों मर जायँगे।

"मैं तो हीरा भैया को देख आया दादा! बातें तो न कर सका, पर आँखों से देख लिया। बूढ़े सरकार की 'बरखी' के लिए सामान खरीदने मुन्शी जी बजार गए थे। मैं भी साथ था। मुन्शी जी भी कैसे दयावन्त आदमी हैं। उन्होंने सिपाहियों से कह-सुन कर हीरा भैया को बुलवाया और उससे पूछा—"कहो हीरा, तुम्हें कोई तकलीफ तो नहीं है?" हीरा भैया ने कहा—"मुन्शी जी, मिहनत-मसक्कत तो सभी जगह करनी पड़ती है। खाना भी भरपेट मिल जाता है। आपके असिरबाद से अच्छा ही हूँ।"

मँगरू ने आँखों में आँसू भर कर कहा—हीरा ने ठीक ही कहा भैया! हाँ बेटा, वह वहाँ कैसे है?

"दादा, जेल फिर जेल ही है। कहाँ हीरा की वह पट्ठा सी देह, रात को कोई देख ले तो डर से जान निकल जाय। पर अब तो वह आधा रह गया है। महीना भर और मन मार कर रहो। एक महीना तो पूरा हो गया न दादा?"

मँगरू ने लम्बी साँस खींच कर कहा—हाँ भाई, एक महीना और है। पर एक महीने में तीस दिन होते हैं गुलाब। दुःख के दिन जल्दी नहीं कटते!

गुलाब भी उदास हो गया। उसने मँगरू को सान्त्वना देकर कहा—दादा, चाहे जो हो, हीरा भैया को जेल भेज कर बाबू जी ने अच्छा काम नहीं किया।

"अच्छा- रा का हाल भगवान जानें। बाबू जी बड़े हैं। उनका धरम-करम वे ही जानें। पर हिरवा तो अपनी करनी का फल भुगत रहा है। मुझे भी बुढ़ापे में यह देखना बदा था।"

गुलाब ने दृढ़ता के साथ कहा—मैं तो इसे कभी अच्छा न कहूँगा। भला ताड़ी पीने के लिए हीरा ने थोड़ा सा धान खलिहान पर से उठा ही लिया तो क्या हुआ? हैं तो हम उन्हीं के बाल-बच्चे! हमें पीस कर उन्हें क्या बड़ाई मिलेगी? यह जगदेवसिंह ही, जो बड़ा सच्चा बना फिरता है, 'आधी तेरी, आधी मेरी' करता है। उसे कौन पूछता है? हीरा कभी-कभी छेड़-छाड़ किया करता था। इसी से तो जगदेवसिंह ने यह फन्द रच कर खड़ा किया।

गुलाब की बातों से मँगरू दुखी हुआ, उसने धीरे से कहा—बेटा, तुम लोगों की चाल-चलन और बुद्धि मेरी समझ में नहीं आती। मैं पुराने जुग का आदमी हूँ। यही ताड़ी की बात ले लो। जब मैं जवान था तब ताड़ी कोई पूछता न था। इसी से हम लोग खुसियाली के दिन ही ताड़ी पिया करते थे। अब ताड़ी मुहाल हो गई तो तुम लोग उसके पीछे मरते हो। बाल-बच्चे चाहे भूखे रह जायँ, तुम्हें ताड़ी चाहिए। तुम लोगों का हाल देख कर मैं तो अचरज में पड़ जाता हूँ।

गुलाब ने आँखें फाड़ कर पूछा—क्या पहले ताड़ी खूब मिलती थी?

"बूढ़े सरकार ताड़-खजूर पासियों को नहीं देते थे। सब के सब हमारे ही काम आते थे। अब तो छोटे-बड़े सभी पेड़ों में मटके लटक रहे हैं। बिना पैसे के उधर कोई ताक भी नहीं सकता। इसीसे अब तुम लोग उसके पीछे पागल बने फिरते हो। हम लोगों ने भी अपने दिनों में बहुत खाया-पिया। पर कभी बाल-बच्चों को भूखों नहीं मारा।"

गुलाब ने लम्बी साँस लेकर कहा—हाँ दादा, अब वे दिन नहीं रहे। बूढ़े मालिक अपने मजूरों को कितना मानते थे। अब तो हम मरें या जिएँ, मालिक को काम से काम।

गुलाब इतना ही कह पाया था कि जगदेवसिंह आता हुआ दिखाई दिया। उसने इन दोनों को बैठा देख दूर ही से चिल्ला कर बोला—तुम दोनों बैठ कर गप्पें लड़ा रहे हो। काम का कोई ख़याल नहीं।

गुलाब ने ज़रा तीखे स्वर में जवाब दिया—अभी तो बैठा था। सुरती खा रहा था। आप तो तुरन्त सर पर सवार हो जाते हैं।

जगदेवसिंह लट्ठ उठा कर बोला—देखूँ तेरी सुरती! बड़ा सुरती खाने वाला पैदा हुआ है।

"जा ही तो रहा हूँ। आप तुरन्त हाथ क्यों छोड़ बैठते हैं?"—इतना कह गुलाब वहाँ से सरक कर काम पर चला गया। जगदेवसिंह ने इस बार गन्दी-गन्दी गालियाँ देकर ही सन्तोष किया।

जगदेवसिंह की ऊपर को उठी हुई लाठी देख बूढ़ा मँगरू सूख गया था। जब तक जगदेवसिंह गुलाब से बातें करे, वह बिल्ली की तरह सिपट कर पीढ़ियों के पास जा पहुँचा और हाथ में धान के डण्ठे उठा कर उन्हें पीटने लगा।

४

मुसहरों की बस्ती, छोटे-छोटे घर; यदि कोई तन कर खड़ा हो तो सर छप्पर में जा लगे। फूस और ताड़ के पत्तों से छाई हुई झोंपड़ियाँ बरसात का पानी खा-खाकर राख के ढेर सी दिखाई दे रही हैं। इन झोंपड़ियों के द्वार इतने छोटे होते हैं कि भीतर घुसने के लिए सर को कमर तक झुकाना पड़ता है। इनमें न किवाड़ें हैं, न टट्टी! सभी घरों में खजूर की डालियों और अरहर की सूखी हुई डण्ठलों की टट्टियों से घेर कर छोटा सा आँगन निकाला हुआ है। उन्हीं टट्टियों पर दो-चार बेलें भी चढ़ी हुई हैं जिनसे, यदि ज़मींदार की दया-दृष्टि से बच जायँ तो, इन्हें सब्ज़ी का स्वाद मिल जाता है। उसी छोटे से आँगन के एक किनारे सूअरों के रहने का घरौंदा बना है। किसी-किसी के घर एक-दो बकरियाँ भी बँधी दीख पड़ती हैं।

इस पन्द्रह-बीस घरों की छोटी सी बस्ती से धुआँ निकल कर सारे आसमान में फैल रहा है। इतना धुआँ सैकड़ों घरों के गाँव से भी न निकलता होगा। जाड़े के दिनों में आग ही इनका एकमात्र जीवनाधार है। बस्ती भर में सब मिला कर शायद सौ हाथ कपड़ा भी न हो। आठ-आठ, दस-दस वर्ष के लड़के और लड़कियाँ नङ्गे ही रहते हैं।

चाँदनी रात थी। एक ओर कुत्ते और सूअर आपस में लड़ रहे थे, जिससे बच्चों की छोटी सी जमात आनन्द के मारे उछल-कूद कर शोर मचा रही थी। उनके माँ-बाप गला फाड़-फाड़ कर उन्हें मना कर रहे थे। एक घर से मृदङ्ग की धीमी-धीमी ध्वनि आ रही थी।

गुलाब ने अपने घर के सामने कुछ सूखी लकड़ियाँ इकट्ठी करके आग जलाई। भीतर से चटाई लाकर अभी वह आग के पास बैठा ही था कि मँगरू आता हुआ दिखाई दिया। वह हीरा के बड़े बच्चे का हाथ पकड़े लाठी के सहारे आ रहा था। उसे देख कर गुलाब ने कहा—आओ दादा, इधर आग के पास आकर बैठो।

मँगरू हाँफते-हाँफते बोला—हाँ भाई, बैठता हूँ, एक काम से आया हूँ गुलाब।

"क्या काम है दादा?"

"दो दिन से मैं बीमार पड़ा हूँ। सारा बदन टूट रहा है। जब ताप चढ़ जाता है, तो आँखों के आगे अँधेरा छा जाता है। इसी से मैं दो दिन घर ही बैठा रहा, काम पर न जा सका भाई।"

गुलाब ने सहानुभूति के स्वर में कहा—मजूरी-मसक्कत की भला तुम्हारी उमर है दादा?

"उमर तो नहीं है गुलाब, पर क्या करूँ? हिरवा का भार तो ढोना ही है। आज घर में एक दाना भी नहीं है। देवा भूख के मारे कब से रो रहा है। तुम्हारे घर कुछ हो तो दो भाई।"

गुलाब गम्भीर होकर बोला—घर में कहाँ से कुछ आएगा दादा? तुम तो सब जानते ही हो। यहाँ तो रोज कमाना, रोज खाना। उस पर आज मजूरी किसी को मिली ही नहीं। बाबू जी के भण्डार में धान न रहा। कल कहीं से आवेगा तो दो दिनों का इकट्ठे मिलेगा।

"भाई, अब नई-नई बात सुनता हूँ। बूढ़े सरकार के आगे कहीं ऐसा होता तो भण्डारी की जान आफत में पड़ जाती।"

"दादा, बाबू जी तो इधर मन ही नहीं देते। हम रोते-चिल्लाते हैं तो हमीं पर बिगड़ बैठते और गाली-गलौज करने लगते हैं।"

मँगरू ने आह भर कर कहा—अच्छा, तो किसी और के यहाँ जाऊँ। देखूँ कुछ मिल जाय।

"मेरे ही घर नहीं मिला तो और किसके घर मिलेगा? छिन भर बैठ जाओ न दादा, घर में देख लूँ।"

भीतर जाकर गुलाब ने देखा कि उसका बच्चा अभी खाने को बैठा ही था। उसने देवा को भी पुकार कर उसी के साथ बैठा दिया। बासी भात पानी में भिगोया हुआ और नमक—यही उनका भोजन था। दोनों बच्चे बड़ी धुन से खाने लगे। बात की बात में थाली साफ़ करके पेट भर पानी पिया। उनका पेट नहीं भरा, पर नित्य का यही अभ्यास था।

इधर गुलाब फिर मँगरू के पास आ बैठा और उत्साह के साथ बोला—देवा को तो पँचकौड़िया के साथ खाने को बैठा दिया। तुम कुछ नहीं खाओगे?

मँगरू ने सर हिलाते हुए कहा—नहीं भाई, नहीं। दो दिन से मन ऐसा गिर गया है कि नाज तो विष मालूम होता है।

गुलाब निश्चिन्त होकर बोला—दादा, इस बुढ़ौती में तो तुममें यह ताब है। जाने जवानी में क्या करते होगे।

"भाई, मेरी जवानी की क्या पूछते हो? वे दिन तो अब सपना हो गए गुलाब। जिस दिन मालिक मर कर सरग के राजा हुए, उसी दिन समझा कि अब नया पहरा आया। जिस दिन मालिक हम लोगों को रोता छोड़ कर विदा हो गए, उसी दिन सोचा कि हमारे भाग फूट गए। अब वैसे सरदार कहाँ, गुलाब?"

इतना कहते-कहते मँगरू का गला भर आया। गुलाब ने उत्सुक होकर पूछा—तुम लोग मालिक को बड़ा प्यार करते थे दादा? वह कभी मारते-पीटते नहीं थे?

"बिना मारे-पीटे मुसहरों के साथ भला कोई निभ सकता है? मारते-पीटते क्यों न थे? पर वैसे ही जैसे बाप बेटे को मारता है। इसीसे हम भी उन्हें बाप सा ही मानते थे। उनके लिए जान हथेली पर लिए रहते थे।"

गुलाब उत्साह के साथ बोल उठा—और वे भी अपने मुसहरों के लिए जान देते होंगे?

"भला यह भी कहने की बात है? जिस दिन हमीर-पुर की फौजदारी हुई थी, वह दिन आज भी मेरी आँखों के सामने नाच रहा है। भीखनसिंह से सरहद का झगड़ा था। दोनों ओर से फौजदारी की तैयारी थी। भीखनसिंह की धोती तब आसमान में सूखती थी। उसकी तरफ़ से अनगिनत लोग जमा थे। जब वे मैदान में आकर लाठी भाँजने लगे तो मालिक का मुह सूख गया। उन्होंने उदास होकर मेरी ओर देखा और कहा—मँगरू, अब क्या देखता है? क्या मेरी पगड़ी उतर के ही रहेगी? मेरे पीछे कोई बीस मुसहर एक से एक तगड़े खड़े थे।

मैंने कहा—सरकार, आपकी पगड़ी उतर गई तो हम लोग जीकर क्या करेंगे?

गुलाब ने आश्चर्य के साथ कहा—तुम भी बड़े हिम्मती थे दादा!

"हिम्मती! मैंने कहा कि मालिक हुकुम दीजिए, अभी धान के खेत में कूदें और बात की बात में धान काट कर गिरा दें। मालिक ने कहा—मँगरू, जान जाने की बात है। देखता नहीं, वे कितने आदमी हैं? मैंने छाती ठोंक कर कहा—कुछ परवाह नहीं सरकार। मैं मरूँगा तो हिरवा के बाप तो आप तैयार ही हैं। इतना कह मैंने उनके पाँवों की धूल माथे में लगाई और 'जै भवानी माई' कह कर पिल पड़ा। मेरे पीछे बीसों मुसहर कूद पड़े।"

"बड़े साहस का काम किया। मेरे तो हाथ-पैर फूलने लगते। फिर क्या हुआ? धान काट ही लिया?"

"भाई, मैं सबके आगे था। इससे मुझी पर लाठियाँ पड़ीं। मुझे होस न रहा कि आगे क्या हुआ। पर पीछे सुना कि दोनों ओर से खूब लाठियाँ चलीं। जब दुश्मनों ने देखा कि मैं गिर गया तो मुझे मरा समझ उनकी हिम्मत टूट गई। भय से उनके पाँव उखड़ गए। मुझे अस्पताल में होस हुआ तो देखा, मालिक सिरहाने बैठे हैं। वे मुझे दिलासा देने लगे। मेरा सारा बदन

चूर-चूर हो गया था। खोपड़ी के दाग़ अभी भी बने हैं। मुझे पीड़ा से कराहते देख मालिक की आँखें भर आईं। उस मुक़दमे में मालिक ने रुपया पानी की तरह बहा दिया। बड़े-बड़े बालिस्टर आए। सबको क़ैद करा के ही छोड़ा। भीखनसिंह उस फ़ौजदारी में जो टूटे सो अभी तक न सम्हल सके।"

गुलाब का कौतूहल बढ़ रहा था। उसने बीच में ही छेड़ कर पूछा—जब तुम अस्पताल में पड़े रहे तो घर-बार कौन देखता था दादा?

"हैं:! घर-बार! अरे मेरे पीछे हिरवा और उसकी माँ को जो सुख बाबू जी ने दिया, वह मैं लाख जनम न दे सकता। हिरवा खा-खाकर पट्ठा हो गया था। उन्हीं दिनों जो उसकी देह बँधी सो अब तक न उखड़ी थी। जेल भुगत कर चाहे उसकी जो दुर्गत हो जाय। और मैं तो तीन महीनों में, जो अस्पताल में रहा, ऐसे-ऐसे पदारथ खाए कि तुम लोगों ने कभी आँख से न देखा होगा। भला हलुवा का नाम कभी सुना था?"

"हलुवा? नहीं दादा, हलुवा तो नहीं देखा। कैसा होता है?"

"हलुवा घी और आटे से बनता है, उसमें चीनी पड़ती है। गीला-गीला होता है। खाने में इतना मुलायम कि मुँह को कुछ मेहनत नहीं पड़ती। मेरा सारा मुँह फूल कर कुप्पा हो गया था। मुँह हिलाना मुसकिल था। इसी से दिन में तीन-चार सेर दूध पीता था और मनमाना हलुवा खाता था।"

गुलाब ने उदासी के साथ आह भरी और कहा—दादा, तुम्हारे भाग बड़े अच्छे थे, जो देवता के ऐसा मालिक पाया था।

मँगरू की रामकहानी सुनते-सुनते रात अधिक हो गई। मँगरू लाठी खटखटाता अपने घर गया। गुलाब वहीं आग के पास पड़ कर खुर्राटे लेने लगा।

५

मँगरू दो दिनों से अपनी टूटी सी खाट पर ऐसा पड़ा है कि हाथ-पैर भी नहीं हिला सकता। सारा शरीर असह्य पीड़ा से टूट रहा है। गाँठें फूल आई हैं। ज्वर के मारे बाहर-भीतर आग की भट्ठी सी दहक रही है। मँगरू के खाट पकड़ लेने से मजूरी का भार रधिया पर पड़ा। वह दिन भर बाहर रहती। शाम को लौटती तो मँगरू का हाल देख घबरा उठती। देवा मँगरू के पास रहता। जब मँगरू पानी माँगता तो वह पिला देता। रधिया दौड़-दौड़ कर पड़ोसियों के पास जाती कि दवा-दारू की कुछ सबील हो। मुसहरों में जो गुनी-ओझा थे, उन्हें गुलाब ने इकट्ठा किया। उन्होंने ने भी अपनी-अपनी हिकमत का अन्त कर दिया; पर कुछ फल न हुआ।

एक दिन जगदेवसिंह सुबह होते ही मजूरों को बुलाने आया। उसने गुलाब से पूछा—दो-तीन दिनों से मँगरू काम पर नहीं जाता। बात क्या है?

गुलाब ने झुँझला कर जवाब दिया—मँगरू की क्या लास उठा कर ले जाओगे? वह तो आप ही अब-तब में है।

"अच्छा! मुझे मालूम नहीं। कुछ दवा-दारू होती है कि नहीं?"

"दवा-दारू कहाँ से होगी सिपाही जी? बाबू जी से आप ही कहिए न, बैद जी से कुछ दवा दिलवा दें।"

"बाबू जी क्या करेंगे रे? कस्तूरी-मकरध्वज से कहीं मुसहरों का रोग गया है? कुछ जड़ी-बूटी, झाड़-फूँक का बन्दोबस्त कर। बचे तो बचे, नहीं तो बूढ़े के मरने का सोच क्या?"

"हाँ साहब! मँगरू के मरने से मालिक का कौन सा काम रुकता है?"—इतना कह कर गुलाब ग़ुस्से में भरा जगदेवसिंह के साथ काम पर चला गया।

शाम को मँगरू की हालत और भी ख़राब हो गई। होश-हवास जाता रहा। दो हाथ का फटा चिथड़ा भी वह बदन पर नहीं रखता। रह-रह कर बेहोशी में डूब जाता है। होश होते ही हीरा का नाम ले-लेकर चिल्लाता। बीच-बीच में 'अरे हिरवा, अरे हिरवा' कह कर उठने की चेष्टा करता, फिर बेहोश होकर गिर पड़ता। रधिया महुए का तेल लेकर मालिश करती और मँगरू का हाल देख-देख कर आँखों से आँसू बहाती।

काल-रात्रि ज्यों-त्यों करके कटी। भोर होते ही मँगरू का कण्ठ बन्द हो गया। शरीर की चेष्टा जाती रही। वह जीवन का अन्तिम श्वास खींचने लगा। रह-

रह कर हिचकियाँ आती थीं। गुलाब काम पर जाने के समय मँगरू को एक बार देख गया। वह जाते-जाते बोला—अब दादा की कोई आस नहीं। बस, हीरा भैया के लिए ही दम अटका हुआ है।

दिन भर मँगरू इसी दशा में पड़ा रहा। हर श्वास पर रधिया समझती कि अब दम नहीं लौटेगा। पर फिर श्वास लौट कर मँगरू को सजीव बना देता।

सन्ध्या हो गई। मँगरू के जीवन से निराश होकर रधिया उसकी खाट के पास बैठी आँसू बहा रही थी। इतने में बाहर किसी के पाँव की आहट सुनाई पड़ी। उसने चौंक कर द्वार की ओर देखा तो एक आदमी आता हुआ दिखाई दिया। सन्ध्या के धुँधले प्रकाश में वह आगन्तुक को पहचान न सकी। इसी से सहम कर कपड़े सँभाल उस आदमी के मुख की ओर एकटक निहारने लगी। जब वह पास आया तो उसने पहचाना। वह हीरा था। रधिया चिल्ला कर रो पड़ी। उसे रोती देख हीरा भौंचक-सा रह गया। रधिया ने मँगरू की खाट की ओर इशारा करके कहा—"दादा की अब कोई आस नहीं।" हीरा ने निकट जाकर देखा, अधखुली आँखों में सुफ़ेदी छा गई है। पलक गिरता नहीं। देर-देर में हिचकियाँ आती हैं। हीरा बाप की अन्तिम अवस्था देख कर रो पड़ा। उसका रोना सुन गुलाब भी आ पहुँचा। उसने हीरा को समझा-बुझा कर चुप कराने की चेष्टा की। हीरा ने सुना कि उसकी अनुपस्थिति में मँगरू ने किस तरह उसके परिवार का पालन किया। सुन कर उसका कलेजा फट गया। उसने रोते-रोते गुलाब से कहा—"मेरे ही कारण मेरे बाप की जान गई, यह टीस मेरे मन से कभी न दूर होगी गुलाब। हाय! मैं कितना बड़ा पापी हूँ!"

गुलाब ने हीरा को धीरज बँधाया। दोनों मँगरू की खाट के पास आ बैठे। देखते ही देखते मँगरू ने अन्तिम साँस खींची। इस बार साँस बाहर निकलते ही धीमी सी आवाज़ हुई और मँगरू के प्राण-पखेरू उड़ गए। सारा जीवन धरती खोद कर भी जिसे सुख और शान्ति न मिली, वह आज मृत्यु की गोद में बड़े चैन से सो गया। हीरा की अनुपस्थिति में जिसने उसका भार उठाया था, वह हीरा का भार हीरा को सौंप कर विदा हो गया!

卐 卐 卐

अन्वेषण*

[श्री० शारदाप्रसाद भण्डारी]

तुझे ढूँढ़ने की इच्छा से,
यत्न किया मैंने सौ बार।
वहाँ निराशा मिली जहाँ,
मैंने समझा था तेरा द्वार।

ऊषा के प्रकाश में ढूँढ़ा,
गोधूली की छाया में।
रजनी की शीतलता में,
फिर इस जीवन की माया में।

दीनों के सकरुण कराह में,
उत्पीड़ित की आहों में।
तेरा पता नहीं था कुछ,
प्रेमी-पागल की चाहों में।

फिर सोचा क्या छिपे हुए हो,
तुम प्रणयी के चुम्बन में।
शिशु के ही क्रन्दन में अथवा,
उस बन्दी के बन्धन में।

खोज-खोज कर हार गया,
मैं प्रासादों के प्राङ्गण में।
धन्य भाग्य है मिले आज,
तुम अब "अछूत के आँगन में।"

* महात्मा गाँधी ने श्री० भण्डारी जी की इस कविता की एक कार्ड लिख कर सराहना की है। —स० 'चाँद'

कविता में अस्पष्टता
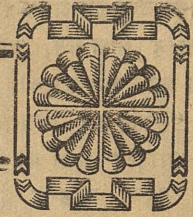
[श्री० शान्तिप्रिय द्विवेदी]
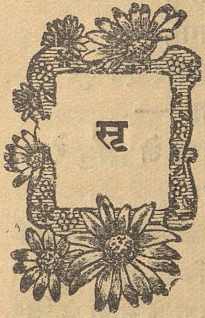
सृष्टि के आदि में मानव-समुदाय मूक था। जब वह विश्व के विस्तृत रङ्ग-मञ्च पर पहले-पहल आया, तब उसके हृदय में जिज्ञासा, कौतूहल और विस्मय के भाव थे। उसकी आँखें सब कुछ देखती थीं, किन्तु वह कुछ कह नहीं सकता था, क्योंकि तब तक उसके ओठों पर संसार की कोई भाषा नहीं खिली थी। उसके भाव नीरव थे, उसकी भाषा नीरव थी। आदिम मानव एक-दूसरे की तरफ़ अवाक् दृष्टि से देखते थे, परस्पर इङ्गित द्वारा कुछ कहते थे और फिर मन ही मन मुस्करा कर रह जाते थे।

किन्तु हृदय के भाव भीतर ही भीतर उद्वेलित न रह सके, श्वासों की तरह वे भी बाहर आने के लिए तड़फड़ा उठे। निदान, भावों के आवेग से उनके ओठों के द्वार हिल उठे—कुछ कहने के लिए, कुछ समझने के लिए। परन्तु ओठों के हिलने से जो शब्द पहले-पहल निकले, वे नितान्त अस्पष्ट थे। तो भी, उसी अस्पष्टता के भीतर से स्पष्ट शब्दों का जन्म हुआ, जिनके द्वारा भिन्न-भिन्न दिशाओं में भिन्न-भिन्न भाषाएँ तैयार हो गईं।

इस भाँति हम देखते हैं कि हमारे जीवन में पहले भावों का जन्म हुआ, फिर उनकी अभिव्यक्ति के लिए भाषा का। भाषा, भावों की अभिव्यक्ति के लिए एक प्रतिनिधि अथवा अवलम्ब मात्र है। अतएव हमारे हृदय में जितने भाव अन्तर्हित हैं, उन सबों को बहिर्मुख करने में भाषा समर्थ नहीं हो सकती। क्योंकि भाव तो प्रकृति-सृष्टि हैं, भाषा मानव-सृष्टि। भाव, हमारे जन्म के साथ ही न जाने किस अलौकिक लोक से स्वनिर्मित से चले आते हैं। फिर उस अलौकिक को लौकिक द्वारा पूर्णतः कैसे व्यक्त कर दिया जाय? प्रकृति के निस्सीम भावों को मनुष्य अपनी भाषा की लघु परिधि में कैसे आबद्ध कर दे?

फिर भी, अपने भावों को व्यक्त कर देने के लिए प्राणी प्रयास करता ही है। न व्यक्त कर देने से जीवन भार हो जायगा। अतएव कवि भी इस अभिव्यक्ति के लिए अपनी भाषा को अनेक ढङ्ग से, अनेक साधनों से सामर्थ्यवान बनाता है। दूसरे शब्दों में उसे कला का सहारा लेना पड़ता है। भावों और विचारों की अभिव्यक्ति की सुन्दरता-कुशलता का ही नाम तो कला है। भाषा और कला के मेल से भावों और विचारों को जो मनोरम स्वरूप मिलता है, उसी को साहित्य कहते हैं।

गद्य में साहित्य का उद्देश्य विचारों को प्रस्फुटित करना रहता है; कविता में हृदय के मूक भावों को सशब्द एवं सजीव कर देना। परन्तु जैसा कि प्रारम्भ में कहा जा चुका है—भाषा लौकिक सृष्टि है, भाव अलौकिक। इस अलौकिक को लौकिक द्वारा किस प्रकार पूर्णतः व्यक्त कर दिया जाय? बस यहीं पर तो कवि-कला की परीक्षा हो जाती है। श्रीरवीन्द्रनाथ के शब्दों में—"भाषा के बीच में इस भाषातीत को प्रतिष्ठित करने के लिए साहित्य मुख्यतः दो वस्तुओं को मिलाया करता है, एक चित्र को और दूसरे सङ्गीत को। अतएव चित्र और सङ्गीत ही साहित्य के प्रधान उपकरण हैं। चित्र, भाव को आकार देता है और सङ्गीत, भाव को गति प्रदान करता है।

"किन्तु केवल मनुष्य का हृदय ही साहित्य में पकड़ रखने की वस्तु नहीं है। मनुष्य का चरित्र भी एक ऐसी सृष्टि है, जो जड़ सृष्टि की तरह हमारी इन्द्रियों द्वारा अधीन नहीं होता। वह 'खड़े हो जाओ' कहने मात्र से खड़ा नहीं हो जाता। वह मनुष्य के लिए

अत्यन्त उत्सुकताजनक है, किन्तु उसे पशुशाला के पशु की तरह बाँध कर, बड़े पिञ्जरे में बन्द करके, टकटकी लगा कर देखने का कोई सुगम उपाय नहीं है।

"इन्हीं कड़े नियमों से परे विचित्र मानव-चरित्र है—साहित्य इसी को अन्तर्लोक से बाहर लाकर प्रतिष्ठित करना चाहता है। यह अत्यन्त दुरूह कार्य है। क्योंकि मानव-चरित्र स्थिर तथा सुसङ्गत नहीं है, उसके अनेक अंश और अनेक तहें हैं—उसके बाहर-भीतर बेरोक-टोक गमनागमन करना सुगम नहीं है। इसके अतिरिक्त, उसकी लीला इतनी सूक्ष्म है, इतनी अभावनीय है, इतनी आकस्मिक है कि उसे पूर्ण रूप से हमें हृदयङ्गम करा देना असाधारण शक्ति का ही कार्य है। व्यास, वाल्मीकि और कालिदास आदि यही कार्य तो करते आए हैं।" अस्तु—

मानव-हृदय में जो कुछ अन्तर्हित है, यदि उसे साहित्य-द्वारा, दो-एक युग में ही साकार किया जा सकता, तो संसार में एक दूसरे को ठीक-ठीक न समझ सकने के कारण आज जो इतना द्वन्द्व, इतना राग-विराग फैला हुआ है, उसकी इतिश्री कभी ही हो जाती। अतएव सृष्टि की ही भाँति साहित्य भी अनन्त-कालीन है। हमारे हृदयों में, मैशीन के बारीक से बारीक कल-पुर्ज़े से भी अधिक सूक्ष्मातिसूक्ष्म भाव अज्ञात पड़े हुए हैं, उन्हें पूर्णतः व्यक्त कर देने के लिए आज भी संसार की किसी भी भाषा में परिपूर्ण शब्द नहीं। इसीलिए तो सृष्टि के अन्त-पर्यन्त नए-नए शब्दों और नए-नए साहित्य की भी सृष्टि होती जाएगी।

ऐसी परिस्थिति में, कवि, अपने सूक्ष्मातिसूक्ष्म भावों को भी, संसार की वर्तमान अपूर्ण भाषा में ही, भिन्न-भिन्न निर्देशों एवं सङ्केतों से व्यक्त करने का प्रयत्न करता है; परिणामतः उसकी कविता चिह्नमय चीनी भाषा की तरह दुर्बोध हो जाती है, अथवा पुष्पों के नीरव गन्ध की तरह केवल अनुभव करने की वस्तु रह जाती है।

हाँ, कविता में जब कला का वाह्य आडम्बर अधिक घुस जाता है, उस समय भी वह दुर्बोध और रहस्य-पूर्ण हो जाती है—भाव उस आडम्बर से उसी तरह आच्छादित हो जाता है, जैसे मेले में जाने वाले एक नन्हें शिशु का सर्वाङ्ग रेशम के ढीले-ढाले भारी कुरते और सितारेदार बड़ी टोपी से ढँक जाता है। श्रीरवीन्द्र ने 'गीताञ्जलि' में लिखा है :—

राजार मत बेशे तुमि साजाओ जे शिशु रे,
पराओ जारे मणिरत्न हार—
खेला धूला आनन्द तार सकलि जाय घुरे,
बसन भूषण हय जे विषम भार।
छेंड़े पाछे आघात लागि,
पाछें धूलाय हय से दागी,
आपना के ताइ सरिए राखे सबार हते दूरे
चलते गेले भावना धरे तार,—
राजार मत बेशे तुमि साजाओ जे शिशु रे
पराओ जारे मणिरत्न हार।

कवि ने इन पंक्तियों में बालक के लिए जिस निराडम्बरता एवं सादगी का सङ्केत किया है, वैसी ही निराडम्बरता, वैसी ही सादगी, कविता के भावों के लिए भी आवश्यक है। अन्यथा जिस प्रकार भूषण-वसन के बोझ से दबा हुआ राजकुमार जन-समाज से बहुत दूर रहता है, वैसे ही आडम्बरपूर्ण कविता के भाव भी, विश्व-हृदय से अपना सामञ्जस्य नहीं स्थापित कर सकते।

अतएव, हृदय के भाव, शरत-पूनो के चाँद की तरह अपनी सादगी में ही जितना अधिक खिल सकें, उतने ही अधिक भले मालूम पड़ते हैं। जो स्वयं सुन्दर है, उसके लिए अलङ्कार की आवश्यकता नहीं। जीवन की तरह ही हमारे हृदय के स्वर और भाव भी सरल होने चाहिए।

हाँ, चन्द्रिका की अलङ्कारहीन शोभा हमारे हृदय को आनन्दित तो करती ही है, परन्तु जब उसके स्निग्ध मुख-मण्डल पर झीने रेशमी बादल का एक हलका-सा अवगुण्ठन छा जाता है, तब देखिए न उसकी शोभाश्री कितनी चित्तोन्मादकारिणी हो जाती है! उसके प्रति हमारा आकर्षण, हमारी उत्सुकता कितनी अधिक बढ़ जाती है। यद्यपि अवगुण्ठनमयी हो जाने के कारण चन्द्रिका की शोभा पहले की तरह चटकीली नहीं रहती, सुस्पष्ट नहीं होती, तथापि इस अस्पष्टता में ही कैसा अनुपम सौन्दर्य है, कैसा मधुर-रस! मानो उसका रूप-रस ख़ूब छन-छन कर बाहर आ रहा हो! इसी भाँति,

कविता-सुन्दरी को भी कभी-कभी अवगुण्ठन की आवश्यकता पड़ती है। इसलिए नहीं कि समाज की तरह साहित्य में भी परदा-प्रथा का प्रचार हो, बल्कि इसलिए कि उसकी शोभाश्री एक कुलवधू की सलज्ज मुसकान की तरह संयमित, गूढ़, गम्भीर एवं प्रतिक्षण नवीन बनी रहे। ऐसी कविताएँ लाज में लिपटी ऊषा के समान सुन्दर मालूम पड़ती हैं।

किन्तु कविता में अस्पष्टता का अभिप्राय यह नहीं है कि उसके भाव, भङ्ग की तरङ्ग की तरह विश्रृङ्खल और पागल के प्रलाप की तरह निरर्थक हों। अपने 'मधुकण' की भूमिका में श्री० भगवतीचरण वर्मा लिखते हैं—"विचारक्रम को अधिक न समझाना भी कला का एक अङ्ग है, मैं इसको ठीक मानता हूँ। पर उस अस्पष्टता और इस अस्पष्टता में भेद है। अच्छा कलाकार यह जानता है कि कहाँ तक अस्पष्ट रहना उचित है। अस्पष्टता वहीं तक स्वाभाविक है, जहाँ तक कल्पना काम करे।"

२

कला की दृष्टि से जो कविताएँ अस्पष्ट लिखी जाती हैं, वे सर्वसाधारण की वस्तु नहीं, केवल भावुक हृदयों के प्रेम की वस्तु हैं। ऐसी कविताओं में लोकोपयोगिता भले ही न हो, परन्तु उनका साहित्यिक महत्व अवश्य है।

एक दिन मैं स्वर्गीय रत्नाकर जी के यहाँ काव्य-चर्चा का आनन्द ले रहा था। प्रसङ्ग हिन्दी की नवीन कविता-शैली पर चल रहा था। उन्होंने अपने कॉलेज-जीवन की एक मनोरञ्जक घटना सुनाई। जब वे बी० ए० में पढ़ते थे, तब टेनीसन की एक कविता का अर्थ पूछने के लिए प्रिन्सपल के पास गए। किन्तु प्रिन्सपल महोदय भी उसका अर्थ न समझ सके। तब टेनीसन को पत्र लिख कर उसका अर्थ पूछा गया। उन्होंने उत्तर दिया—"जिस समय मैंने यह कविता लिखी थी, उस समय इसका अर्थ समझने वाले दो थे—एक मैं, दूसरा ईश्वर। मैं तो इसका अर्थ भूल गया, शायद ईश्वर को याद हो।"

टेनीसन ने इन शब्दों द्वारा बड़ा गम्भीर परिहास किया है। जान पड़ता है, लोगों ने अर्थ पूछते-पूछते नाकोंदम कर दिया था, इसीलिए झल्ला कर उसने उपर्युक्त उत्तर दे दिया।

बात यह है कि कविता के भाव भी मानव-हृदय की तरह ही बड़े ही गूढ़ और रहस्यपूर्ण होते हैं। मानव-हृदय एक जटिल पहेली है, उसमें न जाने कब कैसी-कैसी भावनाएँ आ-आकर अपना नीड़ बना लेती हैं, यह शब्दों में नहीं कहा जा सकता। उन भावनाओं को कवि जब शब्दों में व्यक्त कर देना चाहता है, तब वे पूर्णतः प्रस्फुटित नहीं हो पातीं। ऐसी दशा में कवि अपनी कविताओं को जान-बूझ कर केवल कला के लिए ही नहीं अस्पष्ट रखना चाहता, बल्कि भावनाओं की गहनता भी इस अस्पष्टता का कारण बन जाती है। तब, उन अस्पष्ट कविताओं को समझने के लिए हमें कवि के हृदय के साथ अपने हृदय को भी एकरस करना पड़ता है। केवल अन्वय और शब्दार्थ ही उस कविता का रहस्योद्घाटन करने में समर्थ नहीं हो सकते, क्योंकि शब्द तो एक सङ्केत मात्र हैं।

टेनीसन की ही तरह रवि बाबू से भी कई बार उनकी भिन्न-भिन्न कविताओं के अर्थ पूछे जा चुके हैं। उन प्रश्नों का उत्तर उनके हृदय ने मूक रह कर दिया। उन अस्पष्ट कविताओं के अर्थ पूछे जाने की प्रवृत्ति की आलोचना करते हुए वे अपनी 'जीवन-स्मृति' में लिखते हैं :—

"क्या कोई मनुष्य किसी बात को समझाने के लिए कविता लिखा करता है? बात यह है कि मनुष्य के हृदय को जो अनुभव होता है, वही काव्य-रूप में बाहर आने का प्रयत्न करता है। यदि ऐसी कविता को सुन कर कभी कोई यह कहता है कि मैं तो इसमें कुछ नहीं समझता, तो उस समय मेरी मति कुण्ठित हो जाती है। पुष्प को सूँघ कर यदि कोई कहने लगे कि मेरी कुछ समझ में नहीं आता, तो उसका यही उत्तर हो सकता है कि इसमें समझने जैसा है भी क्या? यह तो केवल 'आभास मात्र' है। इस पर भी यदि वह यही कहे कि—'हाँ, यह तो ठीक है, मैं भी जानता हूँ; पर इसका अर्थ क्या है?'—और इसी तरह बार-बार प्रश्न करने लगे, तो उससे छुटकारा पाने के लिए दो ही मार्ग हैं—या तो उस विषय की चर्चा ही बदल दी जाय, अथवा यह सुगन्ध फूल में विश्व के आनन्द को धारण की हुई एक साकार आकृति है, यह कह कर उस विषय को और भी गहन बना दिया जाय!" अस्तु—

इन सब बातों से एक बात विदित हो जाती है कि प्रातःकालीन नीहार की तरह उन अस्पष्ट कविताओं में किसी मार्मिक समय की स्मृति, रेखा-चित्र की भाँति अङ्कित रहती है, जो किसी विशिष्ट भाव की याद के लिए किसी भाँति शब्दमय कर दी जाती है। वह स्मृति-चित्र, साधारण दृष्टि से देखने की वस्तु नहीं, बल्कि कवि जैसी आँखें ही उसके रङ्ग-रूप को देख वा समझ सकती हैं।

जनसाधारण जब वस्तु-जगत की ओर देखते हैं, तब उन्हें यहाँ की वस्तुएँ जैसी की तैसी दिखाई पड़ती हैं, परन्तु कवि जब उनकी ओर देखता है, तब केवल चर्म-चक्षुओं से ही नहीं, बल्कि मानसिक नेत्रों से भी। मानसिक नेत्रों के कारण ही वह निपट शून्य में भी एक चित्र खड़ा करके भर आँख देख लेता है। रवि बाबू जब छोटे से बालक थे, तब वे चूने से पुती हुई दीवार की ओर कौतूहलपूर्ण दृष्टि से देखा करते थे। बीच-बीच में चूने के खिसक आने के कारण जो स्थान रिक्त हो जाते थे, उनमें वे अनेक मनोरम आकृतियों और चित्रों को मानसिक नेत्रों से देखा करते थे। वस्तु-जगत के एक साधारण व्यक्ति की दृष्टि में उस चूने से रिक्त स्थान की कोई विशेषता नहीं है, उसके लिए वहाँ से चूना केवल खिसक भर गया है, परन्तु कवि की दृष्टि के लिए वहाँ चूना खिसक कर अनेक चित्र छोड़ गया है। यदि एक साधारण व्यक्ति से रवि बाबू कहते—देखो भाई, इसमें ये आकृतियाँ अङ्कित हैं, ये चित्र खुदे हुए हैं; तब वह बेचारा कैसे देख पाता, देखने की कोशिश करके भी नहीं देख पाता। और फिर, रवि बाबू ही उसे कैसे दिखा या समझा पाते? तब, क्या दीवार के उस रिक्त स्थान में रवि बाबू द्वारा अङ्कित की हुई काल्पनिक आकृतियों का कोई अस्तित्व हो ही नहीं सकता? क्या चर्म-चक्षुओं से प्रत्यक्ष दीख पड़ने वाली एकमात्र इन बाहरी वस्तुओं का ही अस्तित्व है और जहाँ से इन चर्म-चक्षुओं में प्रकाश आता है, उसका कोई अस्तित्व ही नहीं?

जो हो, बचपन में रवि बाबू के हृदय में उस चूने से रिक्त स्थान के लिए जो भावुकता थी, वैसी ही भावुकता, कवि की अन्तःदृष्टि में समस्त सृष्टि के साथ आजीवन बनी रहती है। कवि भी तो एक बालक ही है, हाँ उसमें तुतलापन नहीं रहता। यह बालक, असुन्दर को सुन्दर कर देता है, शून्य को भी अस्तित्वमय बना देता है। यहीं बालक बतलाता है कि इस दिखाई पड़ने वाले विश्व के अतिरिक्त, इस संसार में और भी कुछ है, जिसके अस्तित्व को हम भूले हुए हैं।

३

कवि जब इस दृष्टिगोचर जगत की ओर देखेगा, तब उसके साथ उसके भावुक हृदय की भावनाएँ मिल कर किस समय कैसा स्वरूप धारण कर लेंगी, यह स्वयं कवि भी तब तक नहीं जानता, जब तक कि उसी मूड (Mood) में नहीं आ जाता। कविता के लिख जाने के बाद, उस मूड से पृथक् होने पर, कुछ समय के लिए वह अपनी ही तरह अपने भावों को भी भूल जाता है। किन्तु एक दिन संयोग से फिर उसी मूड में आ जाने पर वे ही अस्पष्ट भाव, दर्पण की तरह उसके दृष्टि-पथ में सुस्पष्ट हो जाते हैं। छायावाद और रहस्यवाद के कला-कुशल कवि ऐसी ही मूड में अपनी कविताएँ लिखते हैं—अपनी हार्दिक परिस्थिति के अनुसार दुख और सुख का रङ्ग चढ़ा कर, वे वस्तु-जगत की ओर देखते हैं और अपनी कल्पना की सूक्ष्मता अथवा स्थूलता के अनुरूप ही भावों की सृष्टि करते हैं। कल्पना जितनी ही अधिक सूक्ष्म होती है, वह इन चर्म-चक्षुओं से उतनी ही ओझल होती जाती है। वह कल्पना की विहग बालिका अपने मुक्त पङ्खों से उड़ कर कभी अनन्त में लीन हो जाती है और कभी इसी विश्व की एक डाल पर बैठ कर अपने प्राणों का सङ्गीत छेड़ देती है। कभी-कभी वह नीले आकाश में नाचते हुए रङ्गीन काग़ज़ की पतङ्ग की तरह इतनी दूर चली जाती है कि हमारे चर्म-चक्षु, उसे देखने का प्रयत्न करके भी नहीं देख पाते। तो क्या सचमुच उसका कोई अस्तित्व नहीं रह जाता? क्यों नहीं, हृदय के तार की तरह उसकी डोर तो हमारे हाथों ही में रहती है। ऐसी कविताएँ सूक्ष्म होने पर भी हमारे हृदय को आनन्द देती हैं। कला का उद्देश्य हृदय को आनन्दित करना भी तो है।

परन्तु जब कविता, विहग की तरह इसी विश्व की एक डाल पर बैठ कर अपना जीवन-सङ्गीत छेड़ देती है, अथवा सघन कादम्बिनी की तरह अनन्त आकाश में

विचरते हुए भी अपनी बूँद पृथ्वी पर बरसा कर इस भौतिक जगत को सींच देती है, तब वह केवल साहित्य की ही वस्तु नहीं, जनसाधारण की भी वस्तु बन जाती है। क्या हमारे छायावादी कवि इस उपयोगिता को नहीं अपना सकते? हर्ष है कि हमारे चिर नवीन कवि श्री० सुमित्रानन्दन पन्त ने अपने 'गुञ्जन' की कुछ पंक्तियों में इस दृष्टिकोण को अपना लिया है।

४

हाँ तो, बात चल रही थी कविता की अस्पष्टता के सम्बन्ध में। वे अस्पष्ट कविताएँ, वस्तुतः अस्पष्ट नहीं होतीं, हम अपने हृदय को कवि की तत्कालीन परिस्थिति में रख कर उन कविताओं पर दृष्टिपात नहीं करते, इसीलिए वे अस्पष्ट जान पड़ती हैं। अपने को उस परिस्थिति में जाने के लिए अपने भीतर भी भावुकता की आवश्यकता है।

हम लोग प्रायः नित्य देखते हैं :—

नीलाकाश में कितने रङ्गों के कैसे-कैसे, छोटे-बड़े बादल, हृदय के भावों की तरह उड़ते चले जाते हैं। एक दिन उनमें से न जाने किस अज्ञात वर्ण के बादल को देख कर कवि ने उसके साथ आत्मीयता जोड़ ली, उस मूक-मेघ के हृदय की न जाने कैसी-कैसी बातें उसने अपने अन्तर्पट पर लिख लीं, फिर उन्हें वर्णमाला के अक्षरों में अङ्कित कर दीं। बादल आए और अतिथि की भाँति विदा हो गए, केवल उनमें से एक की स्मृति, कवि-हृदय में अवशेष है। आज न वह समय है, न वह बादल। कवि ने उसकी ओर देख-देख कर न जाने क्या-क्या समझा था, उस भाषाहीन वातावरण में न जाने किन-किन सङ्केतों से, चिन्हों से, उसकी स्मृति को अक्षर-मय कर दिया था। कवि के ऐसे भावों का अभिप्राय समझने के लिए हमें भी अपने को उसी मूड में, उसी परिस्थिति में ले जाना होगा।

और भी देखिए, सरिता के प्रशस्त हृदय में, न जाने सौन्दर्य की कितनी सुकुमार वीचियाँ उठतीं और विलीन होती हैं। उन्हीं में से एक के साथ अपने दुख-सुख को खोकर कवि अपने को भूल जाता है। केवल शब्दों में कवि के और उस मृदु-वीचि के हृदय की अभिन्न स्मृति रह जाती है। उस एक लघु वीचि के उठने और विलीन होने की सजीवता एक दिन, एक क्षण के लिए कवि के सम्मुख थी—जब कि वह उसके लिए प्रस्तुत था; परन्तु अब?

इसी भाँति, एक बार नैश गगन के नील-पटल पर एक भुवन-मोहिनी तारिका हँसती हुई दिखलाई पड़ी थी, वह अपना जादू बिखेरती हुई धीरे-धीरे न जाने कहाँ अदृश्य हो गई। वह एक तारिका, कवि की आँखों में न जाने कैसी उज्ज्वल छवि भर कर, कानों में न जाने किस अज्ञात लोक की कहानी चुपचाप कह कर विलीन हो गई! आज उसका अभिप्राय कवि कैसे समझा दे?

आप पूछ सकते हैं—कविता में ऐसी सूक्ष्म दृष्टि की आवश्यकता ही क्या है? सुनिए, मनुष्य की दृष्टि जितनी ही स्थूल होती है, वह स्थूल भौतिक जगत में उतनी ही भटकती रहती है—वह शरीर को देख पाती है, आत्मा को नहीं। अतएव, जीवन की जो मङ्गल निधि उसे अन्तर्जगत में ढूँढ़नी चाहिए, उसे वह इस स्थूल जगत में खोजती फिरती है। ऐसे ही भटकने वालों से कवि ने कहा है—

लैला-लैला पुकारूँ मैं बन में,
प्यारी लैला बसे मेरे मन में!

कवि जब वाह्य विश्व में सूक्ष्मावलोकन करते-करते एक दिन सचमुच अपने अन्तर्जगत में पहुँच जाता है, तब वहाँ वह उस कवीर्मनीषी परिभूः स्वयम्भूः से एक रस हो जाता है, जो सूक्ष्मातिसूक्ष्म होकर अन्तर्जगत में अन्तर्हित होकर हमारे साथ न जाने कब से आँख-मिचौनी खेल रहा है।

× × ×

कवि के अज्ञात भावों का अर्थ न समझ सकने पर भी वे हृदय को भले लगते हैं, उनमें जैसे प्राणों का स्वर बोलता हुआ मालूम पड़ता है। विहग-कुल के कल-कूजन, सरिताओं की अविरल कल-कल छल-छल, पल्लवों के मृदु मर्मर-मर्मर की ही भाँति कवि के वे अस्पष्ट स्वर भी प्रिय मालूम पड़ते हैं। क्या हम वाह्य प्रकृति के कलरव का अर्थ समझ पाते हैं? नहीं। फिर भी, जब वह कल-कल छल-छल और मर्मर-मर्मर स्वर वन की निस्तब्धता को भेद कर चारो ओर गूँज उठता है, तब उसके साथ हमारे हृदयों में भी न जाने दुख-सुख की कैसी रागिनी बज उठती है! हाँ, उस स्वर

का अभिप्राय, कुछ-कुछ चारों ओर के प्राकृतिक वातावरण से आभासित हो जाता है। वही वातावरण कविता में भी छाया-चित्र की भाँति अङ्कित रहता है। इस छाया-चित्र के सुचारु अङ्कन में ही तो कवि-लेखनी की कला-कुशलता है। मेरे मित्र श्री० नरेन्द्र जोशी अपने एक पत्र में ठीक लिखते हैं—"जो कविताएँ (जैसे रायकृष्ण दास की 'साधना' के गद्य-गीत इत्यादि) अनुभव (Feel) करके लिखी जाती हैं, उनमें से अनेक अस्पष्ट भी होती हैं, पर वह अस्पष्टता हृदय को मोह लेती है। चाँदनी में पेड़ के पत्तों की तरह, उनके भी चारो ओर एक विचित्र वातावरण सा रहता है, जो हमें आकुल कर देता है। साधारणतः दो-तीन बार पढ़ने से वे अस्पष्ट कविताएँ हृदय में चुभ जाती हैं। यदि नहीं चुभतीं, तो वे सम्भवतः बहुत हलकी वा सारहीन होती हैं।"

अस्तु। वाह्य दृश्यावली को देख कर कवि के हृदय में जो स्मृतियाँ लिपिबद्ध होती हैं, वे कभी-कभी वैसे ही खो जाती हैं, जैसे अपने ही घर में अपनी ही कोई विशेष वस्तु। उस समय कवि की दशा सचमुच टेनीसन की सी हो जाती है। हम अपने घर में अपनी उस विशेष वस्तु को बहुत सचेत होकर रखते तो हैं, परन्तु कभी-कभी वह अनिवार्य आवश्यकता के समय ढूँढ़े भी नहीं मिलती; और एक दिन अचानक न जाने कैसे बिना किसी प्रयास के ही जब वह स्वयं हाथों में आती है, तब हम आश्चर्य-चकित हो जाते हैं।

किन्तु इन सब बातों का निष्कर्ष यह नहीं है कि कला में अस्पष्टता के नाम पर हमारे नवीन कवि उच्छृङ्खलतापूर्वक अनर्गल कविताएँ लिखें, बल्कि वे जो कुछ लिखें, उसमें सचमुच आत्मानुभूति और मर्मस्पर्शिता हो।

फूलबाला

[श्री० केदारनाथ मिश्र, "प्रभात"]

परी ! तुम कौन सुकोमल गात,
खेलती जीवन-वन में प्रात ?

अयुत कर से मृदु-मृदु सुकुमार,
खोलती अरुण किरण के द्वार ;
धूल से उठा बिलखता प्यार,
चूम पहराती आँसू-हार !
नाच उठता तृण-तृण तरु-पात,
परी ! तुम कौन सुकोमल गात ?

सुमुखि ! चलती तुम रुक-रुक मौन,
बरसते हरसिंगार के फूल !
फूलबाला-सी फूलों बीच,
भूल जाती तुम फिर-फिर भूल !
याद कर कौन अनोखी बात,
परी ! तुम आह, सुकोमल गात !

क्लान्त सन्ध्या के समय अधीर,
कहाँ से भर-भर लाती नीर ?
गन्ध, मदिरा, रस, सौरभ दान,
माँगता तुमसे मलय समीर !
सदा तुम रही अलख अज्ञात,
परी ! तुम कौन सुकोमल गात ?

सुप्रसिद्ध अमेरिकन सिनेमा-स्टार—मिस लौरेट्टा यङ्ग

सर्व-साधारण के लिए मूल्य २॥) से घटा कर २) कर दिया गया !

[लेखक—सङ्गीताचार्य श्री० किरणकुमार मुखोपाध्याय "नीलू बाबू"]

कोई भी सङ्गीत-प्रेमी ऐसा न होगा, जिसने "नीलू बाबू" का नाम न सुना हो। यह पुस्तक उन्हीं की सर्वोत्कृष्ट रचना है। सङ्गीत सम्बन्धी कोई भी पुस्तक आज तक इसके जोड़ की नहीं प्रकाशित हुई। यदि घर बैठे बिना उस्ताद के सङ्गीत सीखना हो, तो इस पुस्तक को अवश्य मँगाइए! पुस्तक सामने रख कर काई भी राग-रागिनी आप निकाल सकते हैं। अनेकों राग-रागिनी के अलावा पुस्तक के प्रारम्भ में हारमोनियम बजाने की विधि और स्वर आदि सम्पूर्ण विषयों को ऐसी सरलतापूर्वक समझा दिया गया है कि बिना किसी की सहायता के ही आप सब क्रियाओं का अभ्यास कर सकते हैं।

४० पाउण्ड के आर्ट पेपर पर छपी हुई सुन्दर सजिल्द पुस्तक का मूल्य २॥) से घटा कर २) कर दिया गया है; फिर भी स्थायी ग्राहकों से केवल १॥)

पुस्तक की माँग बहुत अधिक है। शीघ्र ही अपनी कॉपी मँगा लीजिए; वरना बाद को पछताना पड़ेगा!

चाँद प्रेस, लिमिटेड

चन्द्रलोक—इलाहाबाद

पुस्तक में जिन उत्तमोत्तम राग-रागिनियों का समावेश है, उनमें से कुछ के नाम इस प्रकार हैं :—

१–भीम पलासी
२–तरज़ थियेटर
३–काङ्गड़ा
४–देश मलार
५–सिन्ध
६–वन्देमातरम्
७–बरसाती
८–झिंझौटी
९–बहार
१०–धानी
११–रामकली
१२–नट बहार
१३–मुलतानी
१४–खम्माच
१५–मिश्र भैरवी
१६–मालकोस
१७–तराना विहाग
१८–मालश्री
१९–चैती
२०–काफ़ी
२१–देश
२२–सोरठ
२३–कानड़ा
२४–माँड
२५–केदारा
२६–भैरव
२७–श्रीराग
२८–भूपाल
२९–लावनी
३०–विभास
३१–गुनकली
३२–दुर्गा

इत्यादि-इत्यादि।

कहानी-कला

[श्री० रामनारायण 'यादवेन्दु', बी० ए०]

कथोपकथन

हानी में कथोपकथन से तात्पर्य उस पारस्परिक कथन से है, जो दो या अधिक पात्रों में होता है। यहाँ हमें कहानी के इसी अङ्ग पर विचार करना है। कथोपकथन द्वारा हमें पात्रों के चरित्र के सम्बन्ध में विश्वस्त ज्ञान या परिचय मिल जाता है। इसके अतिरिक्त उसके द्वारा कथावस्तु के प्रवाह में भी विशेष सहायता मिलती है। कहानी की गति में तीव्रता उत्पन्न करने और शिथिलता को दूर करने में भी कथोपकथन का प्रयोग किया जाता है। इस प्रकार कहानी में कथोपकथन के तीन कार्य हैं :—

१—चरित्र-चित्रण करना।

२—कथावस्तु के प्रवाह में सहायता देना।

३—घटनाओं में तीव्र गति का सञ्चार करना।

इन तीन कार्यों का सफलतापूर्वक निर्वाह करने के लिए दो बातों का विशेष ध्यान रखना चाहिए—प्रथम, यह कि लेखक का अपने पात्रों से पूर्ण परिचय हो; द्वितीय, जब पात्र कथोपकथन करते हों, तो लेखक उन पर पूरा-पूरा ध्यान रक्खे।

कथोपकथन की निम्न-लिखित विशिष्टताएँ अधिक महत्त्वपूर्ण हैं। अतः उदाहरण सहित उनका उल्लेख किया जाता है :—

१—उत्कृष्ट वार्तालाप की सबसे प्रमुख विशेषता यह है कि वह यथार्थ मनुष्योचित वार्तालाप हो।

"एक दिन मैंने कहा—आप ऊपर की आमदनी करते, तो बहुत रुपया इकट्ठा हो जाता।

उन्होंने मुसकिरा कर कहा—तुम्हें कुछ कष्ट है? मैं तुम्हारे लिए रिश्वत न लूँगा; किन्तु यथासाध्य तुम्हारा कष्ट दूर करूँगा।

मैं कह कर पछताई। खिसिया कर मैंने कहा—मुझे कुछ भी कष्ट नहीं। मैंने इसलिए कहा कि रुपया होता तो किसी समय काम आता।

उन्होंने कहा—यह भूल है। समय आता है तो रुपया क्या, ईश्वर भी चला आता है। सच्ची ज़रूरत कभी नहीं रुकती। हमारा छोटा भाई इस साल इञ्जीनियर हो जायगा। फिर उसे ५०) रुपया मासिक न भेजने पड़ेंगे। सुधाकर का लड़का अगले साल सब-ओवरसियरी में पास हो जायगा। उसे २०) जाते हैं, वे भी बच जावेंगे। ये दोनों काम में लग गए तो ज़रूरत होने पर इनसे सौ रुपया मासिक और मँगा सकते हैं। पाप की कमाई में सबसे बड़ा दोष यह है कि वह जिस काम में लगती है, उसे भी मिट्टी कर देती है। उससे जो सुख मिलता है, वह सच्चा नहीं होता; लिप्सा बढ़ती है और आराम घटता है! सुख तो मन की अवस्था-विशेष का नाम है। वह है, तो ग़रीब भी सुखी है, वह नहीं है तो चक्रवर्ती भी दरिद्र है।"

'भाग्य का चक्र'—पं० ज्वालादत्त शर्मा

यह दम्पति का कथोपकथन जितना मानवोचित है, उतना ही शील का परिचायक है। नारी-हृदय (जो अधिक संस्कृत नहीं हुआ है) का जैसा चित्रण यहाँ किया गया है, वह सर्वथा स्वाभाविक है। यह वार्तालाप गार्हस्थ्य-जीवन की एक सामान्य घटना है। पति ने पत्नी की जिज्ञासा की जिस ढङ्ग से सन्तुष्टि की है, वह बड़ा तार्किक और हृदयग्राही है।

अब हम यहाँ एक निकृष्ट और अ-मानवोचित कथोपकथन का उदाहरण देते हैं :—

"मेरी ससुराल तो, ख़ैर, बहुत दूर है, परन्तु छोटे

साले यहीं 'सर्विस' करते हैं। मिलना-जुलना काफ़ी होता है; इसलिए रिश्तेदारी न रह कर बेतकल्लुफ़ी और हा-हा, ही-ही रह गई थी। तीसरे-चौथे आते ही थे, और बातें भी ख़ूब ही होती थीं।

जहाँ ख़ूब बातें होती हैं, वहाँ किसी क़िस्म का परदा नहीं रहता, यह आप भी ज़रूर जानते ही हैं। वह बेचारे भी अर्से से विरह में थे। बस यों कहूँ—दोनों तरफ़ एक ही आग थी। बात तो ख़ैर मैंने चलाई, पर खुल पड़े हज़रत आप। कहने लगे—यार, बड़ा बुरा लगता है!

"ज़रूर ही लगता होगा!"—उत्फुल्ल स्वर में मैंने उनसे सहानुभूति प्रगट की।

"क्या करूँ, रो-रो पड़ता हूँ।"

"क्यों?"—मैंने बन कर पूछा।

"अरे भई, तुम पत्थर तो नहीं हो! तुम्हें 'फ़ील' नहीं होता?" मैंने अपने रिश्ते को भूल कर ऐसा फ़ोश प्रश्न किया और कहा—"तुम तो मुझसे भी नए हो! अभी दिन कै हुए हैं!"

"हज़रत, यहाँ ऐसे ढलने वाले नहीं हैं। हम तो एक खाट पर सोवें—बरसों सोवें, और बात न करें! आप समझते क्या हैं?" देखा आपने झूठ की हद!!

साले साहब ने प्रशंसा से अधिक व्यंग्य आँखों में भर कर एक ऐसी फ़ोश बात कही, जिसे लिखना औचित्य के बाहर है। अगर आप कर सकें, तो अनुमान कर लीजिए।

जब मैं उनकी फ़ोश बात का मुँह-तोड़ उत्तर दे चुका, और कुछ और बातें भी हो चुकीं, तो मैंने कहा—क्यों जी, ऐसे ही प्राण निकले जाते हैं, तो बाज़ार तो पड़ा है।

साले साहब ने आँखों में अद्भुत रहस्य और सन्देह भर कर कहा—यार, क्या कहूँ!

"क्या?"

"भई, शर्म लगती है?"

"नरक के द्वार पर"—ऋषभचरण जैन

यह कथोपकथन कितना भ्रष्ट और अश्लील है, आप स्वयं जान सकते हैं। वास्तव में साले-बहनोई का रिश्ता बड़ा मर्यादित है; इसमें इस प्रकार की उच्छृङ्खलता के लिए स्थान कहाँ? हमारी भावना और भारतीय विद्वानों की धारणा तो यही है कि साले-बहनोई में इस प्रकार का आचरण सम्भव नहीं है। इस प्रकार का दुराचरण पवित्र सम्बन्ध की सौम्य सीमा के परे है। इसे हम मानवों का कथोपकथन नहीं कह सकते। यह पशुओं की मलीन वृत्तियों का चित्रण है।

२—उत्तम कथोपकथन की दूसरी विशिष्टता है, पात्र की वैयक्तिकता (Individuality)। अर्थात् पात्र के कथोपकथन का ढङ्ग अपना निजी होना चाहिए। उसमें अनुकरण, आडम्बर और अनुपयुक्तता की गन्ध न आवे। पात्र जिस स्थिति का हो, उसीके अनुकूल भाषण करे। यदि अनपढ़ किसान विशुद्ध खड़ी बोली में कथन करे; सीमा-प्रान्त का निवासी काशी के महा-महोपाध्याय के समान संस्कृत-गर्भित भाषा का प्रयोग करे; तो क्या हम उसे पात्रोपयुक्त भाषण कह सकते हैं? यदि पात्र की वैयक्तिकता नष्ट हो जाय, तो उसका भाषण एक व्याख्यान सा लगेगा। यहाँ हम एक उत्कृष्ट पात्रोपयुक्त कथोपकथन का उदाहरण देते हैं:—

"बादशाह का शब्द सुन कर सलीमा ने उनकी तरफ़ देखा और धीमे स्वर में कहा—ज़हे क़िस्मत!

बादशाह ने नज़दीक बैठ कर कहा—सलीमा! बादशाह की बेगम होकर क्या तुम्हें यही लाज़िम था?

सलीमा ने कष्ट से कहा—हुज़ूर! मेरा क़ुसूर बहुत मामूली था।

बादशाह ने कड़े स्वर में कहा—बदनसीब! शाही ज़नानख़ाने में मर्द को भेष बदल कर रखना मामूली क़ुसूर समझती है? कानों पर यक़ीन कभी न करता, मगर आँखों देखी को भी झूठ मान लूँ?

जैसे हज़ारों बिच्छुओं के एक बार डङ्क मारने से आदमी तड़पता है, उसी तरह तड़प कर सलीमा ने कहा—क्या?

बादशाह डर कर पीछे हट गए। उन्होंने कहा—सच कहो, इस वक्त तुम ख़ुदा की राह पर हो, यह जवान कौन था?

सलीमा ने अचकचा कर पूछा—"कौन जवान?" बादशाह ने ग़ुस्से से कहा—"जिसे तुमने साक़ी बना कर अपने पास रक्खा था?"

सलीमा ने घबरा कर कहा—हैं! क्या वह मर्द है?

बादशाह—तो क्या तुम सचमुच यह बात नहीं जानतीं ?

सलीमा के मुँह से निकला—या ख़ुदा !"

"दुखवा मैं कासे कहूँ मोरी सजनी"—चतुरसेन शास्त्री

बादशाह और बेगम का यह सम्वाद उनकी स्थिति, सभ्यता, शिष्टाचार और भाषा के विचार से कितना अनुकूल है। यह कथोपकथन जितना स्वाभाविक है, उतना ही सरल और प्रसाद-सम्पन्न है। इस कथोपकथन के ठीक प्रतिकूल यह निम्नाङ्कित सम्वाद है :—

"उसकी सखी ज़ुलेखा के आने से उसकी एकान्त भावना भङ्ग हो गई। अपना अवगुण्ठन उलटते हुए ज़ुलेखा ने कहा—शीरीं ! वह तुम्हारे हाथों पर बैठ जाने वाली बुलबुल, आजकल नहीं दिखलाई देती ?

आह खींच कर शीरीं ने कहा—कड़े शीत में अपने दल के साथ मैदान की ओर निकल गया। बसन्त तो आ गया, पर वह नहीं लौट आया।

"सुना है, यह सब हिन्दोस्तान में बहुत दूर तक चले जाते हैं। क्या यह सच है शीरीं ?"

"हाँ प्यारी ! उन्हें स्वाधीन विचरना अच्छा लगता है। इनकी जाति बड़ी स्वतन्त्र है।"

"तूने अपनी घुँघराली अलकों के पाश में उसे क्यों न बाँध लिया ?"

"मेरे पाश उस पक्षी के लिए ढीले पड़ जाते थे।"

"अच्छा लौट आवेगा, चिन्ता न कर। मैं जाती हूँ।"—शीरीं ने सिर हिला दिया।

ज़ुलेखा चली गई।"

'बिसाती'—जयशङ्कर 'प्रसाद'

अभारतीय मुस्लिम महिलाओं का यह कथोपकथन है ! इन महिलाओं को हिन्दी भाषा से इतना प्रेम कैसे हो गया कि भूल कर भी उर्दू शब्द का व्यवहार नहीं करतीं। 'शीत', 'दल', 'बसन्त', 'स्वाधीन', 'विचरना', 'जाति', 'स्वतन्त्रता-प्रिय', 'अलकों', 'पाश', 'पक्षी', 'चिन्ता', आदि विशुद्ध संस्कृत शब्दों को बोलना उन्हें अति प्रिय लगता है; परन्तु यह प्रेम कृत्रिम और अनुपयुक्त है।

३—कथोपकथन की तृतीय विशिष्टता यह है कि उसमें किसी एक स्थल पर मनोभाव (Feeling) की स्पष्ट अभिव्यक्ति होनी चाहिए। यथा :—

"एक दिन मैंने अपने पुत्र ज्ञानू को, जिसकी उम्र उस समय सात वर्ष की थी, किसी साधारण अपराध पर पीट दिया। वह रोता हुआ अपनी माँ के पास गया। केवल इसी बात पर चमेली ने दूसरे दिन मुझसे कहा—कल तुमने ज्ञानू को बड़ी बुरी तरह मारा।

मैंने कहा—उसने काम ही मार खाने का किया था।

चमेली आँखों में आँसू भर कर बोली—उसे मारा न करो।

मैंने कहा—क्यों ?

चमेली—मुझे बड़ा दुःख होता है।

मुझे उसकी बात पर हँसी आई। सभी बच्चे कुछ न कुछ मारे-पीटे जाते हैं। इसमें इतना दुःख अनुभव करने की क्या आवश्यकता ? मैंने चमेली से कहा—अपराध करने पर तो ताड़ना ही की जाती है। इसमें तुम्हारा इतना दुःख मानना बिलकुल निरर्थक है।

चमेली—मेरे इतना दुःख मानने का कारण है।

मैं—क्या कारण ?

चमेली—वह बिन माँ का है ?

मैं हतबुद्धि होकर बोला—बिन माँ का है ?

चमेली—हाँ, मैं ऐसा ही समझती हूँ। मेरे जीवन का क्या भरोसा है ? मैं अपने को मरी हुई ही मानती हूँ और इसी कारण उसे मातृहीन बालक समझती हूँ।"

'वह प्रतिमा'—विश्वम्भरनाथ शर्मा, कौशिक

इस सम्वाद में मातृ-हृदय का कैसा उज्ज्वल चित्र है। वात्सल्य-भावना की अभिव्यक्ति कितनी सुन्दर हुई है। प्रिय पुत्र के दुःख का सन्ताप कितना असह्य है !

४—कथोपकथन में हास्य, विनोद और व्यंग्य का उत्कृष्ट सामञ्जस्य उसको बड़ा आकर्षक बना देता है। परन्तु इनका प्रयोग समय और परिस्थिति को विचार कर करना चाहिए।

कथोपकथन को मनोरञ्जक और हृदयस्पर्शी बनाने के लिए कुछ नियम हैं, जिनका पालन करने से लेखक उसे मनोरञ्जक बना सकता है। प्रत्येक प्रतिभाशाली कलाकार की रचनाओं में इन नियमों का पालन दृष्टिगोचर होता है। यहाँ हम ऐसे ही कुछ नियम देते हैं :—

जब एक पात्र कथन कर रहा हो और दूसरा पात्र बीच में ही बोलने लगे, तो इससे सम्बाद में दोष नहीं आता। यह तो एक गुण है। क्योंकि इसके द्वारा पात्र के मनोभाव की अभिव्यक्ति बड़ी सुन्दरता से हो जाती है। श्री० प्रेमचन्द जी की 'गृहदाह' कहानी में इस नियम का पालन किया गया है।

दूसरा नियम यह है कि पात्र से किसी प्रश्न का उत्तर सामान्य कथन के रूप में न दिला कर उससे ऐसा उल्लेख कराना चाहिए कि ऐसा क्यों हुआ? तात्पर्य यह कि उत्तर केवल ग्रामोफ़ोन के रिकार्ड के समान न हों। उनमें 'क्यों' और 'कैसे' की जिज्ञासा होनी चाहिए।

तृतीय नियम यह है कि लेखक को चाहिए कि वह पात्र से किसी प्रश्न का उत्तर दिलाने के स्थान में उसमें एक नवीन प्रश्न की जिज्ञासा का आविर्भाव कर देना चाहिए।

इसी प्रकार पात्र यदि किसी प्रश्न का उत्तर दे तो उसे प्रश्न में प्रयुक्त शब्दावली से भिन्न शब्दों का प्रयोग करना चाहिए।

कैसा व्यापार ?

[श्री० नर्मदाप्रसाद खरे]

विकसते जीवन की मनुहार,
तुम्हारा यह कैसा व्यापार ?

निशा जब पहिन तिमिर-परिधान,
जला कर तारक दीप अजान,
विश्व को कर देती सुनसान,
स्वप्न में आ तब तुम साकार;
जतातीं अपना पीड़ित प्यार ॥

उषा जब ले सोने का थाल,
पूजने जाती है रवि-बाल,
बिखर तब मेरी आँसू-माल,
तुहिन-मणियों में छा सुकुमार;
जगाती मधुमय सोया प्यार ॥

नवल कलियाँ जब प्रातःकाल,
खोल कर घूँघट पीला लाल
बिछाती हैं मधु का मृदु जाल,
मधुप करते तब यह गुञ्जार—
'न पाओगे तुम खोया प्यार' ॥

तपा जब रवि-किरणें संसार,
बना देतीं दुख का आगार,
छिपा तब पीड़ा का मृदु भार,
प्राण करते हैं सजल पुकार—
'अरे! यह कैसा पागल प्यार' ॥

दिवस की गोधूली अनजान,
सुना विहगों का पीड़ित गान,
उसे देती विनाश का ज्ञान,
तभी करता अनन्त झङ्कार—
'क्षणिक है मधु जीवन का प्यार' ॥

वर्तमान मुस्लिम-जगत

[डॉ० मथुरालाल शर्मा, एम० ए०, डी० लिट्०]

(गताङ्क से आगे)

सन् १९२२ की सन्धि और उसका विरोध

इस उपाय से भी ईराक़ की राष्ट्रीयता नहीं दबी। आन्दोलन जारी रहा। फ़ैसल यों तो अङ्गरेज़ों का मित्र था ही, पर सिंहासन पर बैठने पर उसको मालूम हो गया कि केवल अङ्गरेज़ों की कृपा से वह सिंहासन पर नहीं रह सकता। इसलिए उसने राष्ट्रीयता का विरोध नहीं किया और देश की भावनाओं के साथ सहानुभूति करने लगा। अब एक ओर तो ईराक़ और अङ्गरेज़ सरकार में भविष्य के लिए सन्धि की बातचीत होने लगी और दूसरी ओर राष्ट्रीय आन्दोलन बढ़ने लगा। शीया और सुन्नी शताब्दियों के पारस्परिक द्वेष को भूल कर एकमत हो गए और ब्रिटिश सरकार की नीति का घोर विरोध करने लगे। सभाओं में, पत्रों में, परस्पर बातचीत में, गानों में, जहाँ देखो वहाँ अङ्गरेज़ी संरक्षता के विरुद्ध आन्दोलन और घृणा दिखाई देती थी। हाई कमिश्नर के दबाव में आकर मन्त्रि-मण्डल ने सन्धि को स्वीकार तो कर लिया, पर शर्त यह रक्खी कि देश की प्रतिनिधि-सभा जब इसको स्वीकार कर लेगी, तब पक्की मानी जावेगी। हाई कमिश्नर ने इस विषय में कई बार लिखा-पढ़ी की, परन्तु मन्त्रि-मण्डल अपने निश्चय से नहीं टला। साथ ही राष्ट्रीय आन्दोलन दिन-दिन बढ़ता ही जाता था। यह देख कर हाई कमिश्नर ने दमन-चक्र चलाना शुरू किया। जिन हाकिमों में राष्ट्र-प्रेम देखा, उनको निकाल दिया और उनकी जगह अङ्गरेज़ अफ़सर काम करने लगे। सभाएँ करने की मनाही हो गई। राष्ट्रीय पार्टियों पर सख़्त निगरानी रक्खी जाने लगी और सरकार के पिट्ठुओं की पीठ ठोंकी जाने लगी। यह देख कर मन्त्रि-मण्डल ने इस्तीफ़े दे दिए और राजप्रासाद में भी अङ्गरेज़ों की संरक्षता तथा हाई कमिश्नर के विरुद्ध हल्ला होने लगा। यह देख कर प्रजातन्त्र का आडम्बर हाई-कमिश्नर ने हटा दिया, नेताओं को देश-निर्वासित कर दिया और जनता की ज़बान पर ताले लगा दिए। इस प्रकार दमन करने के बाद, अक्टूबर सन् १९२२ में ईराक़ के साथ सन्धि हो गई। इसके अनुकूल अङ्गरेज़ों की संरक्षता बनी रही और बादशाह को हुक्म दिया गया कि वह राष्ट्र-सभा के सामने ऐसा शासन-विधान पेश करे, जो सन्धि की शर्तों के विपरीत न हो। वास्तव में बात यह थी कि सन्धि की शर्तों के अनुसार ईराक़ में अङ्गरेज़ों का इतना आधिपत्य था कि वहाँ उनके रहते हुए स्वराज्य सम्बन्धी कोई भी शासन-विधान सफल नहीं हो सकता था। यह कैसे सम्भव हो सकता था कि चुटिया तो रहे परदेशियों के हाथ में और फिर कहा जावे कि स्वराज्य का मसविदा पेश करो। इस सन्धि के अनुकूल अङ्गरेज़ों की संरक्षता की अवधि बीस वर्ष नियत की गई थी।

सन् १९२३ तथा १९२७ की सन्धि

फिर भी स्वातन्त्र्य संग्राम बन्द नहीं हुआ। फ़ैसल और उसके मन्त्री लोगों ने सन्धि को स्वीकार कर लिया, पर इससे क्या हो सकता था? जनता उसका विरोध करती रही। अङ्गरेज़ों के दमन से भी कुछ नहीं हुआ। उत्पात बढ़ता ही गया और कई जगह लोगों ने अपना शासन अपने ही हाथ में ले लिया। इस सन्धि के अनुकूल जब राष्ट्रीय व्यवस्थापिका सभा का चुनाव होने लगा तो जनता ने इसमें कोई भाग नहीं लिया और उसका

पूर्ण बहिष्कार हुआ। तब अप्रैल सन् १९२३ में अङ्गरेज़-सरकार ने दूसरी सन्धि की और संरक्षता की अवधि बीस साल से हटा कर चार साल कर दी गई। साथ ही यह भी कह दिया कि यदि इससे भी पूर्व ईराक़ राष्ट्र-सङ्घ में सम्मिलित हो सकेगा, तो संरक्षकता हटा ली जावेगी। अङ्गरेज़ी अफ़सरों का सम्बन्ध अब ईराक़-सरकार से रह गया, हाई कमिश्नर से नहीं; और अन्य कई रिआयतें की गईं। इस सन्धि के अनुसार सन् १९२७ में अङ्गरेज़ों की संरक्षकता हट जानी चाहिए थी। परन्तु उसका पालन नहीं किया गया। उसी वर्ष एक दूसरी सन्धि की गई, जिसमें यह शर्त ठहरी कि संरक्षकता सन् १९३२ में हटाई जावेगी। १९३२ में क्या होगा, यह कौन कह सकता है? परन्तु इङ्गलैण्ड नित्य नए मसविदे पेश ही किया करता है। ईराक़ प्रायः अङ्गरेज़ों की नीति के विरुद्ध है, परन्तु फिर भी एक पार्टी ऐसी है, जो इनकी संरक्षकता में ही फल-फूल सकती है। मन्त्रि-मण्डल के अधिकांश लोग इनके कृपापात्र होते हैं। परन्तु राष्ट्रीयता दिन-दिन प्रबल होती जाती है। अङ्गरेज़ सरकार से क्या समझौता हो, इस विषय में गत वर्ष मार्च के महीने में मन्त्रि-मण्डल में बड़ा मतभेद हुआ था, और प्रधान मन्त्री साहूनपाशा ने पदत्याग कर दिया था। फिर जब वर्तमान हाई कमिश्नर सर गिलबर्ट क्लेरन आया, तब कुछ चाटुकार लोगों का मन्त्रि-मण्डल बनाया गया। सर गिलबर्ट ने जो समय-समय पर भाषण दिए हैं, उनसे यही अनुमान होता है कि यदि अङ्गरेज़ों का वश चला तो १९३२ में तो वे ईराक़ से विदा नहीं होंगे। परन्तु ईराक़ पूर्ण स्वतन्त्र होगा, यह भी निश्चय है। केवल दो-चार वर्षों की बात है।

सरकार का पतन

जब यूरोपीय महासमर समाप्त हो गया, तो ईरान के प्रतिनिधि पेरिस गए और वहाँ सन्धि-परिषद् के सामने अपनी राजनैतिक, आर्थिक तथा क़ानूनी माँगें पेश कीं। उस समय फ़ारस पर अङ्गरेज़ों का आधिपत्य था; शाह और उनका मन्त्रि-मण्डल उनके आगे चूँ नहीं कर सकता था। अङ्गरेज़ी व्यापारियों की कम्पनियाँ देश में फैली हुई थीं और ख़ूब मालामाल होती जाती थीं। अङ्गरेज़ों पर फ़ारस-सरकार को कोई क़ानूनी अधिकार नहीं थे। उनके वास्ते अलग कचहरियाँ थीं। फ़ारस को दबाए रखने के लिए वहाँ एक अङ्गरेज़ी सेना भी रहती थी। इस प्रकार के आततायीपन से छुटकारा पाने के वास्ते फ़ारस के प्रतिनिधि पेरिस गए थे। परन्तु याचना से अधिकारों की प्राप्ति नहीं होती। अधिकार शक्ति से ही प्राप्त होते हैं और शक्ति ही उनकी रक्षा कर सकती है। सन्धि-परिषद ने इनकी कोई बात नहीं सुनी और वे वापस आ गए। सन् १९१९ में सर पर्सी कोक्स, जिसका हम ईराक़ के सम्बन्ध में ज़िक्र कर चुके हैं, फ़ारस की राजधानी तेहरान में आया और वहाँ की नामधारी सरकार से उसने एक सन्धि की, जिसके अनुकूल फ़ारस के शाह और उसके मन्त्रि-मण्डल की रही-सही शक्ति का भी अपहरण कर लिया गया। फ़ारस का शासन, सेना, अन्तर्राष्ट्रीय नीति, व्यापार आदि सब अङ्गरेज़ों के अधीन हो गए। परन्तु यह सन्धि फ़ारस के बादशाह और उसकी सरकार से हुई थी। जब पार्लामेण्ट का अधिवेशन हुआ तो उसने इसका अनुमोदन नहीं किया, जिसके कारण सन्धि पक्की न हो सकी। देश भर में राष्ट्रीय जागृति हो चुकी थी और स्वतन्त्रता की अभिलाषा उमड़ रही थी। ऐसी सन्धि को जनता कैसे स्वीकार कर सकती थी। १९२० में जनता के विरोध के कारण राज-मन्त्रियों ने पद-त्याग कर दिए और तदनन्तर मन्त्रि-मण्डल को इङ्गलैण्ड के साथ कोई सन्धि करने का साहस नहीं हुआ।

रिज़ाअली का उदय

सन् १९२१ में एक प्रबल सैनिक अफ़सर रिज़ाख़ाँ युद्ध-सचिव बन गया और ज़ियाउद्दीन प्रधान सचिव के पद पर नियत हुआ। ज़ियाउद्दीन ने अनेक शासन-सम्बन्धी सुधार किए। विशेषकर उसने अमीरों की शक्ति और अत्याचारों को कम किया और अपनी सम्पत्ति का कुछ अंश देशोन्नति के लिए दे देने को उनको बाध्य किया। लेकिन रिज़ाअली प्रतिदिन शक्तिशाली होता जाता था। सैनिक शक्ति भी उसके पास थी और जनता भी उस पर विश्वास करती थी। इसलिए चार मास बाद ही ज़ियाउद्दीन भाग गया और रिज़ाअली ने सब प्रबन्ध अपने हाथ में ले लिया। परन्तु कहने को वह केवल युद्ध-सचिव ही बना रहा। पाठकों को आश्चर्य

होगा कि अङ्गरेज़ों का आधिपत्य होते हुए भी रिज़ाअली इतना शक्तिशाली कैसे हो गया। इसके अन्तर्राष्ट्रीय कारण थे।

रूस की सहायता

सन् १९२० में रूसी सेना उत्तर ईरान में घुसी और अङ्गरेज़ी सेना को वहाँ से हटाने लगी। इसके पाँच मास बाद ही फ़ारस और रूस में एक महत्वपूर्ण सन्धि हुई, जिसके कारण फ़ारस का बल बढ़ा और वहाँ से अङ्गरेज़ों के पैर उखड़ गए। रूस अपने नवीन क्रान्तिकारी सिद्धान्तों के अनुकूल अपना राज्य-विस्तार नहीं चाहता था, पर वह अङ्गरेज़ों के सान्निध्य को अपनी भावी उन्नति के लिए अच्छा नहीं समझता था। क्योंकि अङ्गरेज़ संसार में सबसे अधिक साम्राज्यवादी शक्ति है और रूस साम्राज्यवाद का कट्टर विरोधी है। इसलिए रूस ने फ़ारस के साथ सन्धि की, जिसकी शर्तें निम्न-लिखित थीं :—

फ़ारस और रूस की सन्धि

"वर्तमान रूसी सरकार भूतपूर्व साम्राज्यवादी रूसी सरकार की हड़प-नीति का अनुसरण नहीं करेगी। भूतपूर्व रूसी सरकार में और फ़ारस में जो ऐसी सन्धियाँ हुई थीं; जिनके कारण रूस को लाभ और फ़ारस को हानि हो रही है, वे सब रद्द की जाती हैं। ज़ार की सरकार ने यूरोपीय राष्ट्रों के साथ जो ऐसी सन्धियाँ की हैं, जिनसे फ़ारस को हानि होती है, उनको भी वर्तमान सरकार नहीं मानेगी। यदि कोई राष्ट्र फ़ारस पर आक्रमण करेगा तो रूस का कर्तव्य है कि वह फ़ारस की सहायता करे। रूस ने फ़ारस के अन्दर रेल, तार, सड़कें आदि बनाने में जो पूँजी ख़र्च की है, उसको भी रूसी सरकार नहीं माँगेगी। रूसी लोगों को फ़ारस में जो विशेष अधिकार प्राप्त हैं, वे सब रद्द किए जाते हैं। रूस के मकान जो फ़ारस में हैं, वे भी फ़ारस-सरकार को भेंट किए जाते हैं।"

अङ्गरेज़ों की विदाई

ऐसी सन्धि होने पर अङ्गरेज़ों का फ़ारस में ठहरने का क्या साहस हो सकता था। फ़ारस की चतुर्थ पार्लामेण्ट ने इस सन्धि को पक्की किया और १९१९ में अङ्गरेज़ों के साथ फ़ारस की नपुंसक सरकार ने जो सन्धि की थी, उसको रद्द ठहराया गया। अङ्गरेज़ सैनिक अफ़सर और हिसाब महकमे के सलाहकार बरख़ास्त कर दिए गए। दक्षिण में जो अङ्गरेज़ी सेना थी और जिसको फ़ारस-सरकार से वेतन मिलता था, वह तोड़ दी गई। कुछ महीनों के अन्दर ही अङ्गरेज़ सैनिक और कर्मचारी ईरान से विदा हो गए। सर पर्सी साइक्स लिखते हैं कि "यह ईरान का महा दुर्भाग्य था कि उसने अङ्गरेज़ों की मित्रता को त्याग दिया। अङ्गरेज़ों ने तो अपना यह कर्तव्य समझ कर कि तीन सौ वर्षों के मित्र को उन्नति-पथ दिखाना चाहिए, फ़ारस के शासन में सहायता करते थे। अब वे लोग ईरान से जा रहे हैं। इस देश का विनाश अवश्यम्भावी है।" परन्तु जब से अङ्गरेज़ महाप्रभु ईरान से पधारे हैं, तब से वहाँ उत्तरोत्तर उन्नति होती जाती है। विदेशियों की सहायता के बिना किसी राष्ट्र का उन्नत होना वास्तव में आश्चर्य की बात है। या तो प्रकृति अपना नियम भूल गई या जो कुछ जगत को फ़ारस में दिखाई देता है, वह सब माया और भ्रम है। क्योंकि सर पर्सी का शाप अवश्य सत्य होना चाहिए।

इस स्वतन्त्रता-प्राप्ति का सम्पूर्ण श्रेय रिज़ाअली को है। वह फ़ारस की सेना का एक साधारण अफ़सर था, परन्तु सन् १९२१ में उसने बड़ी सैनिक निपुणता दिखाई और तभी से वह "सरदारे सिपह" कहलाने लगा। उसके बाद वह युद्ध-सचिव बना और ज़ियाउद्दीन के भाग जाने पर भी वह युद्ध-सचिव ही बना रहा; परन्तु राज्य की सम्पूर्ण सत्ता उसके हाथ में आ चुकी थी। कुछ समय बाद वह प्रधान सचिव बन गया और घोषणा की कि फ़ारस में प्रजातन्त्र राज्य की स्थापना की जावेगी। शेख़, मुल्ला और ऐसे ही और लोगों ने प्रजातन्त्र का विरोध किया। इसलिए वह स्वयं बादशाह बन गया, पर उसने अपनी सत्ता को अनियन्त्रित नहीं बनाया। पार्लामेण्ट, मन्त्रि-मण्डल और बादशाह तीनों मिल कर वास्तव में वहाँ की राजसत्ता बनी है। उसके बाहुबल के प्रताप से आज फ़ारस स्वतन्त्र देश है और संसार के सभ्य देशों के सामने उसका मस्तक ऊँचा है।

अफ़ग़ानिस्तान और १९१९ का युद्ध

पिछले प्रकरण में हम बतला चुके हैं कि अफ़ग़ानिस्तान घरू मामलों में तो स्वतन्त्र था, पर अन्तर्राष्ट्रीय

विषयों में उसको एक ओर से अङ्गरेज़ों ने और दूसरी ओर से रूस ने दबा रक्खा था। सन् १९१७ में जब रूस में राज्य-क्रान्ति हो गई तो वहाँ की नवीन प्रजातन्त्र सरकार ने ज़ार-काल की साम्राज्यवादी नीति का अनुसरण करना छोड़ दिया और पश्चिमी तरफ़ से अफ़ग़ानिस्तान पर बाह्य शक्ति का कोई दबाव नहीं रहा है। महमूद ताज़ी के लेखों से और प्रचार से अफ़ग़ान जनता और अमीर दोनों में स्वतन्त्रता-प्राप्ति की अभिलाषा बढ़ती जाती थी। जब रूस का दबाव हट गया तो वे लोग अङ्गरेज़ों का भी खटका मिटाने का विचार करने लगे। सन् १९१९ में अमीर अमानुल्ला ने अफ़ग़ानिस्तान की पूर्ण स्वतन्त्रता की घोषणा कर दी। तत्कालीन सन्धि के अनुसार उसको अन्य राष्ट्र से भारत-सरकार के द्वारा बातचीत करना चाहिए था, परन्तु उसने इसकी तनिक भी परवाह न करके अपने राजदूत को सन्धि की शर्तें निश्चित करने के लिए रूस भेज दिया। उस समय भारत में और विशेषकर पञ्जाब में घोर असन्तोष था और स्थान-स्थान पर आज़ादी के प्यासे भारतीय उत्पात मचा रहे थे। इसमें हिन्दू और मुसलमान दोनों पूर्ण रूप से सम्मिलित थे। सरकार ने भी दमन-चक्र चलाने में कोई कमी नहीं की थी। जलियानवाला बाग़ और अनेक नगरों के सैनिक शासन की कथाएँ जब अफ़ग़ानिस्तान में पहुँचीं, तो वहाँ भी लोगों में अङ्गरेज़ों के प्रति घोर घृणा जाग उठी। इस परिस्थिति से लाभ उठा कर अमानुल्ला ने भारत-सरकार के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी और अफ़ग़ानी सेना भारत की तरफ़ बढ़ने लगी।

रावलपिण्डी की सन्धि

इस युद्ध में अङ्गरेज़ों ने वायुयानों का विशेष उपयोग किया। जब युद्ध बन्द हुआ तो भारत-सरकार कहती थी कि हम जीते और अमानुल्ला कहता था कि हम जीते। पर वास्तव में ऐसा जान पड़ता है कि दोनों ही जीते और दोनों ही हारे। अगर अङ्गरेज़ जीते होते तो वे पुनः काबुल पर अपना आधिपत्य जमाए बिना तथा अमानुल्ला से हाथ जुड़वाए बिना नहीं रह सकते थे, और यदि अमीर अमानुल्ला जीता होता तो उसकी सेना भारतवर्ष में घुसे बिना नहीं रह सकती थी। बात यह थी कि आगे बढ़ने का दोनों में ही साहस नहीं था। अतः कुछ मास बाद ही रावलपिण्डी में सन्धि हुई, जिसके अनुसार अङ्गरेज़ों ने मान लिया कि अफ़ग़ानिस्तान पूर्ण स्वतन्त्र है और उसके अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध में भारत-सरकार को हस्तक्षेप करने का कोई अधिकार नहीं है। सन् १९२१ में, काबुल में दूसरी सन्धि हुई। इसमें पूर्व सन्धि को पक्की माना गया। अफ़ग़ानिस्तान आन्तरिक और बाह्य विषयों में पूर्णरूपेण स्वतन्त्र मान लिया गया। तुर्की और ईरान की भाँति इसकी भी सभ्य और उन्नत राष्ट्रों में गिनती होने लगी।

(क्रमशः)

सुमनों का हार

[कुमारी राधिका चौहान]

सुमन-माल से सजा-सजा कर, छोटी डाली लाई हूँ।
करो इसे स्वीकार, नाथ ! मैं सकुचाई-सी आई हूँ॥
इस डाली के सुमन सभी प्रभु ! परिमल और पराग-विहीन।
मधु मकरन्द मनोहरता से हीन और सब भाँति मलीन॥
किन्तु, प्रेम से भरे सभी हैं, सुमन-हार, हे जगदाधार !
प्रेम-रूप तुमको पहिनाने—आई हूँ, सुमनों का हार॥

प्रयाग महिला-सेवा-सदन

[श्री० अभयङ्कर वर्मा, एम० ए०, एल्-एल्० बी०]

गत सन् १९२२ ई० में, प्रयाग के उत्साही कार्यकर्ता और इलाहाबाद हाईकोर्ट के एडवोकेट श्री० सङ्गमलाल जी ने अपने कतिपय उत्साही मित्रों के सहयोग से प्रयाग महिला-विद्यापीठ की स्थापना की थी। परन्तु उस समय देश की स्त्रियों में ऐसी जागृति न थी, इसलिए विद्यापीठ ने केवल एक परीक्षक संस्था के रूप में ही अपना कार्य आरम्भ किया ; शिक्षा प्रदान करने का कार्य अपने हाथ में न ले सकी थी।

परन्तु सन् १९३० के राष्ट्रीय आन्दोलन ने स्त्री-समाज में एक अद्भुत जागृति पैदा कर दी। परदा तथा दूसरी प्रकार की सामाजिक रूढ़ियों को ठुकरा कर सहस्रों की संख्या में स्त्रियों ने राष्ट्रीय तथा सामाजिक कामों में भाग लिया। सारे देश के स्त्री-समाज में एक अपूर्व उत्साह और साहस का सञ्चार हो गया। उनकी ज्ञानार्जन की पिपासा भी बढ़ चली। फलतः विद्यापीठ ने भी अपने कार्यक्षेत्र को विस्तृत करने का विचार किया और अगस्त सन् १९३० में, पन्द्रह वर्ष या उससे अधिक उम्र की लड़कियों और स्त्रियों की शिक्षा के लिए महिला सेवा-सदन की स्थापना की गई।

यह सेवा-सदन एक उच्चकोटि की शिक्षा-संस्था है। इसके उद्देश्य बड़े ही महान और समयोपयोगी हैं। यहाँ छात्रियों को विद्यापीठ तथा हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन आदि अन्य सार्वजनिक संस्थाओं की परीक्षाओं के लिए शिक्षा दी जाती है। उन्हें ऐसी शिक्षा दी जाती है, जिससे वे समाज की सेविकाएँ बन सकें। समाज-सुधार आदि कामों में निपुणतापूर्वक भाग ले सकें। सेवा-सदन स्त्रियों को ऐसी शिक्षा प्रदान करने की चेष्टा करता है, जिससे वे आवश्यकता पड़ने पर धनोपार्जन कर सकें। वह प्राथमिक स्कूलों के लिए ऐसी अध्यापिकाएँ तैयार करने की चेष्टा करता है, जो साधारण पाठ्य विषयों का ज्ञान रखने के साथ ही सङ्गीत, सिलाई और शिक्षण-कला में भी विशेष निपुण हों। इसके सिवा स्त्रियों को साधारण शिक्षा के साथ-साथ ऐसे कला-कौशल तथा अन्य उपयोगी विषयों की शिक्षा प्रदान करने की आवश्यकता है, जिससे वे स्वतन्त्र आर्थिक जीवन व्यतीत कर सकें। यह भी सेवा-सदन का उद्देश्य है।

सेवा-सदन में इस बात का विशेष ध्यान रक्खा जाता है कि जो स्त्रियाँ किसी कारणवश उच्च शिक्षा प्राप्त करने में असमर्थ हैं, वे दो वर्षों में कम से कम इतनी शिक्षा तो अवश्य ही प्राप्त कर लें, जिससे १५) २०) मासिक उपार्जन करके स्वतन्त्रतापूर्वक अपना जीवन निर्वाह कर सकें। परन्तु जो स्त्रियाँ उच्च शिक्षा प्राप्त करना चाहें, वे जितनी पढ़ाई साधारणतः दो वर्षों में होती है, उसको एक ही वर्ष में समाप्त कर लें।

सेवा-सदन का गत वर्षों का काय-विवरण देखने से पता लगता है कि संस्था अपने उद्देश्य की ओर सफलतापूर्वक अग्रसर हो रही है। अप्रैल सन् १९३२ में सेवा-सदन की १४ स्त्रियाँ गवर्नमेंट की लोअर मिडिल की परीक्षा में सम्मिलित हुई थीं। जिनमें इस सेवा-सदन का परीक्षा-फल, प्रयाग के उन सभी स्कूलों से अच्छा रहा, जिनकी लड़कियों ने ६ या ७ वर्षों तक पढ़ कर परीक्षा दी थी।

उपर्युक्त परीक्षोत्तीर्ण लड़कियों में से तीन प्रयाग-म्युनिसिपल बोर्ड, दो इलाहाबाद डिस्ट्रिक्ट बोर्ड और एक कानपूर म्युनिसिपल बोर्ड के स्कूल में अध्यापिका का कार्य करके अपने कुटुम्ब का पालन कर रही है। इस संस्था की स्त्रियों को शिक्षा-विभागों ने नौकरियाँ देकर यह लाभ उठाया है कि वे साधारण पाठ्य विषयों के अतिरिक्त छात्रियों को सङ्गीत-विद्या और सिलाई की भी शिक्षा प्रदान कर सकती हैं।

लोअर प्राइमरी से आगे की शिक्षा प्राप्त करने की इच्छा रखने वाली स्त्रियों के लिए भी संस्था ने समुचित प्रबन्ध कर दिया है। अर्थात् उनके लिए प्रवेशिका, विद्या-विनोदिनी और विदुषी कक्षाएँ भी खोल दी गई हैं। इनमें प्रयाग विद्यापीठ की निर्धारित पाठ्य-विधि के अनुसार शिक्षा दी जाती है। इसके अलावा एक 'एडमिशन क्लास' भी खोल दिया गया है, जहाँ काशी-विद्यापीठ की परीक्षा के लिए विद्यार्थिनें तैयार होती हैं। विदुषी कक्षा की वे विद्यार्थिनें, जो अङ्गरेज़ी भी पढ़ती हैं, इस परीक्षा के लिए तैयार की जाती हैं। महिला विद्यापीठ की जो 'विदुषी' उपाधिधारिणी विद्यार्थिनी एडमिशन पास कर लेती हैं, वह सरकार द्वारा स्वीकृत प्रमाण-पत्र पा जाती हैं और भविष्य में अच्छे वेतन पर नौकरी पा सकती हैं। इस समय आठ विद्यार्थिनियाँ एडमिशन परीक्षा की तैयारी कर रही हैं।

सेवा-सदन में तीन ऐसी विशेष कक्षाएँ हैं, जिनमें केवल सङ्गीत, सिलाई या अङ्गरेज़ी सीखने के लिए छात्रियाँ भर्ती की जाती हैं। ऐसी स्त्रियाँ, जो दिन के ११ बजे से लेकर तीन बजे तक घरों में बेकार बैठी रहती हैं, उनके लिए ये कक्षाएँ बड़ी ही उपयोगी हैं।

सेवा-सदन ने गत ढाई वर्षों में जो उन्नति की है, वह वास्तव में सन्तोषजनक और उसके सञ्चालकों की कर्म-पटुता का परिचायक है। पहले वर्ष जहाँ ३७ स्त्रियाँ शिक्षा पाती थीं, वहाँ अब १२५ पा रही हैं। अध्यापिकाओं की संख्या भी चार से बढ़ कर ग्यारह हो गई है।

सङ्गीत-विभाग

सेवा-सदन में सङ्गीत की शिक्षा का अच्छा प्रबन्ध है। इस समय वहाँ भिन्न-भिन्न कक्षाओं में कई स्त्रियाँ सङ्गीत की शिक्षा पा रही हैं। उन्हें कई प्रकार के बाजों की शिक्षा दी जाती है। गत लोअर मिडिल परीक्षा में इस प्रान्त की दस स्त्रियों ने सङ्गीत लिया था, उनमें से नौ सेवा-सदन की विद्यार्थिनियाँ थीं और सभी पास हो गई। इस वर्ष लोअर और मिडिल दोनों परीक्षाओं में यहाँ की छात्रियाँ सङ्गीत लेकर सम्मिलित हुई हैं।

बोर्ड ऑफ़ हाई स्कूल और इण्टरमीडियट एजूकेशन की "म्यूज़िक डिप्लोमा" परीक्षा की स्वीकृति के लिए भी प्रबन्ध किया जा रहा है। साथ ही इस साल महिला 'आरचेस्ट्रा' का भी प्रबन्ध किया गया है।

सिलाई-विभाग

इस विभाग का प्रबन्ध भी अच्छा है। १११ छात्रियाँ इस समय सिलाई की शिक्षा प्राप्त कर रही हैं। उन्हें कपड़े काटने का काम वैज्ञानिक रीति से सिखलाया जाता है। इनमें कइयों ने तो इतनी योग्यता प्राप्त कर ली है कि वे केवल सिलाई का काम करके ही अपना जीवन निर्वाह कर सकती हैं।

पुस्तकालय और वाचनालय

विद्यार्थिनियों की विशेष सुविधा और ज्ञानार्जन के लिए 'कर्पूरी महिला पुस्तकालय' नाम से एक पुस्तकालय और वाचनालय की भी स्थापना की गई है। इस पुस्तकालय में २,५००के क़रीब पुस्तकें हैं और कई दैनिक, साप्ताहिक और मासिक पत्र भी आते हैं। पण्डित रामनारायण जी चतुर्वेदी ने अपनी धमपत्नी कर्पूरी देवी की स्मृति में इस पुस्तकालय की स्थापना कराई है।

नर्सिङ्ग और मिडवाइफ़री

रोगियों की सेवा-सुश्रूषा सम्बन्धी विद्या स्त्रियों के लिए बड़े काम की है। इसे सीख कर वे अनायास ही २५-३० रुपए मासिक उपार्जन कर सकती हैं। सेवा-सदन ने इस शिक्षा का भी प्रबन्ध किया है। योग्य डॉक्टरों की सहायता से एक वर्ष के लिए पाठ्य-क्रम भी प्रस्तुत कर लिया गया है। एक योग्य डॉक्टर महोदय ऑनरेरी तौर पर काम करने के लिए आते भी हैं। इलाहाबाद म्युनिसिपल बोर्ड ने भी इसके लिए ५००) की सहायता दी है। परन्तु संस्था के कार्यविवरण से पता लगता है कि इसकी ओर स्त्रियों का उत्साह बहुत कम है। वास्तव में यह खेद की बात है। परन्तु हमें विश्वास है कि संस्था के सञ्चालक स्त्रियों की इस उदासीनता से हताश न होंगे। आज नहीं, तो दो-एक साल में इसकी उपयोगिता भी अवश्य ही हमारे देश की स्त्रियों की समझ में आ जाएगी।

छात्र-निवास

सेवा-सदन के साथ एक 'छात्री-निवास' या बोर्डिङ्ग हाउस भी है। इसमें आजकल ३७ छात्रियाँ रहती हैं। इसका प्रबन्ध प्रधानाध्यापिका स्वयं करती हैं और अपनी सहायिकाध्यापिका के साथ वहीं रहती भी हैं। बोर्डिङ्ग में रहने वाली छात्रियों के सुख-स्वच्छन्दता और उनके स्वास्थ्य आदि पर सतर्क दृष्टि रक्खी जाती है।

शारीरिक उन्नति

छात्रियों की मानसिक उन्नति के साथ ही सेवा-सदन में उनकी शारीरिक उन्नति की ओर भी विशेष ध्यान दिया जाता है। प्रतिदिन एक घण्टा शारीरिक व्यायाम और खेल के लिए रक्खा गया है। इसका परिणाम भी अच्छा हुआ है। इससे स्त्रियों की बीस फ़ी सदी शारीरिक उन्नति हुई है। बोर्डिङ्ग की सभी छात्रियाँ व्यायाम और खेलों में भाग लेती हैं।

गर्ल्स गाइडिङ्ग

उपर्युक्त व्यवस्था के साथ ही सदन ने अभी हाल में ही गर्ल-गाइडिङ्ग की शिक्षा देने की भी व्यवस्था की है। निस्सन्देह इससे स्त्रियों का विशेष उपकार होगा। इस शिक्षा द्वारा अवसर पड़ने पर वे अपनी विपद्ग्रस्ता बहिनों की विशेष सेवा कर सकेंगी। इससे स्त्रियों के समाज-सेविका बनने में भी विशेष सहायता मिलेगी।

असहाय महिला-कोष

सेवा-सदन के छात्रावास में अब निःशुल्क भोजन का भी प्रबन्ध हो गया है। इस समय वहाँ पचास स्त्रियों के बिना व्यय रहने और भोजन का प्रबन्ध है। अब तक २१ स्त्रियाँ वहाँ ऐसी हैं, जो इस प्रबन्ध से लाभ उठा रही हैं। इसके भण्डार का प्रबन्ध और इसका कोष सदन की विद्यार्थिनियों के अधिकार में है और वे इसका प्रबन्ध भी बड़े उत्साह से करती हैं।

कुछ और बातें

सेवा-सदन में शिक्षा पाने वाली विद्यार्थिनियों के आने-जाने के लिए बैलगाड़ियों का प्रबन्ध है। इसके लिए दो गाड़ियाँ हैं। दाइयाँ साथ रहती हैं। निकट की रहने वाली छात्रियाँ दाइयों के साथ पैदल भी आती-जाती हैं।

इस समय सेवा-सदन में मध्य-प्रान्त, बङ्गाल, बिहार, राजपूताना, मध्य भारत तथा पञ्जाब तक की स्त्रियाँ शिक्षा पाती और रहती हैं। बड़े धनी घराने से लेकर ग़रीब घराने तक की स्त्रियाँ इस संस्था से लाभ उठा रही हैं। इन बातों से मालूम होता है कि इस संस्था की कितनी आवश्यकता थी।

सेवा-सदन की विशेषता

सेवा-सदन की जो रिपोर्ट हमारे सामने है, उसे देखने से पता लगता है कि इससे केवल ग़रीब और निराश्रया विधवाएँ ही नहीं, वरन् वे सौभाग्यवती और सन्तानवती स्त्रियाँ भी इससे लाभ उठा सकती हैं, जिनके पति या कुटुम्बी अपनी अल्प आय के कारण अपने परिवार का भरण-पोषण करने में असमर्थ हैं। क्योंकि सदन की शिक्षा-प्रणाली ऐसे अच्छे ढङ्ग से बनाई गई है कि केवल दो-तीन वर्ष में ही स्त्रियाँ इतनी योग्यता प्राप्त कर लेती हैं कि आसानी से २०-२५) मासिक उपार्जन कर सकें। इसके सिवा जिन स्त्रियों ने बाल्यावस्था में किसी प्रकार की शिक्षा नहीं प्राप्त की और अब उस त्रुटि का अनुभव कर रही हैं, वे भी बहुत थोड़े दिनों के परिश्रम से संसारोपयोगी आवश्यक शिक्षा प्राप्त कर सकती हैं और पतियों की योग्य सहचरियाँ बन सकती हैं। ऐसी कन्याएँ, जो अपने अभिभावकों के धनाभाव के कारण योग्य वर नहीं पा सकती हैं, वे इस सदन द्वारा शिक्षा और योग्यता प्राप्त करके अनायास ही किसी अच्छे घर में ब्याही जा सकती हैं। हम निसङ्कोच कह सकते हैं कि प्रयाग का यह महिला-सेवा-सदन एक अपूर्व और अद्वितीय संस्था है। इस समय भारत के प्रत्येक छोटे-बड़े नगर में ऐसी संस्था की नितान्त आवश्यकता है।

रिपोर्ट देखने से यह भी पता चलता है कि आमदनी की अपेक्षा सदन का ख़र्च ज़्यादा है और वह ऋण के भार से झुका हुआ है। मन्त्री महोदय के शब्दों में इसका सारा ख़र्च "राम-भरोसे" चलता है और आश्चर्य है कि इस उपयोगी संस्था को न तो सरकार ही कुछ सहायता देती है और न प्रयाग का म्युनिसिपल बोर्ड ही देता है। इसके सिवा हमारे देश में उदार-हृदय धनवानों की भी कमी नहीं है, परन्तु उनकी भी दृष्टि इस ओर नहीं है।

यद्यपि इन पंक्तियों के लेखक का यह विश्वास है कि इस संस्था के सुयोग्य कार्यकर्ता अपने उद्देश्य में सफल होंगे। क्योंकि जिसे "राम-भरोसा" होता है, राम उसकी अवश्य ही मदद करता है। परन्तु देश के धनवानों, सरकार तथा यहाँ की म्युनिसिपैलिटी का भी तो कुछ कर्तव्य है। उन्हें चाहिए कि यथेष्ट सहायता द्वारा इसकी प्रगति की वृद्धि करके यश के भागी बनें।

परित्यक्ता

[श्री० वीरेश्वरसिंह, बी० ए०]

मैं भूल गई हूँ पहले सा झूम-झूम कर गाना,
गा-गा बुनना रेशम से स्वप्नों का ताना बाना।
मैं भूल गई कलियों सा वह ललित, लोल मुसकाना,
अन्तर में स्वर्ग बसाना दुनिया में खेल मचाना।

बातों में हिल-मिल रहना, आँखों में घुल-मिल जाना,
मैं क्या जानूँ क्या होता है उलझ-सुलझ रह जाना !
अधिकार किसी का मुझ पर, मैं स्वयम् किसी की रानी,
उड़ गया, धुआँ था वह तो ! बातें हो गईं पुरानी !

अपनी सुन्दर साड़ी मैं अब कभी नहीं रँगती हूँ,
अब हरसिंगार के फूलों का चाव नहीं रखती हूँ।
सिन्दूर, रङ्ग—सब चीजें, अब भी तो वह लाता है,
पर भला बिसाती से औ' मुझसे अब क्या नाता है !

अब नहीं माँग में मेरे वैसी ख़ूबी आती है,
बालों से खीझी कङ्घी अब उलझ-उलझ जाती है।
शीशे में अब क्या देखूँ ! क्या मुझको दिखलाना है !
सज कर यों स्वयम् कहो अब मुझको क्या सुख पाना है !

अब गर्वभरी ख़ुश करने की विधि न सोच सकती हूँ,
अब चीजें नई बना कर हँस-हँस न दिखा सकती हूँ।
अब रूमालों में मन से मैं कैसे फूल निकालूँ ?
कैसे सब चीजों को मैं रुचि से अब हाय सँभालूँ ?

उन गुलदस्तों में फूलों के गुच्छ न अब खिलते हैं,
मेरे खाली मन से वे कितने मिलते-जुलते हैं !
अब नहीं प्रतीक्षा में मैं आँखें खोले रहती हूँ,
पर हाय कसकता है दिल, उनको न लगा सकती हूँ।

मुझमें न किसी को वैसे कुछ दोष और दिखलाता,
पर रङ्ग साँवला मेरा मन को न हाय है भाता।
अब लोग ऊब कर मुझसे बस दूर-दूर रहते हैं,
भूले तो घर में आए, फिर छुड़ा जान चलते हैं।

"हाँ", "नहीं" सु-लघु शब्दों में अब तो जवाब है मिलता,
अब तो बाहर ही दिल का हँस-हँस गुलाब है खिलता।
पक गया हृदय है मेरा, किसको पर हाय दिखाऊँ !
मैं भारतीय नारी हूँ, किस बल पर टेर लगाऊँ !!
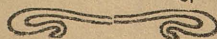
यह चित्र अजमेर के सुप्रसिद्ध रईस तथा कॉङ्ग्रेसमैन पं० गौरीशङ्कर भार्गव के सुपुत्र श्री० रमेशचन्द्र भार्गव तथा जयपुर-निवासी श्रीमती सुशीलादेवी का है, जिनका विवाह-सम्बन्ध हाल ही में
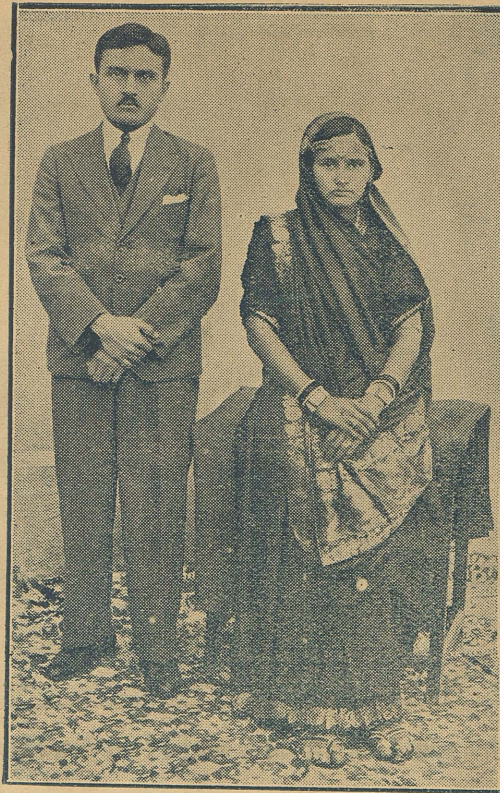
सम्पन्न हुआ है। कट्टर-पन्थियों की तरफ़ से घोर विरोध होने पर भी विवाह में परदा नहीं किया गया तथा और भी कितनी ही प्राचीन, पर अनावश्यक रूढ़ियों को त्याग दिया गया। यह अपने ढङ्ग का पहला विवाह है।

कुमारी शीरीं डी० बहरमजी—आप बम्बई की एक पारसी महिला हैं, पैरिस से 'स्वीडिश' और चिकित्सा-सम्बन्धी मालिश की विद्या सीख कर आई हैं।

श्रीमती एल० एल० हसन रज़ा—आप पहली महिला हैं, जो यू० पी० गवर्नमेण्ट द्वारा उन्नाव डिस्ट्रिक्ट-बोर्ड की सदस्या नियुक्त हुई हैं। साथ ही आप उन थोड़ी शिक्षिता मुसलमान-महिलाओं में से हैं, जिन्होंने स्त्रियों की स्वतन्त्रता का बीड़ा उठाया है।

श्री० शिवराज जी चूड़ीवाला—आप वर्धा (सी० पी०) के रहने वाले और प्रसिद्ध जाति-सुधारक हैं। आपके विचार राष्ट्रीय हैं और देशोपकारी कार्यों में सदैव प्रमुख भाग लिया करते हैं।

प्रयाग-विद्यापीठ की परीक्षोत्तीर्ण छात्राएँ, जो इस वर्ष के उपाधि वितरणोत्सव के समय उपस्थित थीं।

प्रयाग महिला-सेवा-सदन के वार्षिकोत्सव के अवसर पर विद्यापीठ की छात्राओं का गुजराती (गर्बी) नृत्य।

प्रयाग-महिला सेवा-सदन का हस्त-कौशल-विभाग। बड़ी उम्र की स्त्रियाँ बुनाई का काम सीख रही हैं।

महिला-सेवा-सदन का सङ्गीत-विभाग

श्री० रामनारायण जी 'यादवेन्दु', बी० ए०

आप आगरे के एक उदीयमान हिन्दी साहित्य-सेवी हैं। आपकी 'कहानी-कला' शीर्षक लेखमाला धारावाहिक रूप से 'चाँद' में छप रही है।
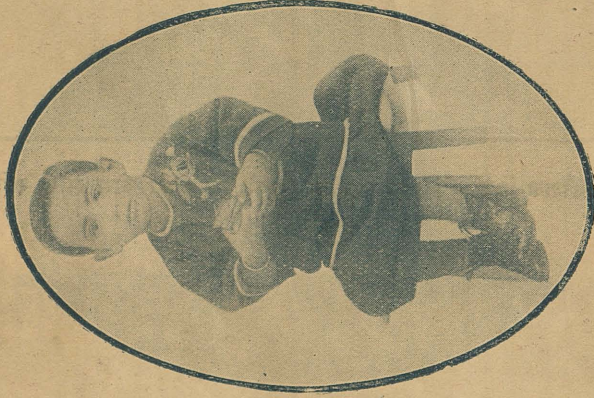
आयुष्मती कान्तादेवी

यह २३ महीने की बालिका रुक्कर (सिन्ध) निवासी श्री० युधिष्ठिरलाल स्टेनोग्राफ़र की कन्या है और हारमोनियम, सितार तथा वंशी की ध्वनि और ताल के अनुसार सुन्दर नृत्य कर सकती है। जिस समय यह १४ महीने की थी, तभी से इसने अपनी अद्भुत कला का प्रदर्शन आरम्भ कर दिया था।

श्रीमती चन्दोबीबी

आप देहली के एक धनाढ्य तथा सम्पन्न वैश्य-परिवार की देशभक्त तथा शिक्षा-प्रेमी महिला हैं।
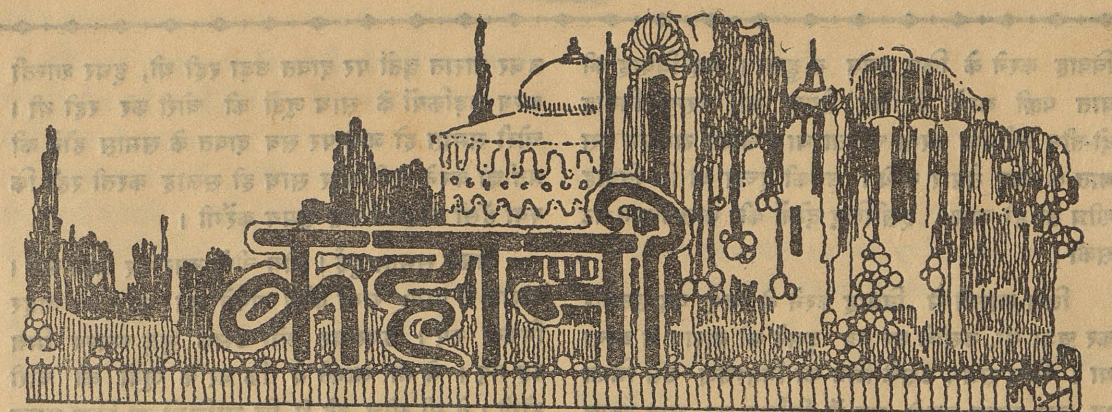
आहुतियाँ

[डॉक्टर धनीराम प्रेम]

क मित्र के विवाह में हरबिलास मेरठ पहुँचे थे। परन्तु यह पता नहीं था कि वहीं उनका विवाह भी पक्का हो जायगा। जिनके यहाँ बारात गई थी, उनका नाम रामधन था। रामधन की पुत्री का विवाह था। अपने परिवार के अतिरिक्त रामधन के घर में उनकी भानजी शान्ती भी रहती थी। शान्ती के माता-पिता का देहान्त बाल्यकाल ही में हो चुका था। अपने माता-पिता की वह एकमात्र सन्तान थी। पिता की सम्पत्ति दो-ढाई लाख की थी और वह सब कुछ शान्ती के ही नाम कर गए थे। लाला रामधन शान्ती को अपने घर ले आए थे। जो कोई आता, उसीसे वे कहते कि शान्ती के पालन-पोषण के लिए ही उसे वह अपने घर ले आए हैं। जब-तब शान्ती के ऊपर भी वह इस अहसान को जता देते थे। परन्तु वास्तव में शान्ती को वह अपने घर में उसके रुपए के लिए लाए थे। उसकी सम्पत्ति से मास में काफ़ी आय होती थी, और वह सब जाती थी लाला रामधन के घर में। तिस पर भी वह सदा यही शिकायत किया करते थे कि जब से शान्ती के माता-पिता का देहान्त हुआ और उन्हें उसकी जायदाद का भार सँभालना पड़ा, तब से उन्हें अपने काम-काज के लिए ज़रा भी अवकाश नहीं मिलता। उनसे भी अधिक ताने मारा करती थीं उनकी स्त्री। उनके मारे तो शान्ती को तनिक भी चैन नहीं था। इतना रुपया होते हुए भी शान्ती उस घर में आश्रिता की भाँति पड़ी हुई थी। यह तो कहिए कि लाला रामधन के केवल एक पुत्री ही थी। यदि एक भी पुत्र होता तो शान्ती को किसी न किसी प्रकार अपनी अधिकांश जायदाद से हाथ धोना पड़ता।

हरबिलास साधारण स्थिति का नवयुवक था। उसके घर में भी नाम लेने को कोई नहीं था। मैट्रिक में पढ़ता था। सीधा-सादा स्वभाव था। ये सब गुण देख कर ही लाला हरबिलास ने शान्ती के विवाह के लिए उसे चुना था। उनकी समझ में हरबिलास के साथ विवाह करके शान्ती की सम्पत्ति पर वह पहले की ही भाँति प्रभुत्व जमाए रह सकते थे। वह जानते थे कि हरबिलास के घर में कोई बड़ा-बूढ़ा नहीं था, जो किसी प्रकार का उपद्रव कर सके। वसीयत के अनुसार विवाह के बाद हरबिलास का ही सारी सम्पत्ति पर अधिकार होता और वह भोले हरबिलास को आसानी से चकमा देकर अपना उल्लू सीधा कर सकते थे।

परन्तु बीच में एक अड़चन आ उपस्थित हुई। हरबिलास में आधुनिक भाव भरे थे। वह आर्य-समाज के संसर्ग में रह कर सामाजिक कुरीतियों को दूर करने का विचार कर चुका था। वह तेरह वर्ष की शान्ती के साथ

विवाह करने के लिए उद्यत न हुआ। वह विवाह की बात पक्की करने के लिए तैयार था, परन्तु विवाह दो-तीन वर्ष बाद करना चाहता था। लाला रामधन इस बात के लिए तैयार न थे। उनकी इच्छा थी कि विवाह शीघ्र ही हो जाय। इसीलिए दोनों की बातचीत न पट सकी।

जिस शान्ती से विवाह करने के लिए वह इनकार कर चुका था, उसीके घर वह दूसरे की बारात में आया था। जिस समय उसके मित्र का निमन्त्रण उसे मिला था, उस समय उसके मन में द्विविधा का भाव उत्पन्न हो गया था। क्या वह उस बारात में जाय? वहाँ शान्ती से शायद साक्षात्कार हो जाय, कम से कम उसका सामना होने की तो आशङ्का थी ही। वह इस विवाह के प्रस्ताव के विषय में अवश्य जानती होगी। फिर किस प्रकार वह उसके नेत्रों से अपने नेत्र मिला सकेगा? कहीं शान्ती ने प्रस्ताव की अस्वीकृति का कोई और अर्थ तो नहीं लगा लिया होगा? ऐसा होना सम्भव था। इस प्रकार के प्रस्ताव लड़कियों से छिपे नहीं रहते। इनके विषय में सहेलियों में वार्तालाप होता है, समालोचनाएँ होती हैं, नोक-झोंक चलती हैं। फिर क्या शान्ती इन सब से वञ्चित रही होगी? पता नहीं, उसके मन में हरबिलास के प्रति कैसा भाव हो? इन्हीं सब बातों का विचार करके उसका हृदय बारात में जाने से काँप रहा था। वह अपने मित्र को अप्रसन्न भी नहीं करना चाहता था। इसलिए उसने मित्र को कोई उत्तर न दिया। सोचा कि समय आने पर कोई न कोई बहाना करके पीछा छुड़ा लेगा। परन्तु जिस दिन बारात जाने का समय आया, वह अपने सामान के साथ तैयार होकर उसमें शामिल हो गया। यह अकस्मात हुआ था, उसकी इच्छा के विरुद्ध, उसके बिना जाने; मानो उस समय उसके शरीर के कार्य का सञ्चालन कोई दूसरा कर रहा हो।

२

बारात की पहली दावत थी। उस दिन वर के जूते चुराए जाने का वहाँ नेग था। यह काम करती थीं वर की सालियाँ, कन्या की छोटी बहिनें अथवा पड़ोसियों और सम्बन्धियों की उससे छोटी लड़कियाँ। शान्ती ही घर में छोटी साली थी। उसी को यह कार्य करना पड़ा। उधर बारात जूतों पर दावत उड़ा रही थी, इधर शान्ती अन्य लड़कियों के साथ जूतों की चोरी कर रही थी। चोरी समाप्त हो जाने पर सब दावत के समाप्त होने की प्रतीक्षा करने लगीं और साथ ही सलाह करती रहीं कि क्या हँसी की बातें उस समय करेंगी।

दावत समाप्त हुई। लोग नीचे उतर कर आने लगे। बारात के प्रायः सभी लोग अपने जूते पहन कर बाहर निकल गए। ऊपर वर और उसके कुछ अनन्य मित्र रह गए। वे भी जानते थे कि वर के जूतों की चोरी होगी। वे भी सोच रहे थे कि सालियों को किस प्रकार छकाया जाय।

वे नीचे आए। सालियों ने नीचे से ठहाका मारा। वर महाशय सकुचाते हुए सामने आ गए। शान्ती उस ओर से सामने आई।

"लाओ, दे दो जूते, शान्ती, तङ्ग न करो!"—वर महाशय बोले।

"जूते? यहाँ कैसे जूते? जूते तो आपको बहिन कुछ दिनों बाद देंगी!"—शान्ती ने हँस कर कहा और साथ ही सालियों ने फिर एक ज़ोर का ठहाका लगा दिया।

"जो जुर्माना हो, सो माँग लो?"

वर महाशय इतना कह ही पाए थे कि हरबिलास एक कोने में से बोल उठा—अरे भई, कुछ गड़बड़ मालूम होती है। मेरा जूता भी कहीं नहीं मिलता। कहीं मेरी ही चोरी तो नहीं हुई!

सबने उधर घूम कर देखा। कोने में एक फ़लस्लिपर का जोड़ा रक्खा हुआ था। वर महाशय उसकी ओर देख कर कुछ सोचने लगे, फिर स्लिपर के पास आकर कहने लगे—यह तो मेरा जूता है। मैं मुफ़्त में ही जुर्माना देने जा रहा था।

"तो जुर्माना मुझे देना पड़ेगा?"—हरबिलास ने पूछा।

"मैं क्या जानूँ? यह तो शान्ती जी से पूछो!"—वर महाशय बोले और साथ ही उन्होंने अपने मित्रों की ओर एक आँख भी मार दी।

मित्रों में से एक बोल उठे—भई, सुना नहीं है, कोयले की दलाली में हाथ काले। फँस गए सो फँस गए। अब या तो प्रार्थना करो या जुर्माना दो।

"मैं नहीं जानता था कि वर के से जूते पहनना भी अपराध है। भई, कोई मेरी ओर से प्रार्थना कर दो!"—हरबिलास ने कहा।

"क्या आप स्वयं प्रार्थना नहीं कर सकते?"—शान्ती बोल उठी। उस समय उसके मुख पर कुछ लाली आ गई थी।

हरबिलास ने शान्ती की ओर कुछ देर देखा और फिर धीरे से कहा—मुझे डर लगता है कि शायद प्रार्थना स्वीकार न हो।

"डर क्यों न लगेगा? जो व्यक्ति दूसरों की प्रार्थना को अस्वीकार करता है, उसे स्वयं प्रार्थना करते भी डर मालूम होता है।"

"प्रार्थना अस्वीकार?"—हरबिलास आश्चर्य से उधर देखने लगा।

"क्या कभी तुमने भी किसी के जूते छिपाए थे?" सब मित्र हँस कर पूछने लगे।

"इसका भेद मैं बताऊँगा।"—कह कर वर महाशय शान्ती की ओर चले। शान्ती ने जूते लाकर उधर डाल दिए और वहाँ से एक ओर चल दी।

३

जनवासे में जाकर हरबिलास वर महाशय को एक ओर ले गया।

"तुम क्या भेद बताना चाहते थे?"—उसने पूछा।

"तुम्हें ही? या सबको?"

"अगर मेरे विषय में ही है, तो मज़ाक़ छोड़ कर मुझे चुपचाप बता दो।"

"क्या?"

"वह लड़की कौन थी?"

"शान्ती।"

"शान्ती तो उसका नाम था!"

"और क्या जानना चाहते हो?"

"वह थी कौन?"

"मेरी साली!"

"तुम्हारे श्वसुर की भानजी?"

"हाँ, वही, जिसके विवाह के लिए तुम्हारे पास इतनी प्रार्थनाएँ गई थीं और तुमने सब अस्वीकार कर दी थीं।"

हरबिलास कुछ सोचने लगा।

"क्या सोच रहे हो?"

"कुछ नहीं।"

"क्या अपनी भूल अब मालूम हो रही है? क्या उस पर × × ×"

"नहीं, तुम तो मज़ाक़ करने लगे।"

"मज़ाक़ पहले कर रहा था, हरबिलास, परन्तु अब तुम्हें कुछ गम्भीर बातें सुनाना चाहता हूँ।"

"क्या?"

"तुम शान्ती के साथ विवाह का प्रस्ताव स्वीकार कर लो!"

"क्यों? क्या लाला रामधन फिर चाहते हैं।"

"लाला रामधन ही नहीं, शान्ती भी!"

"शान्ती भी?"

"हाँ! जब से तुमने उसके साथ विवाह करने से इनकार किया है, वह सूखती चली जाती है। अब वह मेरी साली होती है, इसीलिए मैं उसके लिए चिन्तित हो रहा हूँ।"

हरबिलास ने सब कुछ सुना, परन्तु कुछ कहा नहीं।

"जीवन से कुछ निराश सी वह हो गई है और उसे सारा भविष्य अन्धकारमय प्रतीत होता है। वह अधिक पढ़ी-लिखी नहीं है, न अधिक सुन्दर है। उसके पास एक भावों से भरा हुआ हृदय है और व्यथित आह है। उसे एक सहृदय व्यक्ति की आवश्यकता है। पता नहीं उसे वह मिल सकेगा या नहीं।"

"क्यों नहीं मिल सकेगा? उसके लिए योग्य वरों की क्या कमी?"

"तुम मेरे श्वसुर को नहीं जानते, इसीलिए ऐसा कह रहे हो। योग्य वरों के घर वाले उसे अपनाने को तैयार नहीं हैं। वह मातृ-पितृविहीना है। उसका कोई भाई भी नहीं है। रुपया है, परन्तु सभी जानते हैं कि रुपया उसके मामा के पञ्जे में है और इस विषय में इनका नाम अच्छा नहीं। अब वह शान्ती का विवाह शीघ्र ही किसी बनिए के साथ करने की बात सोच रहे हैं।"

हरबिलास उसी समय नहीं, सारे दिन और सारी रात इसी समस्या पर विचार करता रहा।

४

वर महाशय के प्रयत्न से हरबिलास और शान्ती को कुछ वार्तालाप करने का अवसर प्राप्त हुआ। वर

महाशय शान्ती से कुछ देर बातें करके एक ओर टँगा हुआ चित्र देखने लगे। हरबिलास और शान्ती दोनों कुछ देर चुप बैठे रहे। दोनों ही के लिए ऐसे अवसर पर मौनव्रत का भङ्ग करना कठिन प्रतीत हो रहा था।

"शान्ती !"—धीरे से, सँभल-सँभल कर हरबिलास ने कहा।

"जी !"—धीरे से, सँभल-सँभल कर शान्ती बोली।

"तुम समझती हो कि मैंने तुम पर अत्याचार किया है ?"—वह चुप रही।

"तुम नाराज़ हो। शायद तुम मुझे अपराधी समझती हो। शायद तुम समझती हो कि मैंने विवाह इसलिए अस्वीकार कर दिया कि तुमको अनुपयुक्त समझता था !"

"आपका इसमें क्या दोष है। सभी सुन्दरी, सुशिक्षिता, सभ्य लड़कियों से विवाह करना चाहते हैं। ऐसे बहुत कम हैं, जो एक दीना, हीना, अशिक्षिता, असभ्य लड़की को अपनाकर सभ्य और सुशिक्षिता बनावें !"

हरबिलास कुछ देर चुप बैठा रहा। फिर बोला—तुम ठीक कह रही हो, परन्तु मेरे मार्ग में और बाधाएँ थीं, नहीं तो × × ×

शान्ती बीच ही में बात काट कर बोली—ठीक है, मैं सब जानती हूँ। आप मेरे लिए क्यों चिन्ता करते हैं। मैं किस योग्य हूँ ? आपके सिद्धान्तों, आपके विचारों और आपकी महत्वाकांक्षाओं के सामने मेरा क्या मूल्य है ? मैं तो संसार में भार-रूप उत्पन्न हुई थी और इसी प्रकार कुछ दिन जीवित रह कर चली जाऊँगी !

शान्ती जिस समय यह सब कुछ कह चुकी, उस समय उसके मुख पर उद्विग्नता तथा नैराश्य के भाव साफ़ दिखाई पड़ रहे थे। उसके हृदय में वेदना ऊधम मचा रही थी और उसका प्रतिबिम्ब उसकी आँखों में पड़ कर आँसुओं के रूप में बाहर निकल रहा था। हरबिलास कुछ देर तक शान्ती की बातों पर विचार करने लगा। बार-बार उसे उसका वह वाक्य याद आने लगा—'ऐसे बहुत कम हैं, जो एक दीना, हीना, अशिक्षिता, असभ्य लड़की को अपनाकर सभ्य और सुशिक्षिता बनावें।' यह वाक्य उसके हृदय पर रह-रह कर आघात करने लगा। एक ओर उसका सिद्धान्त था और दूसरी ओर एक आहत-हृदया बालिका का मूक करुण-क्रन्दन ? क्या उसके सिद्धान्तों के सामने उस क्रन्दन का कोई मूल्य नहीं था ? वह बार-बार अपने अन्तःकरण से इस प्रश्न को पूछने लगा। अन्त में उसे यही उत्तर मिला कि 'हाँ, उसका बड़ा मूल्य था !' उसने निश्चय कर लिया कि वह शान्ती को अपनाकर उसके जीवन की इच्छा पूरी करेगा, उसे सभ्य और सुशिक्षिता तथा सुखी बनाएगा। अपने जीवन में एक व्यक्ति को सुखी बनाना अधिक अच्छा है अथवा अनेक सिद्धान्तों के गीत गाते रहना ? जीवन में शायद ही वह किसी का कुछ भला कर सके। फिर यदि वह एक व्यक्ति के जीवन को कुछ सन्तोषप्रद बना सके, तो उसकी क्या हानि है। अपना निश्चय बना कर उसने प्रसन्न होकर शान्ती की ओर देखा। वह वहाँ से उठ कर आँगन की ओर जा रही थी।

"शान्ती !"—हरबिलास ने पुकारा !

शान्ती ने मुड़ कर देखा।

"इधर आओ !"—हरबिलास ने इशारे से कहा।

शान्ती पास आगई।

"एक ख़ुशख़बरी सुनाता हूँ !"

"क्या ?"

"मैं तुम्हारे मामा का प्रस्ताव स्वीकार कर लूँगा।"

शान्ती के मुख पर हर्ष की एक क्षीण रेखा दौड़ गई। परन्तु हरबिलास ने उसे नहीं देखा; क्योंकि शान्ती ने अपना शिर नीचा कर लिया था।

"तुम प्रसन्न हो ?"—हरबिलास ने पूछा !

शान्ती बिना कुछ उत्तर दिए शीघ्रता से वहाँ से खिसक गई। पीछे से एक कोने से वर महाशय ने शिर निकाल कर और हँस कर पूछा—और तुम प्रसन्न हो ?

हरबिलास ने शिर घुमा कर उधर देखा और हँस कर कहा—मैं तो प्रसन्न तब हूँगा, जब इस बार तुम्हारे जूतों की चोरी हो जाय !

५

हरबिलास और शान्ती की सगाई पक्की हो गई। हरबिलास को शान्ती के लिए लाला रामधन की यह बात स्वीकार करनी पड़ी कि विवाह शीघ्र से शीघ्र होगा। अगले सहालग तीन मास बाद आने वाले थे, अतः लाला रामधन ने लग्न और विवाह की शुभ तिथियाँ पुरोहित से पूछ कर बाद में लिख देने को कहा। हरबिलास को इन सब बातों की चिन्ता न थी, उसे तो इस विचार

भर से सन्तोष था कि वह एक व्यक्ति को कुछ भी सुखी बनाने में समर्थ हो सका।

बारात विदा हो रही थी। उधर हरबिलास भी विवाह तक के लिए शान्ती से विदा ले रहा था। इन तीन दिनों में ही दोनों में अपूर्व आत्मीयता और अपनापन उत्पन्न हो गया था। हरबिलास चलने को खड़ा था। शान्ती उदास भाव से पास ही खड़ी थी।

"अब उदास क्यों हो शान्ती ?"—हरबिलास ने पूछा।

"आप जाते हैं।"

"यह कुछ दिनों की बात है। समय फिर हमें एकत्र करेगा। अब तुम अपने शरीर की चिन्ता करो, इसे हृष्ट-पुष्ट बनाओ, क्योंकि अब इस पर दूसरे का अधिकार होने वाला है।"

"मैं उद्योग करूँगी।"

"मैं एक बात पूछना चाहता हूँ, शान्ती !"

"क्या ?"

"पूछते हुए डर मालूम होता है।"

"क्यों ?"

"योंही। बात बहुत मूर्खता की है, परन्तु मन में उठी है, तो पूछने को जी चाह रहा है।"

"फिर पूछिए न !"

"तुम्हारे हृदय में किसी प्रकार की आशङ्का तो नहीं है ?"

"आशङ्का कैसी ?"

"यही हमारे-तुम्हारे विषय की।"

"अब आशङ्का कैसी ?"

"होनी तो न चाहिए। परन्तु मेरे हृदय में कुछ डर मालूम होता है। रहने दो, यह मेरा भ्रम होगा !"

"आज ऐसी बातें न सोचिए, आज हम बिछुड़ रहे हैं। कहीं ये विचार दृढ़ होकर आपको मुझसे विमुख न कर दें।"

"एक और बात बता दो, शान्ती !"

"पूछिए !"

"यदि × × ×"

"हाँ × × ×"

"यदि × × × तुम्हारे मामा पीछे से हमारे विवाह के विरुद्ध हो जायँ तो × × ×"

"परन्तु आप ऐसी बातें क्यों सोच रहे हैं ? मामा आपको पसन्द करते हैं, फिर वह ऐसा क्यों करेंगे ?"

"मान लो !"

"वह कुछ भी करें, परन्तु मैं तो वही रहूँगी। मेरा हृदय तो वही रहेगा। कुछ भी हो, मेरे लिए तो आप ही एक पुरुष हैं। अब इस हृदय में किसी दूसरे का प्रवेश नहीं हो सकता !"

"मैं यही सुनना चाहता था, शान्ती, मैं अब हर्ष से इन तीन महीनों को व्यतीत कर सकूँगा !"

६

स्कूल की छुट्टियाँ थीं, अतः हरबिलास ने एक मास राजपुर में व्यतीत करने का विचार किया। राजपुर मसूरी के पर्वतों के चरणों पर बसा हुआ एक छोटा सा ग्राम है। वहाँ पर एक आश्रम की स्थापना भी हो चुकी है, जहाँ छुट्टियों में विद्यार्थी निवास करके कई प्रकार का लाभ उठा सकते हैं। जिस दिन हरबिलास राजपुर को जा रहा था, उसी दिन उसे लाला रामधन का एक पत्र मिला, जिसमें उन्होंने लग्न और विवाह की तिथियों की सूचना दी थी।

राजपुर में एक मास व्यतीत करके हरबिलास जब घर लौटा, तो उसे तीन पत्र मिले, जो शान्ती के मालूम होते थे और जो कई दिनों के आए हुए पड़े थे। उसने काँपते हाथों से सबसे पहला पत्र खोला। उसमें लिखा था—

"आपको यह पढ़ कर दुःख होगा कि मामा जी की पुत्री का दो दिन हुए अचानक देहान्त हो गया। यहाँ बड़ा दुःख मनाया जा रहा है, क्योंकि अभी कुछ दिनों पूर्व ही विवाह हुआ था। मामा जी उनकी ससुराल गए हैं।

"आप जब से यहाँ से गए हैं, तब से किसी प्रकार का भी समाचार नहीं दिया। क्या इतने रुष्ट हो गए ? या भूल ही गए ? आप तो कह रहे थे कि मामा जी कहीं विवाह के विरुद्ध न हो जायँ और अब स्वयं आप ही विरुद्ध हुए जान पड़ते हैं। यदि मुझे लिखने में सङ्कोच मालूम होता था, तो मामा जी को ही लिख देते। मैं यही जान कर सन्तोष कर लेती कि यहाँ आपका पत्र तो आया है। आप सच न मानेंगे, परन्तु

यहाँ मेरा जी अब बहुत घबराता है। दिन-रात आपकी याद आया करती है। कृपा कर दो-चार लाइनें लिख कर तो भेज ही दीजिए। क्या आप छुट्टियाँ घर पर ही मना रहे हैं, या कहीं बाहर जाने का विचार है?"

हरबिलास ने दूसरा पत्र खोल कर पढ़ा :—

"आपको मेरा एक पत्र मिला होगा! आपका कोई उत्तर अभी तक यहाँ नहीं आया। आजकल मैं बड़ी उद्विग्न रहती हूँ और मन में प्रति क्षण किसी अमङ्गल की आशङ्का बनी रहती है। उसका कारण है, जिसकी ओर मैं आपका ध्यान आकृष्ट कर रही हूँ।"

"मैं आपको लिख ही चुकी हूँ कि मामा जी की पुत्री का देहान्त कुछ समय पहले हो चुका है। आप मामा जी की नीयत को तो जानते हैं। वह किसी न किसी प्रकार मेरे माल पर अपना आधिपत्य या अपने सगे-सम्बन्धियों का आधिपत्य जमाना चाहते हैं और अपनी आकांक्षा के लिए मेरा बलिदान चढ़ाना चाहते हैं। उनकी और मामी की इच्छा है कि मेरा विवाह अपने जमाई के साथ ही कर दें और आपको कानों-कान ख़बर भी न होने दें, ताकि आप कोई उपद्रव न उठा दें। यह इच्छा ही नहीं, उनका निश्चय है। आप जानते हैं कि मन में मैं ईश्वर के सामने आपको वरण कर चुकी हूँ। एक हिन्दू बालिका एक साथ दो पति नहीं रख सकती। अतः मैं कभी भी ऐसा प्रस्ताव स्वीकार न करूँगी। यदि आपकी इच्छा हो तो यहाँ आकर बातचीत कर जाइए। इसी बहाने आपके दर्शन भी शायद हो जायँ।"

दूसरा पत्र पढ़ कर हरबिलास सन्न पड़ गया। उसे कभी इस बात की आशा नहीं थी। वह सीधे स्वभाव का व्यक्ति था और वह कभी नहीं विश्वास कर सकता था कि लोग उसके साथ इस प्रकार का छल-कपट करेंगे। भाग्य का कैसा खेल था? जिस लड़की के विवाह का प्रस्ताव वह कई बार अस्वीकार कर चुका था, उसीके साथ विवाह करना अन्त में उसने स्वीकार किया और फिर उसी विवाह के मार्ग में रोड़े। उसका मुख क्रोध से तमतमा उठा। उसने काँपते हाथों से तीसरा पत्र खोला। वह दूसरे पत्र के एक सप्ताह बाद लिखा गया था और हरबिलास के लौटने के एक दिन पूर्व ही वहाँ पहुँचा था। उसमें लिखा था :—

"मालूम होता है कि आप मामा से नाराज़ होकर मुझे त्यागने का निश्चय कर चुके हैं, नहीं तो ऐसी चुप्पी साधते? न कोई पत्र, न कोई समाचार। कहीं इन लोगों ने आपके ऊपर भी तो कुछ नहीं कर दिया।

"यदि आपको मेरे पत्र मिले हैं, तो आपको यहाँ की परिस्थिति का कुछ ज्ञान तो हो ही गया। अब दशा सीमा के बाहर पहुँच चुकी है। इन लोगों ने वहाँ के विवाह का निश्चय कर लिया है। कुछ दिनों में इनके समधी यहाँ मुझे देखने आएँगे और सम्बन्ध पक्का हो जायगा। मैंने जब यह सब-कुछ सुना तो इसका विरोध किया। उनसे मैंने कह दिया कि विवाह मैं दो ही से कर सकती हूँ, या तो आपसे या फिर मृत्यु से। यदि उन्होंने मेरा विवाह अन्यत्र करना चाहा तो मैं आत्म-हत्या कर डालूँगी। इस पर मुझे उन्होंने ऐसे त्रास दिए हैं कि लिखते नहीं बनता। मुझे गालियाँ दीं, कुलटा, दुश्चरित्रा कहा। खाना बन्द कर दिया। यहाँ तक कि मेरे शरीर पर कई प्रकार से आघात भी किया। आप जानते हैं कि आपके अतिरिक्त मेरा इस संसार में और कोई नहीं है। जो कुछ हैं सो आप हैं। इस लोक के सर्वस्व भी और परलोक के सर्वस्व भी। आपकी याद में और आपका नाम लेकर ही मैं ये सारे अत्याचार हँस कर सहन कर रही हूँ। परन्तु अब सहन करने को भी कितना समय है! यदि आप शीघ्र यहाँ न आए और कुछ न किया, तो आपकी शान्ती आपका नाम होठों पर लेकर इस संसार से कूच कर देगी।"

पत्रों को पढ़ कर हरबिलास बच्चों की भाँति बिलख-बिलख कर रोता रहा। शान्ती को उसके लिए इतने कष्ट मिल रहे हैं और वह पहाड़ों की हवा खा रहा था। उसकी जान पर बन रही है और वह चुपचाप बैठा है। उसने कपड़े भी नहीं उतारे थे, हाथ-पैर भी न धोए थे, भोजन करना तो अलग। बिना कुछ किए, उसी प्रकार वह मेरठ की ओर चल दिया।

७

लाला रामधन के यहाँ हरबिलास पहुँचा, तो उसका ऐसा स्वागत हुआ, मानो वह कोई अछूत था या अपराधी था। उसे घर में जाने की आज्ञा नहीं थी। वह शान्ती से न मिल सकता था, न उसे देख ही सकता था। उसके पास किसी प्रकार का समाचार भेजना तो

और भी कठिन था। इस कठिनता से हरबिलास के हृदय का बुरा हाल था। वह शान्ती को न कोई आश्वासन दे सकता था, न उसके हृदय की कोई बात ही जान सकता था और न उसे भविष्य में कुछ करने की सलाह ही दे सकता था। फिर भी वह क्रोध को चुपचाप पी गया। क्योंकि वह यह नहीं चाहता था कि किसी प्रकार शान्ती का अनिष्ट हो या उसके नाम पर किसी प्रकार की आँच आवे। उसने शान्तिपूर्वक लाला रामधन से वार्तालाप करना शुरू किया। जब वह विवाह के विषय पर आया, तो लाला रामधन ने बड़ा आश्चर्य प्रगट करते हुए कहा—विवाह? विवाह किसका?

"मेरा और शान्ती का!"

"आपका और शान्ती का? मुझे तो इसके बारे में कुछ भी ख़बर नहीं है।"

"ख़बर नहीं है? विवाह की बात आपने मुझसे नहीं की थी?"

"मैं क्यों करता! शान्ती का विवाह तो मेरे दामाद के साथ होगा। जब घर में ही लड़का मौजूद है, तो मैं बाहर क्यों जाऊँ?"

"और वह पत्र जो आपने लिखा था?"

"कौन सा पत्र?"

"जिसमें आपने विवाह की तिथियाँ लिखी थीं?"

"उसमें क्या मेरे दस्तख़त थे? वह मेरे मुन्शी ने लिख दिया होगा।"

"मुझे नहीं मालूम था कि आप इतने कमीने, इतने बेईमान, इतने झूठे निकलेंगे। मैं समझता था कि आप बिरादरी के पञ्च हैं, शहर के समाज के नेता हैं, बड़े-बूढ़ों के अगुआ हैं, इसलिए आपकी बात पत्थर की लकीर होगी। मुझे नहीं मालूम था कि आप जैसे व्यक्ति कोरे ढोंगी, पाखण्डी, रँगे स्यार होते हैं!"

हरबिलास गर्मी में यह सब कुछ कह गया। लाला रामधन ने कुछ देर के लिए गर्दन नीची कर ली और हरबिलास की बातों का कोई उत्तर न दिया।

"आपको मालूम है,"—हरबिलास फिर बोला—"कि आपकी इस करतूत से शान्ती की जान पर आ बनेगी!"

"शान्ती की जान पर क्यों आ बनेगी? उसे विवाह करना है, कहाँ और कैसे, इससे उसे कुछ मतलब नहीं!"

"कुछ मतलब नहीं? आप भूल करते हैं, लाला रामधन! शान्ती इस विवाह को कभी स्वीकार नहीं कर सकेगी!"

"आपको कैसे मालूम है?"

"मुझे सब कुछ मालूम है और मेरे पास इसके लिए प्रमाण मौजूद है।"

"कुछ भी हो। हम उसे मनवा लेंगे!"

"क्या आपको किसी के जीवन का कुछ भी ख़याल नहीं? क्या अपने स्वार्थ में आप इतने अन्धे हो सकते हैं। एक बालिका के जीवन, उसके हृदय, उसके विचारों का ख़ून आप इतनी निर्दयता से कर सकते हैं?"

"इन बातों में कुछ भी नहीं धरा! शान्ती के भविष्य का मैं मालिक हूँ, न कि आप!"

"परन्तु आपको इसका मूल्य चुकाना पड़ेगा। आप देख लीजिएगा!"

"अदालत में जायँगे आप?"

"जो कुछ मुझसे हो सकेगा, मैं करूँगा!"—यह कह कर हरबिलास वहाँ से उठ कर तेज़ी से चल दिया। उसे जितने दिन मेरठ से लौटे हुए थे, उतने दिनों में वह पागल की भाँति इधर-उधर की सोचता रहा। क्या वह शान्ती के पत्रों को पुलिस और मैजिस्ट्रेट के सामने रख कर उनकी सहायता ले। इससे रामधन की ख़बर ली जायगी, परन्तु शान्ती की बदनामी होने का भी डर है। क्या वह जज के यहाँ हर्जाने का दावा कर दे? परन्तु इन बातों के करने पर कहीं शान्ती उसी से नाराज़ न हो जाय। क्या वह इस विषय में बिरादरी की सहायता ले? परन्तु जिन पञ्चों से न्याय की आशा की जा सकती है, वे ही अन्याययुक्त कार्य किया करते हैं और सदा उन्हीं का पक्ष लेते हैं, जिनकी तूती बिरादरी में बोलती है।

वह इन्हीं विचारों में पड़ा हुआ था कि उसे शान्ती का एक पत्र मिला। रोते-रोते उसने पत्र खोला, क्योंकि उसे किसी न किसी भय की आशङ्का होने लगी थी। पत्र में लिखा था:—

"जीवन-धन,

शायद यह पत्र अन्तिम हो, इसीलिए आपको 'जीवन-धन' कह कर सम्बोधित करने की अपनी साध पूरी कर रही हूँ! पता नहीं, यह पत्र आपके पास पहुँचेगा भी या नहीं; क्योंकि मेरे ऊपर आजकल कड़ी

निगाह रक्खी जाती है और पत्र भेजना क्या, लिखने का भी अवसर नहीं मिलता। यह पत्र कई रातों में छिपा-छिपा कर लिख सकूँगी।

"मैंने सुना भर था कि आप यहाँ कुछ देर के लिए आए थे और मामा में और आप में कुछ कहा-सुनी हुई थी। उसके बाद आपका कोई समाचार नहीं मिला। सुना था कि आप उसी समय मेरठ से चले गए। इससे मुझे अनुमान होता है कि आप मामा के अपमान से खिन्न होकर मुझे छोड़ देने का विचार कर चुके हैं। यह स्वाभाविक भी है। हाय, मुझ अभागिनी के पीछे आपका इतना अपमान हुआ, इतना कष्ट मिला। अगर मेरा अनुमान ठीक है तो यह अच्छा ही है। मैं तो किसी प्रकार इस जीवन से छुटकारा प्राप्त कर लूँगी। परन्तु आपके सामने सारा भविष्य पड़ा है। परमात्मा करे, आपको कोई अच्छी सङ्गिनी मिले। मैं तो आपकी कुछ भी सेवा न कर सकी। आशा है, वह सेवा करने का सौभाग्य पाएगी। जिस वृक्ष को मैंने लगाया था, उसको वह सींचेगी और बड़ा करेगी। मेरी साध तो मन की मन में ही रह गई। हाय भगवान, यह शरीर भी चला, यह प्राण भी चले, परन्तु मुझे अपने आराध्य देव के चरणों का अन्तिम दर्शन भी न हो सका।

"मैं अब अपमान और कष्ट सहते-सहते ऊब गई हूँ। जब तक आपकी ओर से आशा थी, तब तक इनके सहन करने में कोई कष्ट नहीं होता था। अब जब आप जीवन में से निकल गए, तो फिर यह जीवन स्थिर रहने योग्य कहाँ रहा? अब मैंने विचार कर लिया है कि चार दिन बाद जब मेरी सगाई का दिन आएगा, उसी दिन इस सांसारिक बन्धन से मुक्त होकर स्वर्ग में पहुँच जाऊँगी। ईश्वर मुझे बल दे?

"मेरे सर्वस्व, मेरी याद न करना। अच्छी तरह रहना। समाज का अग्नि-कुण्ड आहुतियों का भूखा है, मैं उसके लिए आहुति बन रही हूँ।"

❀ ❀ ❀

जिस समय हरविलास मेरठ पहुँचा, उस समय शान्ती की अर्थी तैयार हो रही थी। उसने एक दृष्टि शान्ती के मुख की ओर डाली और रोकर बोला—शान्ती, समाज के अग्नि-कुण्ड में तुमने तो आहुति डाल दी, अब मेरी भी प्रतीक्षा करना! समाज के अग्नि-कुण्ड में मेरी भी आहुति पड़ेगी।

और सचमुच अग्नि-कुण्ड की धधकती ज्वाला ने दूसरी आहुति भी ले ली।

卐 卐 卐

वसन्त-समीर !

[श्री० कृष्णलाल विशारद, 'हंस']

हे वसन्त के सुखद समीर !
किसको ढूँढ़ रहे जल, थल, नभ में उन्मत्त अधीर ?

तरु-पल्लव, कलिका-चितवन में;
सुरभित वन, कानन, उपवन में;
लीला ललित कलित सरिता के, मधुमय मञ्जुल तीर?

निर्झर के मादक कलरव से;
कोकिल के कल पञ्चम स्वर से;
किसके जीवन में भरते हो, नवयौवन की पीर?

ऊषा के आरक्त अधर पर;
स्वर्गिक हास-विलास अमर कर;
किसको रिझा रहे? किस पर यह चढ़ा रहे दृग-नीर?

किन मोहक भावों भूले से?
किन आशाओं पर फूले से?
बिछा रहे किसके स्वागत-हित, सखे! हरित तृण-चीर?

छप गई !   प्रकाशित हो गई !!

नवीन दाम्पत्य जीवन में - - -
- - - स्त्रियों की स्वाधीनता

[लेखक—श्री० केशवकुमार ठाकुर]

विषय-सूची

१—स्त्री-जीवन का उत्कर्ष
२—विवाह-प्रणाली
३—समाज में स्त्री-पुरुष का स्थान
४—दाम्पत्य जीवन का नग्न-रूप !
५—स्वास्थ्य-शिक्षा और स्वाधीनता।
६—भारत में स्त्रियों का आन्दोलन
७—भविष्य में स्त्री का समाज में स्थान।
८—स्त्री-जीवन और अपवाद
९—परदा ; स्त्री-जीवन का अपमान।
१०—विवाह-विच्छेद और हिन्दू-जाति।
११—गर्भपात; समाज और क़ानून।
१२—इस्लाम और मुस्लिम स्त्रियाँ
१३—अमेरिका का स्त्री-जीवन
१४—रूस की स्वाधीन स्त्रियाँ
१५—स्त्रियों का कार्यक्षेत्र
१६—स्त्रियों की आर्थिक स्वतन्त्रता
१७—स्त्रियों के अधिकार

जिस वर्तमान युग ने मानव-जीवन में स्वाधीनता की एक उत्कट मनोवृत्ति उत्पन्न कर दी है, उसी ने संसार की स्त्रियों को उनकी गुलामी की प्रथा, कायरता, भीरुता और अनुपयोगिता का नाश करके, समाज में आज ऊँचा स्थान प्रदान किया है। नवीन जीवन में आकर संसार के भिन्न-भिन्न देशों की स्त्रियों ने शिक्षा और स्वास्थ्य में, साहस और पुरुषार्थ में जो उन्नति की है, उसके सम्बन्ध में बड़ी योग्यता के साथ, पुस्तक में प्रकाश डाला गया है। जीवन के एक-एक अङ्ग को लेकर, कब कहाँ और किन देशों में कितना भीषण पतन हो चुका था, इसका वर्णन करने के साथ-साथ बताया गया है कि वहाँ आज स्त्रियों की क्या अवस्था है।

जो स्त्री-स्वाधीनता के प्रेमी हैं, उनको यह पुस्तक अवश्य मँगा कर पढ़ना चाहिए। जो स्त्री-स्वाधीनता के विरोधी हैं, उनको भी इसके द्वारा आँखें खोल कर संसार की ओर देखना चाहिए। विश्व में स्त्रियों का आन्दोलन दिन पर दिन विशाल और व्यापक होता जाता है। ऐसे समय में जो श्रद्धा और उदारता से काम लेंगे, वे समाज में अपने लिए आदरपूर्ण स्थान पैदा करेंगे और जो उपेक्षा करेंगे, वे अपना अस्तित्व भी खो बैठेंगे !! पृष्ठ-संख्या लगभग ३००, सजिल्द पुस्तक का मूल्य २॥) रु० मात्र, स्थायी ग्राहकों से १॥।=)

चाँद प्रेस लिमिटेड, चन्द्रलोक—इलाहाबाद

चौधरी सोप्स
HAUDHRY SOAPS
P.DAYAL.

ओरिएण्टल गवर्नमेण्ट सिक्योरिटी लाइफ़ एश्यूरेन्स कं० लि०

एक भारी बात

मैं जीवन-बीमा क्यों कराऊँ ?

क्योंकि, जीते जी तो थोड़ा ही थोड़ा अपनी कमाई से देना पड़ता, पर मरने पर **एक भारी रक़म** पीछे वालों को मिल जाती है।

धन बचाने का सब से उत्तम उपाय जान-बीमा क्यों है ?

क्योंकि, **बीमा हो जाने पर,** चाहे कितनी ही थोड़ी रक़म देने पर बीमादार मर जाय, पर पीछे वालों को तुरन्त बीमे की पूरी रक़म मिल जाती है।

धन बचाने के और उपाय क्यों नहीं चलते ?

क्योंकि, जितना तुमने जमा किया, मरने पर उतना ही तो तुम्हारे पीछे वालों को मिलेगा ? और उससे भी कम मिलेगा, अगर जमा है कम्पनी के हिस्से में और हिस्सों की दर गिर गई है।

इसीके मुक़ाबले—

जान-बीमा की रक़म बिलकुल बेदाग़ है और दर की घटती-बढ़ती का तो वहाँ सवाल ही नहीं है।

पर जब मैं भला-चङ्गा और पूरा तन्दुरुस्त हूँ तो जल्दी मरने की बात पर क्यों ध्यान दूँ ?

क्योंकि, बिलकुल तन्दुरुस्त और पूरे बलवान एक हज़ार मनुष्यों में जो तीस बरस के हों ९९ तो २० बरस के भीतर मरते हैं, २२८ तो २० बरस में मरते हैं। और ४५२ तो ज़रूर ६० बरस के होने के पहले ही मर जाते हैं। इसी तरह ऐसे ही २० बरस के एक हज़ार पट्ठों में से ६० बरस के होते-होते, आधे से ज़्यादा अर्थात् ५२२ ज़रूर मर जाते हैं।

कौन जाने आप भी ऐसों में ही हों ?

इसलिए यह तो बड़ी ज़रूरी बात है कि जब तक और जैसी जल्दी हो सके, अपने परिवार और पीछे वालों के लिए चलते पौरुष बन्दोबस्त कर लीजिए। ज़िन्दगी का कोई ठिकाना नहीं।

आज अवसर है कल न रहा, तो हाथ मल के पछताना होगा

'ओरिएण्टल बीमा कम्पनी'

सब से अटल, सब से बड़ी, मज़बूत, सबसे बेजोखिम, सबसे मुख्य भारतीय कम्पनी है, भारतीय जान-बीमें का काम ५८ बरस से कर रही है। चौदह करोड़ से अधिक रक़म बीमा पर लोगों को भुगतान कर चुकी है। बारह करोड़ के लगभग उसकी सम्पत्ति है और ढाई करोड़ के लगभग उसकी सालाना आमदनी है।

इस कम्पनी में जीवन-बीमा कराने से बढ़ कर भला और कौन बन्दोबस्त हो सकता है ?

विशेष जानना हो तो कम्पनी के नीचे लिखे हुए किसी दफ़्तर से मालूम कर सकते हैं।

बम्बई	कलकत्ता	कालालम्पूर	नागपुर	सिङ्गापुर	कोलम्बो
	लाहौर	पटना	सुक्कुर	आगरा	ढाका
लखनऊ	पूना	ट्रिचनापली	अहमदाबाद	दिल्ली	मद्रास
रायपूर	त्रिवेन्द्रम	अजमेर	गोहाटी	मण्डाले	रङ्गून
विज़गापट्टम्	इलाहाबाद	जलगाँव	मरकारा	राँची	बरेली
बङ्गलोर	कराची	मोम्बासा	रावलपिण्डी	भोपाल	

भारतीय चित्रकला के सिद्धान्त

पहले-पहल भारतीय चित्रकला का निरूपण काम-सूत्र के रचयिता महामुनि वात्स्यायन ने तीसरी शताब्दि में किया था। चित्रकला को उन्होंने ६ भेदों में विभाजित किया है।

(१) रूपभेद—अर्थात् आकृति और वर्ण-निरूपण।

(२) प्रमाण—अर्थात् क्रम, माप, तौल इत्यादि।

(३) भाव—अर्थात् भावुकता और विकास (Sentiment and Expression)

(४) लावण्य-योजना—अर्थात् बनावट और सौन्दर्य।

(५) सादृश्य—अर्थात् अनुरूपता।

(६) वर्णिका भङ्ग—अर्थात् सामग्री और अन्य वस्तुएँ।

प्राचीन भारत में यद्यपि चित्रकारी की प्रथा अधिक नहीं थी। पर जो कुछ भी थी, उसका चित्रण इसी व्यवस्था के अनुसार किया जाता था। रामायण, महाभारत तथा अन्य पुराणों में चित्रकला का उदाहरण बहुत ही कम मिलता है। उन दिनों अधिकतर तक्षण और मूर्ति-कला अपनी पराकाष्ठा पर पहुँची हुई थीं। भारतीय शिल्पी गृह और भास्कर्य-कला में इतने निपुण थे कि उसकी जितनी भी प्रशंसा की जाय थोड़ी है। महाभारत में मय दानव की बनाई हुई हस्तिनापुर की पाण्डवों की राजसभा का वर्णन आया है। वह सभा इतनी कुशलता से बनाई गई थी कि दुर्योधन को स्थल में जल का और जल में स्थल का भ्रम हो गया। सादी दीवाल में दरवाज़े के भ्रम में उसे दीवाल से टकराना पड़ा। परन्तु चित्रकारी का कोई अधिक वर्णन नहीं आया है। केवल पुराणों में वाणासुर-सुता की सखी चित्रलेखा का ही एक बार ज़िक्र आया है। जिसने अपनी प्रियतमा सखी ऊषा को अनिरुद्ध का चित्र बना कर दिखलाया था।

ईसा की ४-५ शताब्दि पूर्व बनी पाली और संस्कृत पुस्तकों में राजकीय चित्रशालाओं का वर्णन मिलता है। इसी समय से भारतीय नरेशों एवम् धनीमानी स्त्री-पुरुषों के चित्र-रुचि की बात मिलती है। परन्तु इनका कोई अभी तक प्रत्यक्ष उदाहरण नहीं मिलता है कि उनके दरबार में चित्रकार थे। मुग़ल-वंश के राज्य-कालान्तर यह बात पूर्णतया मिलने लगती है कि उनके दरबार में चित्रकार थे, जो सम्राट के लिए चित्र बनाया करते थे।

अभी हाल ही में कुछ साधारण, पूर्व ऐतिहासिक काल की ड्राइङ्ग और चित्र रावगढ़ स्टेट, मध्य-प्रान्त और मिरज़ापुर में मिले हैं। पर उनके बारे में भी अभी विद्वानों का मत एक ओर स्थिर नहीं है। परन्तु जो हो, पत्थर की चट्टानों पर के ये चित्र (Drawings) जो एक प्रकार से रेखा-चित्र हैं, अवश्य बहुकालीन हैं। बस, आर्य-सभ्यता और संस्कृति के गौरव उत्तरी भारत का यही लिखित-प्रमाण (Record) है।

दक्षिण भारत में उस अतीत की अवश्य ही कुछ गौरवपूर्ण और सुन्दर कृतियाँ प्राचीन आर्य चित्रकला की कौशलता और निपुणता प्रदर्शित कर रही हैं। यह हैं निज़ाम राज्य स्थित अजन्ता की गुफाएँ और ग्वालियर राज्यान्तर्गत बाग़ और इलौरा की गुफाएँ। इन गुफाओं में चित्रकारी के साथ ही साथ पत्थर में बेल-बूटे और बड़ी स्वाभाविक मूर्तियाँ हैं। इन सब में अजन्ता की गुफाएँ जगत-प्रसिद्ध हैं। इनकी ख्याति का कारण इनकी प्रचीनता और चित्र-सौन्दर्य है। अजन्ता की चित्रकारी के विषय में भिन्न-भिन्न विद्वानों का भिन्न-भिन्न मत है। यह ईसा की ३ शताब्दि पूर्व से लेकर ५ शताब्दि बाद तक की है। इलौरा और बाग़ की चित्रकारी भी इसी के समकालीन है।

अशोक के शासन-काल में बौद्धधर्म अपनी उन्नति की पराकाष्ठा पर था। प्रबुद्ध सारिपुत्र की कोमल करुण वाणी से पूर्व में करुणा और स्नेह का स्रोत उमड़ पड़ा था। यौवन-मद से रक्त-पिपासित अशोक का जोश कलिङ्ग की रक्तरण-चण्डी ने अपने ताण्डव से शान्त कर दिया। उसने अपनी समस्त शक्ति सुदूरवर्ती देशों में प्रबुद्ध का करुण सन्देश पहुँचाने में लगाई। वैदिक धर्म कुछ समय के लिए लोप-सा होता प्रतीत होने लगा। इसी काल में अजन्ता में पत्थर की चट्टानों को काट कर विरक्त भिक्षुओं के रहने के लिए सङ्घ का निर्माण हुआ। कला और सजावट के लिए आधुनिक यन्त्राविष्कारों से अनभिज्ञ शिल्पी ने भारतीय आदर्श और अपनी हृदय की अनुभूति से ये चित्र अङ्कित किए। वस्तुतः ये चित्र धर्म-प्रचार के लिए अङ्कित किए गए। परन्तु सब चित्र कुछ न कुछ समयान्तर देकर ३,४०० वर्ष के बीच में बने हैं।

इन धार्मिक स्थानों में मूर्तिकार को सर्व-प्रथम स्थान दिया जाता था। महलों और प्रासादों की दीवारें प्रायः मिट्टी और लकड़ी की बनती थीं। अतः ऐसी दशा में अच्छा से अच्छा चित्र भी ३-४ सौ वर्ष में नष्ट हो गया होगा। मन्दिरों और सङ्घों में की पताकाएँ, जिन पर चित्र बनाए जाते थे, और शीघ्रता से नष्ट हो गई होंगी। ऐसी दशा में चित्र-कला का राज्यप्रासादों और सम्राटों के भवनों में अवश्य अधिक प्रचार और उन्नति रही होगी, पर समय की विनाशकारी गति से वे यवनों के आक्रमण के पूर्व ही नष्ट हो गई होंगी।

सम्भवतः इस समय दरबार का शिल्पी ही राज-चित्रकार रहा होगा और वह चारण एवम् राजकवि के सहयोग से चित्र बनाता रहा होगा। धार्मिक मन्दिरों और सङ्घों में उनके चिरस्थायी रहने के लिए अत्यन्त दृढ़ता, कौशल और कारीगरी से काम लिया जाता था। इनके बनाने वाले भी प्रायः उसी सम्प्रदाय के अनुयायी होते थे। वे अपने उपासक तथा इष्ट-देवता के प्रीत्यर्थ इतनी सुन्दर कारीगरी का काम करते थे, जो मनुष्य-मात्र के लिए एक शोभा एवम् गर्व की वस्तु हो सकती थी। इसी तरह अपनी सर्वोत्कृष्ट कारीगरी द्वारा शिल्पी अपने इष्टदेव विश्वकर्मा को प्रसन्न कर अपने उद्देश्य की पूर्ति कर सकता था।

चित्र-कला कुछ काल के उपरान्त तक्षण-कला से समता करने लगी और इसकी एक अलग शाखा हो गई।

—शीतलाप्रसाद तिवारी विशारद;
श्रीशचन्द्र पाण्डेय

❀ ❀ ❀

सम्राट जहाँगीर की न्यायनिष्ठा

दिल्लीश्वरो वा जगदीश्वरो की लोकोक्ति प्रचलित करने वाले सम्राट अकबर के परलोक-गमन के पश्चात् युवराज सलीम का, बादशाह नूरुद्दीन जहाँगीर की उपाधि-सहित अभिषेक हुआ। तत्कालीन राजधानी आगरा में दरबार के सम्राट-दूत ने घोषणा की कि हम लोगों के सम्राट जहाँगीर चक्रवर्ती सम्राट हों। सम्राट ने अपनी प्रजा के हितार्थ और अपना राज्यतिलक चिरस्मरणीय बनाने के लिए घोषणा की—"समस्त राज्य में एक लाख कूप और बावलियाँ बनवाई जायँ और पथिकों के विश्राम के लिए बहुत से पथिकाश्रमों (धर्मशालाओं) का भी निर्माण किया जाय। छः मास के लिए प्रजा हर तरह के राज्य-कर से मुक्त की जाय। दरिद्र और रोगी मनुष्यों की चिकित्सा के लिए सम्राट की तरफ़ से चिकित्सक नियुक्त किए जायँ। शराब की दूकानें आज से बन्द की जाती हैं। छः मास तक दरिद्रों को अन्न-दान दिया जायगा।"

इस घोषणा को सुन कर साम्राज्य के आबाल-वृद्ध-बनिता सभी आनन्द से प्रफुल्लित हो उठे।

सम्राट जहाँगीर प्रतिदिन अपना अधिकांश समय प्रजा का अभियोग सुनने और उस पर न्याययुक्त विचार करने में लगाता था। महल के बाहरी हिस्से में एक सुवर्णमय घण्टा लटका रक्खा था, जिसकी रस्सी खींच कर धनी और दरिद्र बिला रोक-टोक सम्राट के पास अपनी मनोव्यथा पहुँचा सके। रस्सी खींचने पर घण्टा बज उठता था और सम्राट उस मनुष्य को बुला कर स्वयं उसकी नालिश सुनता था। परन्तु दुःख की बात यह थी कि राजमहल के पहरेदारों की यथेष्ट पूजा किए बिना कोई भी रस्सी खींचने न पाता था। परन्तु इतने पर भी दरिद्रों को बड़ी सुविधा थी। दरिद्र की फ़रियाद भी

सम्राट बड़े आग्रह से सुनता था। फ़रियादी का प्रतिपक्षी चाहे कितना ही शक्तिशाली क्यों न हो, यदि सम्राट के न्याय-विचार में वह अपराधी सिद्ध होता था, तो उसे उपयुक्त दण्ड देने में वह ज़रा भी सङ्कोच नहीं करता था।

एक दिन सम्राट दत्तचित्त होकर राज्य-कार्य देख रहा था। इतने में एकाएक स्वर्ण-घण्टा बज उठा। सम्राट ने मन्त्री को आज्ञा दी कि देखो, किसने रस्सी खींची है। उसे मेरे सामने हाज़िर करो।

सम्राट का आदेश सुनते ही मन्त्री बाहर गया और थोड़ी देर में एक वृद्ध और वृद्धा को उसके सामने लाकर उपस्थित किया। वे पति-पत्नी अत्यन्त दीन और दरिद्र, फटे-चिथड़े पहने हुए रोते-काँपते सम्राट के अभय-प्रद सिंहासन के नीचे लेट गए और पृथ्वी चूमते हुए कहा—"जहाँपनाह, ग़रीबनिवाज, हम अभागों पर दया कीजिए। न्याय-विचार के लिए हुज़ूर की सेवा में बहुत दूर से आ रहे हैं।" सम्राट ने कहा—"तुम लोग शान्त होओ, किसी प्रकार का भय मत करो और अपना अभियोग सुनाओ।"

यह अभय-वाणी सुन कर वृद्ध उठा और हाथ जोड़ कर रुँधे गले से बोला—जहाँपनाह दीर्घजीवी हों।

वृद्ध के मुँह से फिर कोई बात न निकली। वह चुपचाप पत्थर की मूर्त्ति की तरह खड़ा रहा। अभियोग सुनाने का उसको साहस न हुआ। वृद्ध किसके विरुद्ध फ़रियाद करने आया है, यह सोच कर वह भय से विह्वल हो उठा। वृद्ध को मौन देख कर एक दरबारी ने कहा—"तुम लोगों का अभियोग क्या है; जल्दी और संक्षेप में कहो।" तो भी वृद्ध के मुँह से कोई बात न निकली। पति की यह दशा देख कर वृद्धा ने काँपते-काँपते कहा—"जहाँपनाह! जिसने हमारे प्राणाधिक पुत्र की हत्या की है, उसका नाम लेने में डर लगता है।"

सम्राट ने कहा—तुम निर्भय होकर कहो। यदि अपराधी मेरा पुत्र ही हो तो भी उसे न्याय के अनुसार दण्ड देने में मैं न हिचकूँगा।

सम्राट के आश्वासन से वृद्धा का भय कुछ दूर हो गया। उसने कहा—जहाँपनाह के पास हम लोग बहुत दूर—मुल्क बङ्गाल के बर्दवान शहर से पैदल ही आ रहे हैं। हम लोग बहुत ही दरिद्र हैं। हम लोगों को रास्ते में उदर-पूर्ति के लिए भिक्षा माँगनी पड़ी है। हमारे शरीर पर जो फटा कपड़ा है, इसके सिवाय दूसरा वस्त्र तक नहीं है।

थोड़ी देर चुप रहने पर वृद्धा ने फिर कहा—जहाँपनाह! दरिद्र होने पर भी हमारा दिन किसी प्रकार से कटा जाता था।

देश पर स्थायी सम्पत्ति के नाते रहने का एक घर है। थोड़ी सी ज़मीन भी है। हम लोगों के बुढ़ौती का सहारा—अन्धे की आँख की तरह और लँगड़े की बैसाखी की तरह—एक शिशु पुत्र था। उसी का मुख देख कर हम जीते थे। उसकी तोतली वाणी सुन कर दरिद्रता के सारे कष्टों को भूल जाते थे। आह! आज भी मेरे कानों में उसकी तोतली वाणी गूँज रही है।

शोकावेग से उसकी आवाज़ बन्द हो गई और आँखों से अविरल गति से अश्रुधारा निकल पड़ी।

वृद्धा की करुण कहानी सुन कर सहृदय सम्राट का हृदय करुणार्द्र हो उठा। वृद्धा आत्म-सम्वरण करके फिर कहने लगी—जहाँपनाह! एक दिन मेरा बच्चा सड़क पर खेल रहा था। उसी समय बङ्गाल के सूबेदार साहब हाथी पर चढ़ कर नगर-भ्रमण के लिए निकले थे और मेरे बच्चे के ऊपर अपना हाथी निकाल ले गए। हाथी ने मेरे नन्हें बच्चे को फूल की तरह मसल दिया। दुःख से अधीर होकर हम दोनों हाथी के पीछे-पीछे बड़ी दूर तक दौड़े। न्याय-विचार के लिए प्रार्थना की। किन्तु उन्होंने हम लोगों की प्रार्थना सुनी तक नहीं। बल्कि उल्टे उनकी मित्र-मण्डली ने हमारा मज़ाक़ उड़ाया और हमें गालियाँ दीं। जहाँपनाह, मैं उस समय आत्म-ज्ञान-रहित हो रही थी। मैंने भी सूबेदार को गालियाँ दीं। इस पर सूबेदार ने क्रुद्ध होकर मेरा घर-द्वार, सामान और ज़मीन आदि जो कुछ था, ज़ब्त करके हम लोगों को नगर छोड़ देने का आदेश दिया। हम लोग राह के भिखारी हो गए! किन्तु वह भी उनसे न देखा गया। रास्ते से हम लोग मार कर भगा दिए गए।

वृद्धा बोलते-बोलते शोक एवं दुःख से मूर्च्छित होकर गिर पड़ी। वृद्ध उसकी मूर्च्छा दूर करने का उपाय करने लगा। यह करुण दृश्य देख कर सम्राट का हृदय भी क्षोभ और दुःख से भर गया। उसने सक्रोध

कहा—"मैं इस अत्याचार का प्रतिकार करूँगा। मन्त्री की ओर देख कर आज्ञा दी कि शीघ्र ही एक आज्ञा-पत्र बङ्गाल के सूबेदार के नाम लिखो और इन लोगों को दस स्वर्ण-मुद्रा दो।" मन्त्री ने तुरन्त ही दस अशर्फ़ियाँ वृद्ध को दीं। वृद्ध पहले अशर्फ़ियाँ लेने में हिचका। किन्तु बादशाह को आज्ञा का उल्लङ्घन होने के डर से ले लिया।

सम्राट के आदेशानुसार मन्त्री लिखने लगे—सूबे बङ्गाल के सूबेदार सैफ़उल्ला ख़ाँ को इसके द्वारा सूचित किया जाता है कि उन्होंने जान-बूझ कर इस वृद्ध और वृद्धा के पुत्र की हत्या की है और इनका सर्वस्व छीन कर इन्हें राह का भिखारी बनाया है। इस अपराध का उपयुक्त दण्ड तो तुम्हें पदच्युत करना था, परन्तु एक बार मैं तुम्हारा अपराध क्षमा करता हूँ। तुम अपने हाथी के महावत को उपयुक्त दण्ड दे दो और इन लोगों की सारी सम्पत्ति लौटा दो। इन लोगों का जो नुक़सान हुआ है, उसकी भी पूर्त्ति कर दो। मेरा यह हुक्म बहुत जल्द ही तामील किया जाय।

आज्ञा-पत्र एक बार फिर सुन कर सम्राट ने अपना हस्ताक्षर और मुहर देकर उसे वृद्धा को दे दिया। आज्ञा-पत्र को सूबेदार को देने के लिए आदेश देकर राह-ख़र्च और सवारी के लिए कुछ रुपए दिला कर उन लोगों को बिदा किया।

वृद्ध और वृद्धा अपनी आशा से अधिक पाकर सम्राट को आशीर्वाद देते हुए बर्दवान लौट गए और आज्ञा-पत्र को सूबेदार के पास भिजवा दिया।

सैफ़उल्ला ख़ाँ यह आज्ञा-पत्र पढ़ते ही क्रोध से लाल हो उठा और उसे फाड़ कर टुकड़े-टुकड़े कर डाला। प्रहरियों को आज्ञा दी कि इन दोनों को क़ैद करके कारागार में डाल दो। जब तक ये अपनी इस गुस्ताख़ी का अर्थात् सम्राट के पास अभियोग ले जाने की शरारत के लिए क्षमा-याचना न करें, तब तक मुक्त न किए जायँ।

कारागार की एक अँधेरी कोठरी में वे दोनों रक्खे गए। तरह-तरह की यातनाएँ नित्य-प्रति उनको दी जाने लगीं। किन्तु वे इतने दृढ़-प्रतिज्ञ थे कि सब अत्याचार सहन करते थे, परन्तु क्षमा-याचना नहीं करते थे। अन्त में सूबेदार ने उन्हें अनाहार रखने की आज्ञा दी। बेचारे कई दिनों तक अनाहार रहे और अन्त में क्षमा माँग ली। क्षमा-याचना करने के बाद वे लोग छोड़ दिए गए।

कारागार से मुक्ति-लाभ करने के बाद वृद्ध और वृद्धा के पास न रहने के लिए घर था, और न कोई दूसरा आश्रय। वृक्ष के नीचे रह कर भी वे एक मुट्ठी अन्न का प्रबन्ध नहीं कर सकते थे। दुर्बल शरीर के कारण रोग ने भी धर दबाया। नगर छोड़ कर दूर एक गाँव में चले गए। ऐसी निराश्रय अवस्था में सदैव रक्षा पहुँचाने वाले अनाथनाथ भगवान ने प्रेरणा कर एक गृहस्थ द्वारा उनकी सेवा आदि का प्रबन्ध करवा दिया। उसकी सेवा से वे आरोग्य हो गए। और एक दिन प्रातःकाल फिर वे लोग आगरा जाने के लिए गाँव से चल पड़े। परन्तु बिदा होते समय अपनी सरल-हृदयता के कारण उन्होंने आगरा जाने का उद्देश्य किसी से कह दिया था।

धीरे-धीरे यह बात सूबेदार तक पहुँच गई। उसने कई घुड़सवारों को उन्हें पकड़ लाने के लिए भेजा। किन्तु वे न मिले।

वृद्ध और वृद्धा बहुत कष्ट-सहन के बाद आगरा पहुँचे। परन्तु सूबेदार के षड्यन्त्र के कारण राजमहल के घण्टे की रस्सी को, जो महल के बाहर लटकती थी, न छू सके। इस समय उनके दुःख और क्षोभ की सीमा न रही। किन्तु उनकी प्रतिज्ञा अटल थी। हृदय में प्रतिहिंसा की ज्वाला धधक रही थी। दोनों ने राजमहल के बाहर एक वृक्ष के नीचे आश्रय लिया और दिन-रात सम्राट के दर्शन की प्रतीक्षा में बिताने लगे। कुछ मिल गया तो खा लिया, नहीं तो निराहार ही सो रहे।

सम्राट कभी-कभी हाथी पर सवार होकर मृगया आदि के लिए अपने दरबारियों के साथ इतनी शीघ्रता से निकल जाता कि वृद्ध दौड़ने पर भी उससे साक्षात्कार न कर पाता। इस प्रकार प्रतीक्षा करते-करते छः मास बीत गए। एक दिन सम्राट यमुना में जल-विहार के लिए बाहर निकले और यमुना किनारे सम्राट एक सुन्दर बजरे में जाने के लिए ज्योंही उद्यत हुए कि लता-कुञ्ज से वृद्ध-दम्पति अचानक निकल कर सम्राट के चरणों पर गिर कर रोने लगे। फिर सँभल कर घुटने टेक कर कहने लगे—संसार के मालिक, शहन्शाह!

न्याय कीजिए। हम न्याय के लिए पुनः श्रीमान की शरण में आए हैं।

सम्राट ने उन्हें पहचाना। वृद्ध की ज़बानी उनका हाल सुन कर उसको दुःख हुआ। उसने आदेश दिया कि सूबेदार बहुत शीघ्र दरबार में हाज़िर होवे।

बङ्गाल के सूबेदार सैफ़उल्ला को सम्राट का परवाना मिला। वह बड़े समारोह के साथ आगरा पहुँचा और अपने आगमन का समाचार दूत द्वारा सम्राट के पास भेजवा दिया।

सम्राट ने आज्ञा दी कि कल प्रातःकाल एक मतवाले हाथी को सजा कर रक्खा जाय और वृद्ध-दम्पति उस पर सवार रहें।

दूसरे दिन प्रातःकाल यमुना पार पहुँच कर सम्राट ने सूबेदार को मज़बूत रस्सी से बाँधने की आज्ञा दी। आज्ञा का तत्क्षण पालन किया गया। सैफ़उल्ला ने अपनी आत्म-रक्षा की चेष्टा व्यर्थ समझ कर कातर दृष्टि से सम्राट की तरफ़ देखा। सम्राट ने वृद्ध-दम्पति की ओर देखने के लिए सङ्केत किया। सूबेदार की समझ में सब बात आ गई। भय के कारण उसके प्राण उड़ से गए। सम्राट की आज्ञा से उस बँधे हुए सूबेदार को सड़क पर लाकर उसके ऊपर मतवाला हाथी चला दिया गया।

सैफ़उल्ला की मृत्यु पर सम्राट क्षुब्ध हृदय से आगरा लौटा। वह उसका स्नेह-भाजन और बाल-बन्धु था। सम्राट ने यथाविधि अपने बाल-बन्धु की अन्त्येष्टि क्रिया की व्यवस्था की। दरबारियों ने दो महीने तक शोक-चिह्न धारण किए। एक दिन सम्राट ने दरबार में कहा—"यद्यपि मैं उससे स्नेह करता था; तथापि राजा तो न्याय-बन्धन से जकड़ा हुआ है; उसके लिए दूसरा उपाय ही नहीं है।"

—भैरवनाथ अग्रवाल 'आनन्द'

❁ ❁ ❁

सोवियट में सङ्गीत

लोगों को भ्रम-सा हो चला है कि साम्यवादी केवल पूँजीवाद को ही नष्ट नहीं करना चाहते, बल्कि वे सभी प्रकार की ललित कलाओं को भी नष्ट कर देना चाहते हैं। पर बात ऐसी नहीं है। साम्यवादी ललित कलाओं के प्रेम में किसी से कम नहीं हैं। हाँ, उन्हें यह विश्वास अवश्य है कि प्रत्येक काल की कला भिन्न-भिन्न होती है और समाज के पुनर्निर्माण के साथ ही नई कलाओं का और प्राचीन कलाओं का नए रूप में जन्म होता है। १९१७ की क्रान्ति के बाद का रूसी सङ्गीत उसके पहले के सङ्गीत से पूर्णतया भिन्न है।

मास्को की स्टेट पब्लिशिङ्ग सोसायटी में सोवियट-सरकार का सङ्गीत के प्रति रुख़ स्पष्ट शब्दों में यों लिखा हुआ है—"हमें सङ्गीत की उन्नति की ओर पूरा ध्यान देना चाहिए और उच्च श्रेणी का सङ्गीत उत्पन्न करना चाहिए। सङ्गीत द्वारा हम जनसाधारण को सफलता-पूर्वक सङ्गठित कर समाज के पुनर्निर्माण में सहायक होंगे।" सङ्गीत के प्रति लोगों की रुचि उत्पन्न करने के लिए सोवियट-सरकार हर प्रकार के प्रयत्न करती है। कारख़ानों, कलेक्टिव्स, लाल सेना, सभी का उपयोग वह लोगों में सङ्गीत के प्रति प्रेम उत्पन्न करने के लिए करती है। सोवियट-सरकार के इन प्रयत्नों का फल यह हो रहा है कि कारख़ानों में काम करने वाले मज़दूर सङ्गीत को अपने जीवन का एक आवश्यक अङ्ग समझने लगे हैं।

कलेक्टिव्स के सञ्चालक सदा ध्यान रखते हैं कि उनके साथ काम करने वालों में से कौन इस योग्य है कि वह सङ्गीत में शिक्षा प्राप्त कर सके। जिन्हें वे इस योग्य समझते हैं, उन्हें सिफ़ारिश करके इक्सपेरिमेण्टल क्लास में भेज देते हैं। वहाँ सफल होने पर उन्हें मास्को के स्कूल ऑफ़ म्यूज़िक में भेजा जाता है, जहाँ वे पूर्ण रूप से सङ्गीत का अध्ययन करते हैं।

इसके पहिले कि कोई गीत सर्वसाधारण के सम्मुख उपस्थित किया जाय, उस पर काफ़ी वाद-विवाद हो जाता है। उस वादविवाद में स्कूल ऑफ़ म्यूज़िक के विद्यार्थी, वहाँ के शिक्षक, सङ्गीत-विशारद, प्रेस-प्रतिनिधि और समालोचक तो हिस्सा लेते ही हैं, साथ ही कारख़ानों और कलेक्टिव्स में काम करने वाले लोग भी अपना मत उनके सामने रखते हैं।

सङ्गीत का आनन्द उठाने वाले लोगों की संख्या बढ़ाने के लिए सोवियट-सरकार कारख़ानों में काम करने वालों की संस्थाओं और कलेक्टिव्स से काम लेती है और बेतार के तार द्वारा घनी बस्तियों से अलग रहने वाले लोगों तक नवयुग के सङ्गीत को पहुँचाती है।

सङ्गीत सम्बन्धी पाठशालाओं में बहुत से लोग शिक्षित किए जा रहे हैं, जो सङ्गीत सम्बन्धी ज्ञान का विस्तार करने के लिए बेतार के तार द्वारा व्याख्यान देंगे। ऐसे व्याख्यान अब भी होते हैं। बेतार के तार द्वारा दूर-दूर तक भेजे जाने वाले इन व्याख्यानों में सङ्गीत की व्याख्या और समालोचना बहुत ही सरल भाषा में की जाती है। कोई वक्ता ऐसे शब्दों का व्यवहार नहीं कर सकता, जिन्हें जनसाधारण समझ न सकें।

सोवियट-सरकार की ओर से सङ्गीत सम्बन्धी पत्र भी निकलते हैं। बेतार के तार द्वारा भेजे जाने वाले व्याख्यानों की भाँति इनकी भाषा भी बहुत सरल होती है। इन पत्रों और पत्रिकाओं का रूस-निवासियों को शिक्षित बनाने में बड़ा हाथ है। सोवियट-सरकार इस बात का बड़ा ध्यान रखती है कि सङ्गीत की शिक्षा पाने वालों की कठिनाइयाँ दूर की जायँ और सङ्गीत-रचयिताओं की रचनाएँ प्रकाशित हो जायँ।

सोवियट-सरकार द्वारा सङ्गीत-शिक्षा के लिए जो स्कूल खोले गए हैं, वे बहुत ही सङ्गठित हैं। सङ्गीत सम्बन्धी शिक्षा का कोर्स बारह साल का होता है। इस कोर्स को वे तीन भागों में विभाजित करते हैं। सङ्गीत की शिक्षा पाने योग्य समझे जाने वाले सात-आठ साल की उम्र के बच्चे 'टेक्निसम' में भर्ती होते हैं, जहाँ उन्हें चार साल रहना होता है। उन्हें सङ्गीत के साथ ही अन्य विषयों की शिक्षा भी दी जाती है। सङ्गीत सम्बन्धी शिक्षा गाने और बजाने दोनों में होती है। इस अवस्था के बच्चों के गाने के लिए नए गीत प्रतिदिन रचे जा रहे हैं। मास्को में चार 'टेक्निसम' हैं। इनमें क्रान्ति के पहले की 'नेसिन कन्सर्वेटरी ऑफ़ म्यूज़िक' मुख्य है।

हाई स्कूल ऑफ़ म्यूज़िक में टेक्निसम में शुरू किए हुए कार्य को पूरा किया जाता है और बालकों को सङ्गीत के भिन्न-भिन्न विभागों में विशेष शिक्षा दी जाती है। इनमें ज़्यादा उमर के उन लोगों को भी शिक्षा दी जाती है, जो 'इक्सपेरीमेण्टल क्लास' में अपने को सङ्गीत-शिक्षा के योग्य सिद्ध करते हैं। शिक्षा के अन्तिम काल में सङ्गीत के भिन्न-भिन्न अङ्गों की आलोचना सिखाई जाती है और गीतों की रचना का अभ्यास कराया जाता है। गीतों के प्रत्येक वाक्य पर वहाँ विचार होता है और 'मार्क्सिज़्म' की कसौटी पर सारा गीत कस लिया जाता है। इन गीतों का समाज पर क्या प्रभाव पड़ेगा, वह प्रभाव अपेक्षित है अथवा नहीं, इन बातों का विचार करना भी इस स्कूल में सिखाया जाता है। सङ्गीत और समाज के सम्बन्ध का 'शेकेडोनाव' नामक समालोचक और सङ्गीतज्ञ ने विशेष अध्ययन किया है और इसी विषय पर एक पुस्तक भी लिखी है।

'टेक्निसम' और हाई स्कूल ऑफ़ म्यूज़िक के अलावा बेतार के तार द्वारा सङ्गीत-सम्बन्धी व्याख्यान देने वालों, कलेक्टिव्ज़ और कारख़ानों में काम करने वालों की संस्थाओं में सङ्गीत-विषयक शिक्षा देने वालों को शिक्षा देने का भी विशेष प्रबन्ध है।

क्रान्ति के बाद के प्रायः सभी गीत 'मार्चिङ्ग साङ्ग' थे, पर अब अन्य प्रकार के गीतों की रचना भी हो रही है। कम्यूनिस्टों के दृष्टिकोण से छोटे-छोटे गीतों का महत्व बड़े गीतों से कम नहीं है। वे तो गीत के समाज पर पड़ने वाले प्रभाव को देखते हैं। गीत बहुधा ऐतिहासिक विषयों पर होते हैं। क्रान्ति-काल और सोवियट-शासन की महत्वपूर्ण बातें ही उनके विषय होते हैं। इन्हीं गीतों में से एक से लेनिन की मृत्यु से सोवियट-निवासियों को होने वाले महान दुःख का पता चलता है। कुछ गीतों में 'कलेक्टिव लेबर' के लाभ का वर्णन बड़े मनोहर शब्दों में किया है। अतः यह समझना भूल है कि कम्यूनिस्ट सङ्गीत का नाश कर रहे हैं। हाँ, यह बात ज़रूर है कि वे पुराने सङ्गीत के स्थान पर नवयुग के सङ्गीत को जन्म दे रहे हैं।

—अर्जुन अरोड़ा

❃ ❃ ❃

विभु की विभूति या अछूत

महान चैतन्य की विराट सृष्टि में यों तो एक परमाणु को भी अचेतन कहने में सङ्कोच होता है, किन्तु तत्वज्ञों ने काल्पनिक रूप से इसके दो विभाग किए हैं—एक जड़ और दूसरा चेतन। मानव-शरीर चेतन-जगत का ही एक अङ्ग है, अतः हमें इसी का यहाँ विवेचन करना है।

ज्ञान, बल, आकांक्षा या तद्रूप प्रयत्न तथा सहानुभूति या सेवा चेतन-सृष्टि के प्रधान अवयव हैं। या यों

कहें कि इन गुणों की समष्टि का ही नाम चेतनता है। वेदवित्पुरुषों ने ज्ञान को बल से श्रेष्ठतर माना है और प्रत्यक्ष में भी यह देखने में आता है कि ज्ञानी के सम्मुख नग्न बल व्यर्थ हो जाता है। आकांक्षा, ज्ञान और बल की अनुचरी है; किन्तु इन तीनों से बलिष्ठ सहानुभूति या सेवा है। यद्यपि इसका स्थान उक्त चतुर्गुणों की श्रेणी में अन्तिम है और जनसाधारण की दृष्टि में यह हेय भी प्रतीत होता है, तथापि इसकी गौरव-गरिमा सर्वोत्कृष्ट है। शुष्क ज्ञान या नग्न पौरुष से लोग घबरा उठते हैं, किन्तु यदि उनमें सहानुभूति की किञ्चित् माधुरी मिल जाय, तो उनके सम्मुख स्वर्गीय विभूतियाँ भी हेय प्रतीत होती हैं। यही नहीं, प्रत्युत एकमात्र सहानुभूति ही बड़े-बड़े ज्ञानियों और बलशालियों की उक्तियों और युक्तियों को सर्पवत् कील देती है।

चेतन सृष्टि चार भागों में विभाजित है—१ उद्भिज, २ स्वेदज, ३ अण्डज और ४ जरायुज। उद्भिज या वनस्पतियों में बल का बाहुल्य तथा शेष तीन गुणों का प्रत्यक्षतया बहुत ही कम या नहीं के बराबर अंश होता है। इसी कारण लोग कभी-कभी वृक्षों को अचेतन सृष्टि में गिनने लगते हैं। किन्तु शेष तीन विभागों में उक्त चतुर्गुण न्यूनाधिक अंश में पाए जाते हैं, जिससे इनकी क्रिया तथा व्यापार (Activities & Movements) पूर्णरूपेण प्रतिलक्षित होते हैं। जरायुज सृष्टि के मुख्य दो भाग हैं ; द्विपद और चतुष्पद, या यों कहें कि मनुष्य तथा पशु। पशुओं और मनुष्यों में उक्त गुण-चतुष्टय विद्यमान होते हैं; किन्तु समानुपात से नहीं, जिससे दोनों के स्वभाव विभिन्न होते हैं। पशुओं में बल की मात्रा अधिक, किन्तु इतर तीन गुणों की अत्यल्प, जिससे एक निर्बल किन्तु ज्ञान, सहानुभूति तथा प्रयत्न से सम्पन्न प्राणी सरलता से उनको अपने अधीन कर लेता है। सहानुभूति का पद यहाँ भी उच्च है। जिन पशुओं में यह विभूति प्रचुरता से होती है, वे बड़े-बड़े ज्ञानियों और धनुर्धारियों को भी अपना स्वरूप बना लेते हैं। महात्मा भरत तथा मृगशावक और राजर्षि दुष्यन्त तथा कण्वाश्रम-विहारी मृग के आख्यान इसके ज्वलन्त उदाहरण हैं।

मनुष्य विश्वनियन्ता की चिन्मयी रचना का सर्वोत्कृष्ट विकास है। अतः उक्त चतुर्गुणों का समावेश भी उसने सम्यक् रूप से तथा योग्यानुपात से किया है। इन्हीं दिव्य गुणों की ज्योतिर्मय विभूति के कारण मनुष्य को पुरुष, ईश्वर आदि परमात्मवाचा विशद विशेषण प्राप्त करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है। भगवान की इस विशिष्ट रचना में उक्त गुण-चतुष्टय का भी भव्य विकास शिर, बाहु, उदर तथा पाद के रूप में क्रम से हुआ। इनमें भी वही तारतम्य तथा नियम हैं, जो चतुर्गुणों में हैं।

जिस प्रकार भुवन-भावन भगवान ने सहानुभूति के पावन पञ्चाचरी महामन्त्र में वह भुवन-विमोहिनी शक्ति दी है; जो विश्व की ऊर्ध्वगामिनी शक्तियों को अधोमुखी कर देती है। जैसे निम्नस्थ भूतल व्योमोड्डीयमान वस्तुओं को अपनी ओर आकृष्ट कर लेता है, ठीक इसी प्रकार जीवात्मा की चिन्मय शक्तियों (शिर, हस्त, उदर, पाद) में अन्तिम तथा निम्नस्थ पदों को भी वही आकर्षण-शक्ति प्राप्त है। इनके भी सम्मुख उर्ध्वस्थ ज्ञान-स्वरूप भूर्भुवः स्वः के प्रतिनिधि शिर को झुकना पड़ता है। सारांश यह कि प्रकृति के विशाल साम्राज्य में निम्न का स्थान बड़ा महत्वशाली है। कदाचित् आर्यतत्वज्ञों ने इसी कारण नम्रता को मानव-जीवन का श्रेष्ठतम आभूषण माना है। समृद्धियों को लाद कर कोई शक्ति उन्नतमुखी नहीं हो सकती। महात्मा भर्तृहरि का निम्नाङ्कित श्लोक इस पर प्रचुर प्रकाश डालता है :—

भवन्ति नम्रास्तरवः फलोद्गमैः—
नवाम्बुभिर्भूरि विलम्बिनो घनाः
अनुद्धताः सत्पुरुषाः समृद्धिभिः
× × ×

अर्थात्—"जिस प्रकार फलों के भार से वृक्षों को और जल के भार से बादलों को झुकना पड़ता है, इसी प्रकार समृद्धियों के भार से सत्पुरुषों का भी मस्तक नत हो जाता है।"

व्यक्ति से जाति तथा जाति से राष्ट्र बना करते हैं ; यह एक स्वयं-सिद्धि है। चेतनता के सारभूत गुण-चतुष्टय जिस प्रकार व्यक्तियों में शिर, हस्त, उदर तथा पाद-रूप में व्यक्त हुए, वही जातियों में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र रूप में चतुर्वर्ण के नाम से प्रख्यात हुए। चतुर्गुणों की समष्टि से चेतनता, चतुरवयवों के योग से व्यक्ति तथा चतुर्वर्णों के समुच्चय से राष्ट्र की सत्ता सिद्ध

होती है। निम्नाङ्कित तालिका चेतन-जगत के विकास का क्रम तथा पारस्परिक सम्बन्ध पर प्रकाश डालती है।
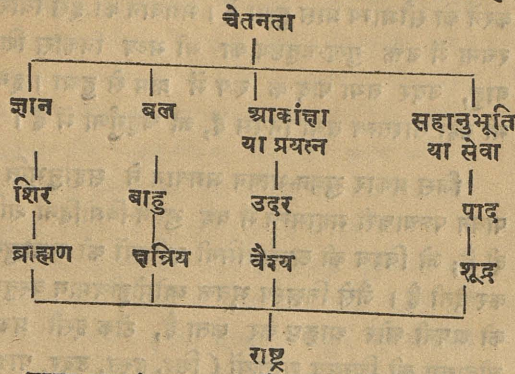
परन्तु हाय! उस समदर्शी की सर्वोत्कृष्ट रचना में आज इतनी विषमता है, जिससे इसका प्रतिदिन ह्रास होता चला जाता है। छूत-अछूत की विषाक्त भावनाओं ने हमको चतुष्पदों की श्रेणी से भी नीचे गिरा रक्खा है। धर्म के विधायकों तथा आचार्यों ने निसर्ग के अनिवार्य नियमों को भी तोड़ने का दुस्साहस किया है। कदाचित् वे यह नहीं समझते कि 'मुई खाल की स्वाँस से सार भस्म हो जाय।' निम्नस्थों की आहें उर्ध्वस्थ नश्वर वस्तुओं ही को नहीं, किन्तु स्वर्ग के अजरामर मन्दार कल्पद्रुम तथा गोलोकवासी विष्णु के पावन आगार को भी भस्म कर सकती हैं। अतः आओ भाई, इस वेद की पावन ऋचा पर अपने-अपने जीवनों को ढालें।

सहनाववतु सहनौभुनक्तु सहवीर्यं करवा वहै।
तेजस्विनावधीतमस्तु मा विद्विषा वहै।

अर्थात्—"परस्पर एक-दूसरे की रक्षा का पावन भाव हो, हमारा एक साथ भोजन हो, हम एक साथ ही बल-वीर्य को बढ़ाएँ, किसी से द्वेष न हो।"

—बाबूलाल प्रेम

❀ ❀ ❀

गुप्तेन्द्रिय-ज्ञान

कुछ महीने हुए मैंने 'चाँद' के सम्पादकीय स्तम्भों में एक लेख लिखा था। उस लेख पर टिप्पणी करते हुए एक महाशय ने हाल ही में 'सुधा' की एक संख्या में कई पृष्ठ रँगे हैं। उस टिप्पणी पर अन्य टिप्पणियों की भाँति मैं कोई विचार प्रगट करना नहीं चाहता था; क्योंकि मैं जानता हूँ कि ऐसी टिप्पणियाँ किन विचारों वाले व्यक्तियों द्वारा लिखी जाती हैं और उनमें कितना ध्यान देने योग्य मसाला होता है। परन्तु यहाँ पर मैं उसका ज़िक्र इसलिए कर रहा हूँ कि इस प्रकार की टिप्पणियाँ लिखने वाले व्यक्ति अपने विचारों के जोश में शिष्टाचार तक को भूल जाते हैं! इन सज्जनों की राय में काम-विज्ञान की शिक्षा को आवश्यक कहने वाले या विवाह तथा वेश्याओं के विषय में कुछ क्रान्तिकारी विचार प्रगट करने वाले परले सिरे के दुराचारी होते हैं। तभी तो 'सुधा' के इन लेखक महोदय ने मेरे और श्री० सन्तराम जी के लिए लिख डाला कि अपने लेखों में हम लोगों ने अपनी काम-वासना और पाशविक प्रवृत्ति का परिचय दिया है। लेखक महाशय ने अपने लेख का शीर्षक 'पतन की ओर' रक्खा है। इससे विदित होता है कि आप यह समझते हैं कि हमारा समाज इस समय बहुत पवित्र, ऊँचा, सदाचारी आदि-आदि है, और जो व्यक्ति क्रान्तिकारी सामाजिक सुधारों के पक्षपाती हैं, वे इसे पतन की ओर ले जा रहे हैं। भारतीय सभ्यता, सामाजिक सदाचार, शानदार अतीत आदि की डींग मारने वालों ने ही हमारे देश को पतन के पथ पर डाल दिया है, इसे सभी निष्पक्ष विचारक मानेंगे। परन्तु इन महाशय को इन बातों की परवाह कहाँ? यह तो प्राचीन सभ्यता की दुहाई देकर सबकी टाँग काटने दौड़ पड़ेंगे। आपने मुझे सलाह दी है कि मैं फिर यूरोप जाकर वहाँ के व्यभिचार आदि की बातों का अध्ययन करूँ। इन महाशय से मैं यही कहूँगा कि मुझे तो इन सब बातों का ख़ासा अनुभव है। हाँ, वहाँ जाने की आवश्यकता तो इन्हीं को है, ताकि यह अपनी पुस्तकों और समाचार-पत्रों के ज्ञान को ज़रा परख सकें। यदि इतना नहीं हो सकता, तो कम से कम अपने ही समाज के घरों में ज़रा आँख खोल कर देखने का कष्ट करें। इन्हें इस बात का ज्ञान हो जायगा कि जिस सामाजिक सदाचार पर इन्हें गर्व है, उसकी हत्या वहाँ किस बुरी तरह से हो रही है। यदि इस काम के लिए इनके पास समय न हो तो 'चाँद' में प्रकाशित 'चिट्ठी-पत्री' शीर्षक स्तम्भ को ही समय-समय पर पढ़ने का कष्ट करें।

आपने उक्त सम्पादकीय लेख के आधार पर मुझे वेश्याओं के हामियों का नेता (या संयुक्त-नेता, क्योंकि

श्री० सन्तराम जी का नाम भी मेरे नाम के साथ लिखा हुआ है।) क़रार दिया है। मुझे इस पर कोई आपत्ति नहीं, परन्तु इन महाशय ने उस लेख की बातों को पूरी तरह समझने की भी चेष्टा नहीं की, अन्यथा वे दिन-दहाड़े भ्रमपूर्ण बातें लिखने का दुस्साहस न करते। उस लेख में मैंने लिखा था :—

"इस विषय में हमें एक अत्यन्त आवश्यक प्रश्न पर विचार करना पड़ता है और वह है वेश्याओं का प्रश्न। समाज के लिए यह प्रश्न जीवन-मरण का प्रश्न है। हमारे शास्त्रों ने और धर्माचार्यों ने यह व्यवस्था दे दी है कि वेश्यागमन करना महापाप है। यहाँ तक तो ठीक है। परन्तु उन्होंने इस बात पर विचार नहीं किया कि वेश्यागमन का कारण क्या है, वह किस प्रकार दूर किया जा सकता है और यदि वह पूर्णतया दूर नहीं किया जा सकता, तो उसके स्थान पर अन्य उपाय क्या हो सकता है। वेश्यागमन के कई कारण हैं, परन्तु उनमें एक मुख्य कारण है समाज के वे बन्धन, जिनके कारण अनेक नवयुवक विवाह से वञ्चित रह जाते हैं। जब समाज, शास्त्र और धर्माचार्य उनके इन जन्मसिद्ध अधिकारों को निरङ्कुशता से कुचल डालते हैं, तो उनको अपनी प्राकृतिक पिपासा के बुझाने के लिए वेश्यागमन के अतिरिक्त और क्या साधन हैं? आधुनिक समाज के लिए वर्तमान परिस्थितियों में, इसलिए, वेश्या एक आवश्यक जीव है।"

इस उद्धरण से पाठक समझ सकते हैं कि मैंने वेश्या को आधुनिक परिस्थितियों में आवश्यक बताया है। लेखक महाशय के विचार में क्या आधुनिक परिस्थितियाँ इस प्रकार नहीं हैं? यदि हाँ, तो वे कौन सा उपाय बताते हैं? शायद वे 'ब्रह्मचर्य' का पाठ पढ़ाना चाहें। परन्तु इनका यह नुस्ख़ा आधुनिक परिस्थितियों के लिए सफल होगा, इसमें मुझे बहुत बड़ा सन्देह है। कामेन्द्रिय सम्बन्धी विषयों से लोग इतनी घृणा करते हैं और यदि इस प्रकार के विषयों पर कोई लेख प्रकाशित हो जाता है, तो उसकी कटु से कटु समालोचना करने बैठ जाते हैं। परन्तु वे यह भूल जाते हैं कि कामेन्द्रिय हमारे शरीर का वैसा ही एक भाग है, जैसा कि हाथ, नासिका, मुख आदि। हमारे मात-पिता या गुरु हमें हाथों के विषय में शिक्षा देते हैं—हाथों से हम क्या काम कर सकते हैं, उन्हें कैसे शुद्ध रक्खा जा सकता है आदि—मुख और नासिका के विषय में बातें बताते हैं। ग्रन्थों में लिखा है और हमें गुरुजनों द्वारा बताया जाता है कि जो भोजन हम खाते हैं, वह आमाशय में जाता है। वहाँ वह कुछ घण्टों तक रहता है, जब तक कि आमाशय की पाचन क्रिया चालू रहती है। पाचन क्रिया को सहायता देने के लिए हमें टहलना चाहिए; या फिर इतने श्वास दाहिनी ओर, इतनी श्वास बाईं ओर और इतने श्वास चित लेट कर लेना चाहिए। हमें यह भी बताया जाता है कि मन्दाग्नि होने पर हमें भोजन छोड़ देना चाहिए, किसी प्रकार के चूर्ण का सेवन करना चाहिए, आदि। हमारे गुरुजनों की समझ में हमारे लिए इन सब बातों का ज्ञान होना आवश्यक है। यदि हम बीमार होते हैं तो हमारे गुरुजन हमें किसी वैद्य के पास ले जाते हैं और मनोयोग से चिकित्सा कराते हैं। ये सब बातें आवश्यक हैं। हवा में जाने से सर्दी लग जायगी, गर्मी में बाहर निकलने से लू लग जायगी आदि बातों की हमारे सम्बन्धियों को चिन्ता है। परन्तु कामेन्द्रियों के विषय में हमें कुछ ज्ञान हो, इसकी उनकी समझ में कोई आवश्यकता नहीं, कोई महत्व नहीं। शरीर के इस अत्यावश्यक भाग का क्या कार्य है, वह कार्य किस प्रकार करना चाहिए, मार्ग में कोई आपत्तियाँ और डर हैं या नहीं, यदि हैं तो उनसे कैसे बचना चाहिए, इन सब बातों की उन्हें कुछ भी चिन्ता नहीं। इन सब बातों को वे संसार में प्रवेश करने वाले नवयुवक, बालक की बुद्धि पर ही छोड़ देते हैं। क्यों? क्योंकि ये सारी बातें अश्लील हैं। इनके ज्ञान से समाज में भ्रष्टाचार फैलता है। इन बातों को फिर पिता पुत्र से और भाई भाई से कैसे कहे? परन्तु यह कितनी बड़ी भूल है उनकी।

कामेन्द्रियों के सम्बन्ध में कुछ जानना प्रकृति के एक परमावश्यक रहस्य का अध्ययन करना है। यूरोप में भी वर्षों पूर्व इन विषयों को गोपनीय समझा जाता था और इन पर विचार प्रगट करने वालों को बुरा-भला कहा जाता था। वैज्ञानिक तक इन बातों के विरुद्ध थे। इसीलिए जर्मनी में शोपेनहर तथा निश्शे जैसे विद्वानों के विचारों पर टीका-टिप्पणी हुई थी। परन्तु अब वैज्ञानिकों का मत बदल गया है। हम संसार में कई गुणों को लेकर उत्पन्न होते हैं, जिन्हें अङ्गरेजी में Instinct

कहते हैं। इनमें से एक उस कामेन्द्रिय (Sex) का दूसरी कामेन्द्रिय की ओर आकर्षित होना भी है। साथ ही २५० वर्ष पूर्व इस बात का भी पता लगा था कि स्त्री और पुरुष के रज और वीर्य में कुछ कीटाणु होते हैं। पुरुष के कीटाणु Spermatozoa कहलाते हैं और स्त्री के Ova कहलाते हैं। प्रत्येक २८ दिन बाद स्त्री रजस्वला होती है और एक कीटाणु बच्चेदानी में आता है। इस आशा से कि वहाँ शायद कोई पुरुष-कीटाणु हो और दोनों मिल कर एक बालक की सृष्टि करें। इसी कारण प्रत्येक स्त्री २८ दिन बाद विशेष रूप से पुरुष की ओर आकर्षित होती है। यह प्राकृतिक है। परन्तु यह किशोरावस्था के समय ही प्रगट होता है। हाँ, इसका जो मनोवैज्ञानिक भाग है, वह बचपन में ही उत्पन्न हो जाता है। यह प्रत्येक व्यक्ति में उसी प्रकार भिन्न होता है, जिस प्रकार व्यक्तियों के शरीर की बनावट, उनकी आदतें आदि।

इसको Sexual Constitution कहते हैं और यह शिक्षा, रोग, शरीर की बनावट आदि से प्रभावित होता है। यह Constitution प्रत्येक व्यक्ति के लिए अलग होता है। इसी कारण हम देखते हैं कि कोई व्यक्ति अधिक कामातुर होता है, कोई कम। इस कामातुरता पर विजय प्राप्त करने के तथा उसे साधारण स्थिति में लाने के उपाय हैं, फिर भी किन्हीं व्यक्तियों में यह एक प्रकार का रोग हो जाता है। इसको दबाने की चेष्टा निष्फल जाती है और अनेक व्यक्तियों में हानिकर भी सिद्ध होती है। अनेक स्त्रियों में हिस्टीरिया (Hysteria) आदि रोगों का यही कारण होता है। कुछ में पागलपन (Sexual Insanity) का आक्रमण भी हो जाता है। इसी के साथ-साथ कुछ व्यक्ति ऐसे भी होते हैं, जो दूसरे कामेन्द्रिय के व्यक्ति की ओर आकर्षित होते ही नहीं, चेष्टा से नहीं, प्रकृति से ही। कुछ उनसे घृणा तक करते हैं। कुछ व्यक्तियों में ये बातें स्थिर रूप से नहीं पाई जातीं। उन्हें इन बातों का दौरा होता है। कभी वे प्रेम में पागल हो जाते हैं, कामाग्नि से दग्ध होने लगते हैं। कभी वे भिन्न कामेन्द्रिय के व्यक्तियों से घृणा करने लगते हैं। इसके लिए इन व्यक्तियों को दोष देना सर्वथा उचित नहीं है। क्योंकि जीव-विज्ञान और रसायन-विज्ञान के नियमों के अनुसार ही उनकी इस प्रकार की प्रकृति का निर्माण होता है। और यह प्रकृति उनके जन्म के साथ ही उत्पन्न होती है।

इस प्राकृतिक आकर्षण के लिए प्रकृति ने नियम बनाए हुए हैं। इस आकर्षण की भित्ति केवल सौन्दर्य अथवा कामाग्नि पर नहीं है। एक व्यक्ति एक स्त्री को चाहता है, उससे प्रेम करता है, उसे देखने के लिए आतुर रहता है। दस दूसरे व्यक्ति हैं, जो उस स्त्री की ओर आँख उठा कर देखना भी पसन्द न करेंगे। वास्तव में बात यह है कि प्रत्येक पुरुष सौ प्रतिशत पुरुष नहीं है। न प्रत्येक स्त्री सौ प्रतिशत स्त्री है। प्रत्येक स्त्री या पुरुष एक स्त्री और एक पुरुष के संयोग से बनते हैं और प्रत्येक में दोनों के ही संस्कार मौजूद रहते हैं। एक पुरुष में सब लक्षण पुरुषत्व के हैं, परन्तु उसके अन्दर कुछ गुण उसकी माता के भी हैं। किन्हीं पुरुषों में ये गुण कम मात्रा में होते हैं, किन्हीं में बड़ी मात्रा में। इसी प्रकार प्रत्येक स्त्री में पुरुष और स्त्री दोनों के ही लक्षण पाए जाते हैं, कम या अधिक। जो पुरुष स्त्री-टाइप के होते हैं, वे पुरुष-टाइप की स्त्रियों को आकर्षित करते हैं; जो पुरुष-टाइप की स्त्रियाँ होती हैं, वे स्त्री-टाइप के पुरुषों को अपनी ओर खींचती हैं।

काम-विज्ञान के एक अन्यतम विद्वान डॉक्टर मागनुस हिर्शफ़ैल्ड इन्हीं बातों को ध्यान में रख कर लिखते हैं—"यदि हम आज से लेकर इतिहास के प्रारम्भ के समय तक का अध्ययन करें, तो हमें पता चलेगा कि प्रत्येक समय के मानव-समाज में कामेन्द्रिय का एक महत्वपूर्ण स्थान रहा है। उसके अस्तित्व और महत्ता से इनकार करने का अर्थ है, स्वयं जीवन के अस्तित्व और महत्ता को स्वीकार न करना। सभ्यता हमें नैतिक नियम बनाने और मानने की आवश्यकता बताती है। परन्तु उनका आधार इधर-उधर की अस्थायी घटनाओं पर न होना चाहिए। न उन्हें प्रकृति के नियमों से ऊपर स्थान ही देना चाहिए। जो नैतिक नियम प्रकृति के नियमों के विरोधी हैं, वे मूल में ही भ्रामक और ग़लत हैं। उनका सच्चा आधार होना चाहिए विज्ञान। नहीं तो आधुनिक समाज के आवश्यक प्रश्न—जैसे विवाह, तलाक़, सन्तानोत्पत्ति, योनि-सम्बन्ध, विशेषकर अविवाहित व्यक्तियों में, सन्तति-निग्रह, वेश्यावृत्ति आदि—

हल न हो सकेंगे। भूत को वर्तमान के सामने रखना और उन दोनों का मुक़ाबला करना ठीक नहीं है।"

इन सब बातों से यह सिद्ध होता है कि कामेन्द्रिय हमारे लिए एक आवश्यक तथा कठिन समस्या है और इसीलिए इसके भेदों का सभी को ज्ञान होना आवश्यक है। शास्त्रों के अनुसार किसी स्त्री की ओर देखना, दो भिन्न लिङ्गीय व्यक्तियों का आपस में हँस कर बातें करना आदि व्यभिचार है, पाप है! परन्तु विज्ञान हमें सिखाता है कि यह प्राकृतिक है। हाँ, इस बात की शिक्षा की आवश्यकता है कि प्रकृति की दी हुई इन भावनाओं पर किस प्रकार नियन्त्रण किया जाय, ताकि समाज के सङ्गठन में उसके सुचारु रूप से चलने में कोई बाधा न पड़े।

आजकल के वैज्ञानिक इस बात पर विचार कर रहे हैं कि बाल्यकाल में बच्चों को गुप्तेन्द्रिय-ज्ञान कराया जाना चाहिए या नहीं। परन्तु यह सभी का मत है कि किशोरावस्था के बाद तो इस प्रकार की शिक्षा प्रत्येक युवक तथा युवती को मिलनी चाहिए। एक अङ्गरेज़ महिला, श्रीमती फ़्रान्सेस आल्डर्स्टन ने इस विषय पर लिखा है—"अन्य समस्याओं के साथ किशोरावस्था में प्रत्येक युवक के सामने कामेन्द्रिय-समस्या भी आती है। मैं समझती हूँ कि ऐसे समय पर हमें उनसे इस विषय पर खुल कर वार्तालाप करना चाहिए।"

इस प्रकार की शिक्षा प्राप्त न करने के कारण युवकों और युवतियों को अनेक प्रकार की बुरी आदतें पड़ जाती हैं, अनेक प्रकार की हानियाँ होती हैं, अनेक व्यक्तियों का गार्हस्थ्य जीवन ही चौपट हो जाता है। मेरे पास अनेक पत्र ऐसे आए हैं, जिनमें नवयुवकों ने अपनी दुःख-कहानियाँ बड़े करुण शब्दों में लिखी हैं। उनमें से एक पत्र की कुछ बातें यहाँ लिखी जाती हैं:—

"××× मेरी आयु १९ वर्ष की है। मेरा विवाह एक अच्छे कुल की लड़की के साथ हुआ है। परन्तु मैं अब उसके अयोग्य हूँ। कुछ दुष्टों ने मुझे यह शिक्षा दी कि हस्त-मैथुन से दिमाग़ की शक्ति बढ़ती है। मैं इस दुष्ट क्रिया का शिकार हो गया। उसके फल-स्वरूप अब मेरी मानवोचित शक्तियाँ नष्टप्राय हो गई हैं। मुझे अपने लिए तो कुछ चिन्ता नहीं होती, परन्तु अपनी स्त्री की ओर देख कर मैं सदा चिन्ताकुल रहता हूँ। उसकी आयु अभी केवल १४ वर्ष की है। वह सधवा होकर भी वैधव्य-यन्त्रणा भोग रही है। परन्तु इस प्रकार वह कब तक चलती रहेगी? मेरी इच्छा है कि उसका विवाह किसी दूसरे युवक के साथ हो जाय। यद्यपि इससे मेरा हृदय भग्न हो जायगा। साथ ही इसके लिए मुझे घर वालों और स्वयं मेरी स्त्री के विरोध का भी डर है।

"मैंने कई युवकों को ऐसी दशा में आत्मघात करते हुए देखा है। परन्तु मैं इसे कायरता समझता हूँ। मैं नहीं जानता कि कोई उपाय मेरे लिए संसार में है भी या नहीं। कोई ऐसा भी नहीं है, जिससे इस विषय में सलाह भी माँग सकूँ। घर वालों से तो इस विषय में वार्तालाप हो ही नहीं सकता। जो मित्र अथवा हमउम्र हैं, वे सब हँसी उड़ाएँगे या फिर कोई नाशकारी सलाह दे देंगे। इसलिए मैं नहीं समझता कि क्या करूँ। नित्य-प्रति मेरा शरीर चिन्ता से घुल रहा है।×××"

इस पत्र से मालूम होता है कि युवकों को काम-विज्ञान की शिक्षा की कितनी आवश्यकता है। अच्छा हो, यदि इस आवश्यकता की पूर्ति उनके द्वारा हो, जो युवकों के शुभचिन्तक हों; न कि बाज़ारू गुण्डों या शरीफ़ बदमाशों द्वारा। ऐसे अनेक युवक हैं, जो अकारण ही अपने को नपुंसक समझ लेते हैं। क्योंकि वे नहीं जानते कि नपुंसकता है क्या चीज़। अज्ञानता के कारण वे सम्भोग ग़लत विधि से करते हैं और असफल होने पर कभी-कभी आत्महत्या तक कर डालते हैं। कामेन्द्रिय क्या है, उसका कार्य क्या है, स्वास्थ्यकर सम्भोग क्या है, हानिकर क्या है, उसके क्या नियम हैं, क्या विधि हैं, आदि बातें बहुत आवश्यक हैं। साथ ही कामेन्द्रिय के छूत के रोग—उपदंश, सूज़ाक आदि के विषय में ज्ञान होना भी आवश्यक है।

ये बातें ऊपर से कितनी ही अश्लील मालूम पड़ती हों, परन्तु हैं आवश्यक तथा महत्वपूर्ण। इनके ज्ञान का विरोध दिखावटी महात्मा और धर्म तथा सदाचार के ठीकेदार करते हैं; परन्तु इस प्रकार के ज्ञान से ही हमारे समाज का कामेन्द्रिय-जीवन सुधर कर आदर्श बनेगा।

—धनीराम प्रेम

रेलवे-शिष्टाचार
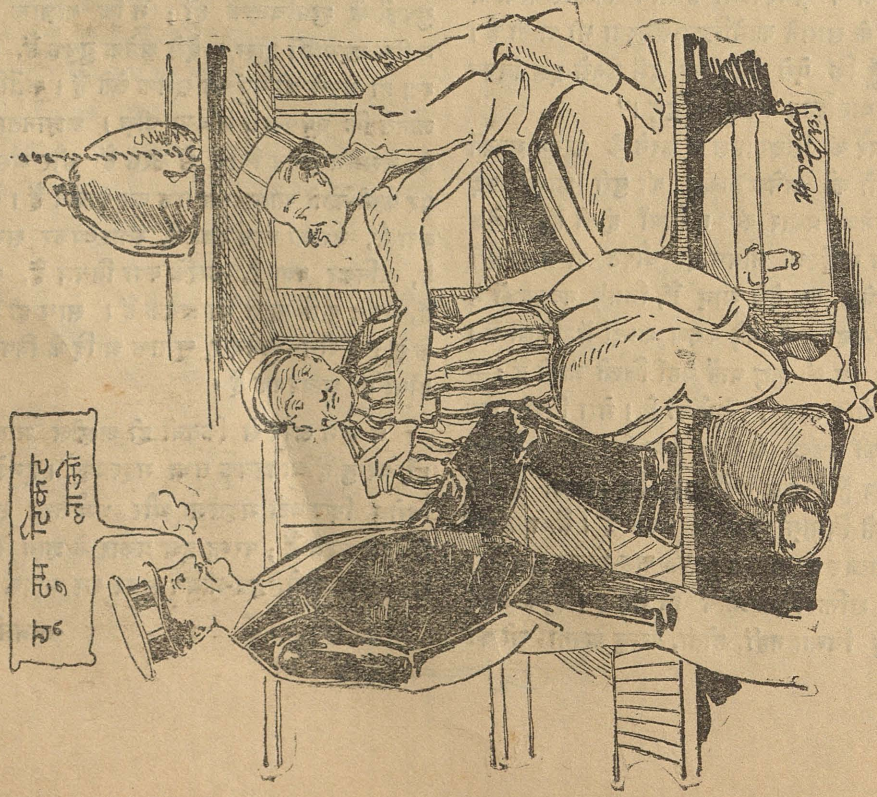
तीसरा दर्जा—टिकिट कलेक्टर (ज़रा खड़ा होने का तरीक़ा तो देखिए)—ओ यू, टिकिट लाओ !
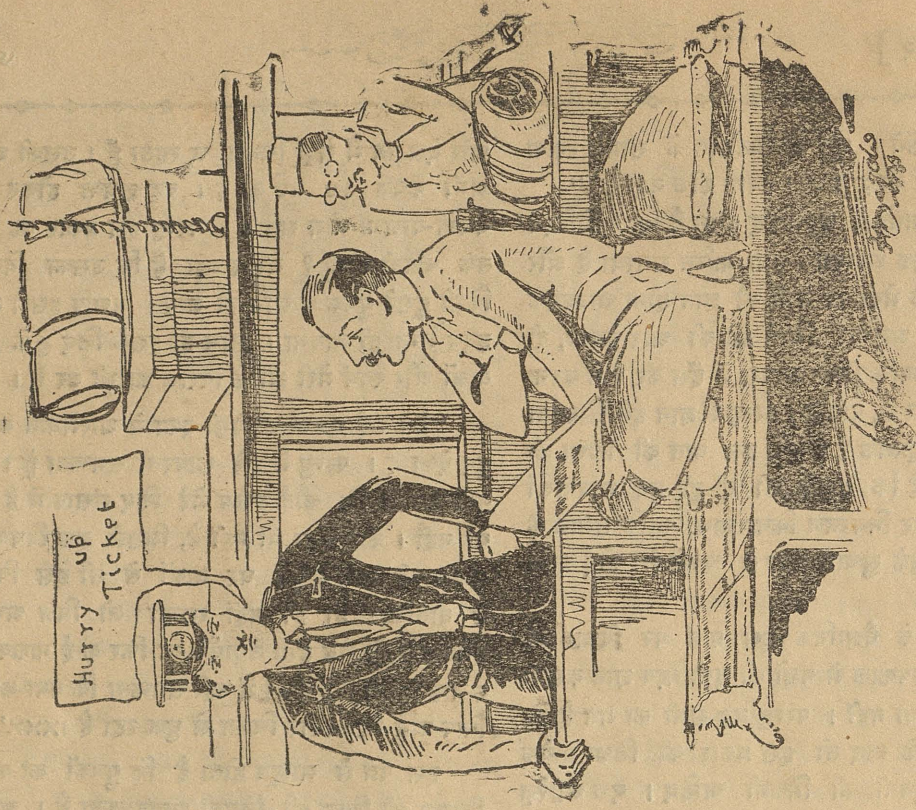
ड्योढ़ा दर्जा—टिकिट कलेक्टर (यहाँ पैर बेञ्च से नीचे ही है)—जल्दी टिकिट दिखाइए !

रेलवे-शिष्टाचार
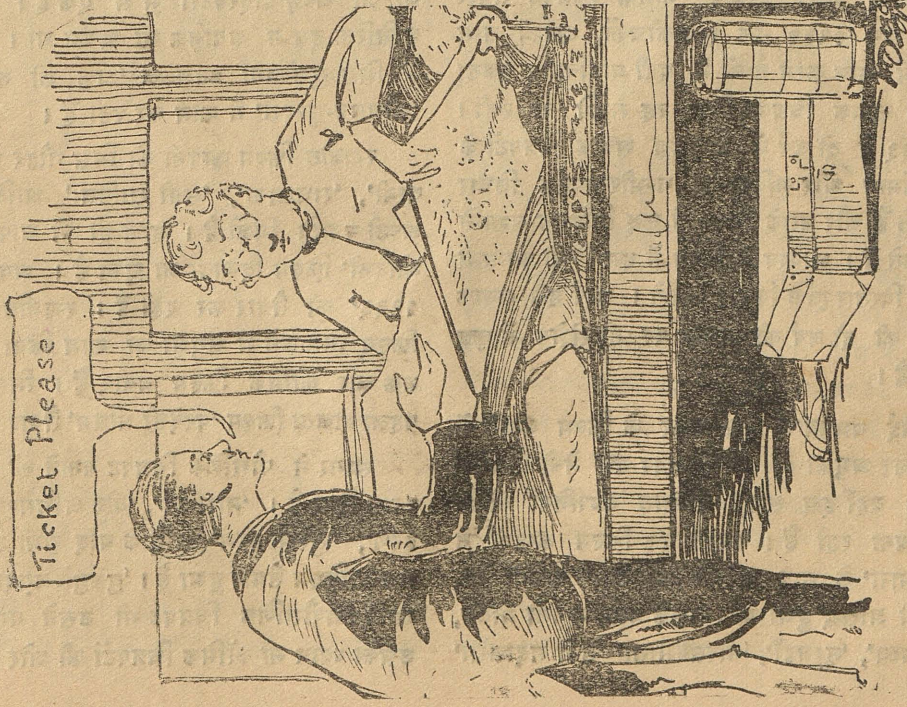
दूसरा दर्जा—टिकिट कलेक्टर (ज़रा झुक कर बहुत नम्रता के साथ)—कृपया टिकिट !
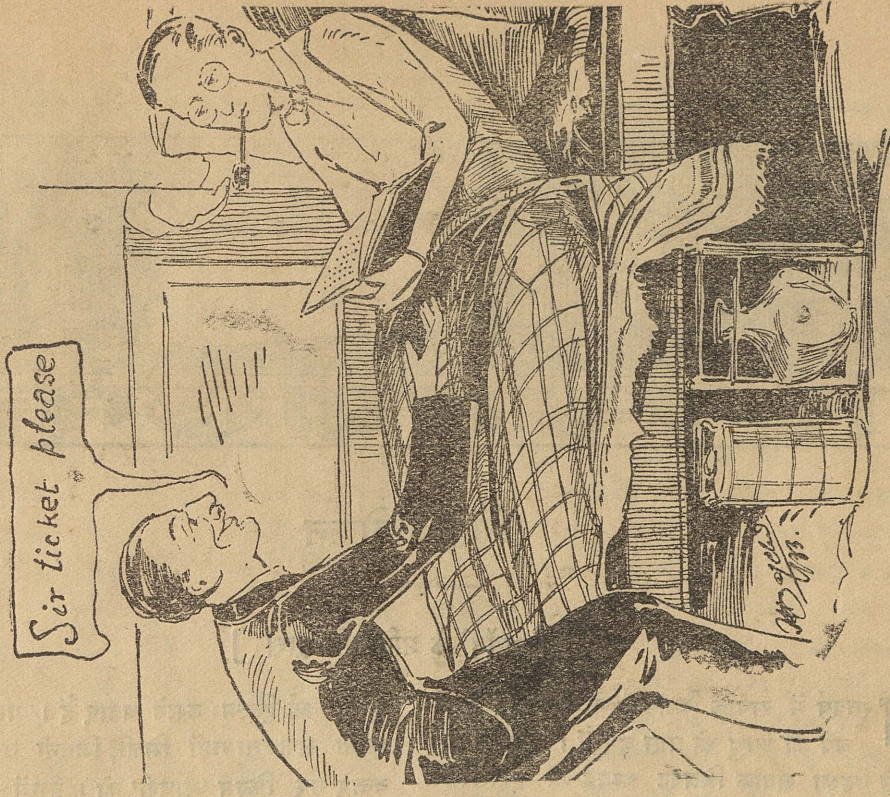
पहला दर्जा—टिकिट कलेक्टर (अहा ! यहाँ तो सारी अकड़ हवा हो गई है)—हुज़ूर, टिकिट !
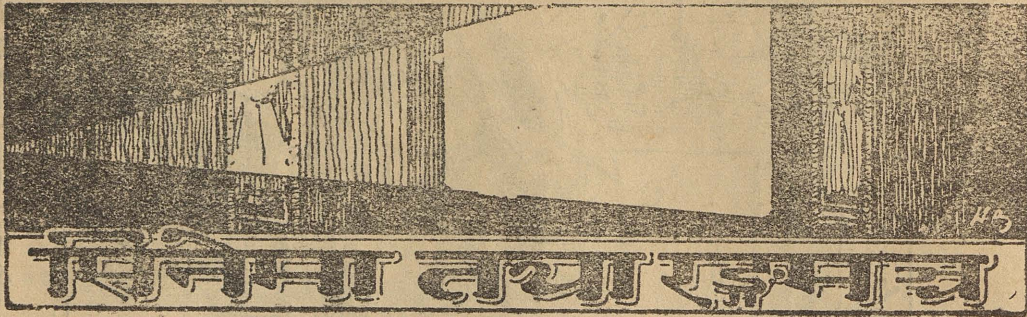
सिंहावलोकन

['चाँद' के प्रतिनिधि द्वारा]

भारतवर्ष में सवाक चित्रपट मार्च १९३३ में दो वर्ष की आयु को प्राप्त हुए हैं। मार्च १९३१ में सबसे पहला सवाक चित्रपट बम्बई की इम्पीरियल फ़िल्म कम्पनी ने 'आलमआरा' नाम से बनाया था। उसके कुछ दिनों बाद ही कलकत्ते के मदन थिएटर्स लिमिटेड ने 'शीरीं फ़रहाद' नामक चित्रपट तैयार किया। सन् १९३२ तक समालोचकों, दर्शकों तथा फ़िल्मों में काम करने वालों में यही वादविवाद चलता रहा कि सवाक चित्रपट स्थिर रह सकेंगे या नहीं। सन् १९३३ में दो वर्ष के बाद हम सवाक चित्रपटों के भूत, वर्तमान और भविष्य पर गम्भीरतापूर्वक विचार कर सकते हैं और उनके विषय में कुछ निश्चित सम्मति बना सकते हैं। भविष्य के विषय में हम किसी आगामी अङ्क में विस्तारपूर्वक विचार करेंगे। यहाँ हमें सवाक चित्रपटों की दो वर्ष की प्रगति पर ही संक्षेप में कुछ लिखना है।

बम्बई वास्तव में इस प्रकार के फ़िल्म बनाने में उसी प्रकार अगुआ है, जिस प्रकार वह बेबोलते दिनों में था। वहाँ इस समय छः-सात कम्पनियाँ बोलते फ़िल्म बना रही हैं। इम्पीरियल फ़िल्म कम्पनी ने 'आलमआरा' के बाद 'दौलत का नशा' बनाया था, जो काफ़ी प्रसिद्ध हुआ था। उसके बाद 'नूरानी मोती', 'नेक अबला', 'नूरजहाँ', 'भारती माता' 'सती मदालसा' आदि कई फ़िल्म उसने बनाए हैं। परन्तु किसी को इतनी सफलता नहीं मिली, जितनी उसके हाल ही में बनाए गए फ़िल्म 'माधुरी' को। इसमें मिस सुलोचना ने पहले-पहल अपनी मधुर वाणी सिनेमा के प्रेमियों को सुनाई थी। इसका डायरेक्शन श्री० चौधरी ने किया था, जो अच्छे डाइरेक्टरों में से एक हैं। इन बातों के अतिरिक्त इसका कथानक भी अच्छा था। इम्पीरियल में मिस सुलोचना आजकल 'डाकू की लड़की' तथा 'सौभाग्य-सुन्दरी' में काम कर रही हैं।

रणजीत फ़िल्म कम्पनी को मिस गौहर के 'देवी देवयानी', 'राधारानी', 'सती सावित्री' आदि फ़िल्मों से अच्छी ख्याति मिली है। हाल ही में आपका 'विश्व-मोहिनी' फ़िल्म दिखाया जा चुका है। अब आप 'मिस १९३३' को तैयार कर रही हैं। रणजीत ने कॉमिक फ़िल्म निकालने में अगुआ का काम किया है और अब तक चार कॉमिक फ़िल्म बनाए हैं। मिस माधुरी का पहला बोलता फ़िल्म 'परदेशी प्रीतम' तैयार हो चुका है।

सागर ने पौराणिक चित्रपट बनाने की ओर अधिक ध्यान दिया है। 'मीराबाई', 'वीर अभिमन्यु', 'सुभद्रा-हरण', 'सुरेखा-हरण' आदि के बाद अभी उसका 'महा-भारत' फ़िल्म तैयार हुआ है। 'बुलबुले बग़दाद', 'ज़रीना' आदि अपौराणिक चित्रपट भी उसने बनाए हैं। अब उसका ध्यान भी कॉमिक चित्रपटों की ओर गया है।

कृष्णा और भारत मूवीटोन एक ही कम्पनी के दो रूप हैं। 'हरिश्चन्द्र', 'ख़ुदादोस्त', 'नवचेतन', 'रौशन-आरा', 'कृष्णावतार' आदि कई फ़िल्म उन्होंने बनाए हैं। अब 'लङ्का-दहन' तथा 'हातिमताई' पर जुटे हुए हैं।

शारदा कम्पनी ने 'शशि पून्हों' और 'रासविलास' दो फ़िल्म बनाए थे, परन्तु रिकॉर्डिङ्ग निकृष्ट होने के कारण वे असफल हुए। मेहता-लुहार के साथ मिल कर अब ये 'श्रीशारदा' का नाम धारण कर चुके हैं और इनका पहला फ़िल्म 'विक्रम-चरित्र' आजकल बम्बई में दिखाया जा रहा है।

सरोज कम्पनी ने 'शकुन्तला', 'गुलबकावली', 'ईद का चाँद', 'राजा भर्तृहरी' फ़िल्म बनाए हैं। अब 'रूप-बसन्त' की तैयारियाँ हो रही हैं।

श्री० मजूमदार ने एक नई कम्पनी 'प्रतिमा फ़ोटो-टोन' की स्थापना की है और उधर श्री० भावनानी ने भी परेल में अपनी एक कम्पनी खोली है, जिसका स्टुडियो तैयार हो चुका है। जयन्त पिक्चर्स वाले भी 'ज़हरे इश्क़' नामक फ़िल्म बनाने की तैयारी में हैं।

कलकत्ते में पहले मदन थिएटर्स की ओर दृष्टि जाती है। अब तक यह कम्पनी लगभग दो दर्जन फ़िल्म बना चुकी है। इनमें से ८ बङ्गाली में हैं। हिन्दी-उर्दू फ़िल्मों में 'भक्त प्रह्लाद', 'शीरीं फ़रहाद', 'लैला-मजनूँ', 'हरिश्चन्द्र', 'बिल्वमङ्गल', 'पति-भक्ति', आदि उल्लेखनीय हैं।

मदन के बाद न्यू थिएटर्स लिमिटेड का नम्बर आता है। अब तक इसके लगभग १० फ़िल्म बन चुके हैं। इनमें से कुछ बङ्गाली में और कुछ हिन्दी में हैं। पिछलों में 'मुहब्बत के आँसू', 'ज़िन्दा लाश', 'सुबह का सितारा' और 'पूरणभगत' हैं।

इनके अतिरिक्त कलकत्ता में दो नई कम्पनियों का जन्म हुआ है। पहली राधा फ़िल्म कम्पनी है, जो पहले भग्नावस्था में थी। अब यह श्री० प्रफुल्ल घोष के डाइ-रेक्शन में 'हातिमताई' बना रही है। दूसरी कम्पनी है 'ईस्ट इण्डिया कम्पनी', जिसने 'एक दिन की बाद-शाहत' तैयार कर ली है और 'औरत का प्यार' आदि कई अन्य फ़िल्मों की तैयारी में है।

महाराष्ट्र में कलापूर्ण तथा विशुद्ध सङ्गीतपूर्ण फ़िल्म बनाने वाली तीन कम्पनियाँ हैं। कोल्हापुर की 'प्रभात' तथा 'छत्रपति' और पूना की 'सरस्वती'। प्रभात का नाम तो सारे भारतवर्ष में प्रसिद्ध है। उन्होंने 'अयोध्या का राजा', 'जलती निशानी' तथा माया-मच्छीन्द्र' जनता को अब तक दिए हैं। अब वे 'सिंहगढ़' बना रहे हैं। सरस्वती के 'श्याम-सुन्दर' ने तो बम्बई में २५ सप्ताह चल कर अपना नाम अमर कर लिया है। अब उनका दूसरा फ़िल्म 'राजकुमार ठकसेन' भी तैयार हो गया है।

अन्य प्रान्तों में कुछ अधिक कार्य नहीं हुआ। पञ्जाब की प्ले आर्ट फ़ोटोटोन ने 'हीररांझा' तथा 'राजा गोपी-चन्द' बनाए थे। तब से कार्य बन्द है। इस प्रकार विचार करने पर पता लगता है कि भारतीय कम्पनियों ने इस क्षेत्र में काफ़ी उन्नति की है। आगे चल कर और भी आशा है। दोष अनेक हैं और उनके विषय में पहले काफ़ी लिखा जा चुका है। इन दोषों के सुधारने की ओर ध्यान भी दिया जा रहा है। इतना अवश्य है कि भारतीय बोलते फ़िल्मों के कारण विदेशी फ़िल्मों के प्रचार में कमी हुई है, जैसा नीचे के अङ्कों से विदित होगा।

नवीन खोज

रूस जिस प्रकार कला और विज्ञान के क्षेत्र में उन्नति कर रहा है, वह आश्चर्यजनक है। वहाँ पर बे-बोलते फ़िल्मों के बनाने में बड़ी उन्नति हुई है। अब समाचार आया है कि वहाँ के दो वैज्ञानिकों ने बिना किसी एक्टर के बोले हुए ही सवाक चित्रपट बनाने का प्रयास किया है और उसमें बहुत-कुछ सफलता प्राप्त की है। पाठकों को यह मालूम होगा कि शब्द का चित्र फ़िल्म पर कैसा दिखाई देता है। उसकी काली और बिना रङ्ग की लाइनें फ़िल्म पर खिंची हुई दिखाई देती हैं। आवरामोव तथा शोलपो नाम के दो रूसी वैज्ञानिकों ने इससे यह निष्कर्ष निकाला कि यदि इसी प्रकार की लाइनें एक काग़ज़ पर खींची जायँ और उनका फ़िल्म लिया जाय, तो उससे भी वार्तालाप तथा सङ्गीत की ध्वनि निकलनी चाहिए। उन्होंने यही सब किया और कुछ सफलता भी प्राप्त की। आन्द्रीवेस्की नाम के एक वैज्ञानिक ने उसी पद्धति के अनुसार एक कार्टून चित्रपट को सवाक तथा ससङ्गीत बनाया है। देखें आगे इसे कितनी सफलता मिलती है।

कुछ जानने योग्य बातें

भारत और बर्मा की फ़िल्म कम्पनियाँ ...	४५
,, ,, के फ़िल्मों के एजेण्ट ...	८४
,, ,, के सिनेमा ...	... ६०६
,, ,, बोलते सिनेमा	... १५५
,, ,, बेबोलते ,,	... ४५१

कम्पनियों में और सिनेमाओं में लगाया गया मूलधन २½ करोड़। सिनेमा-व्यवसाय में लगे हुए व्यक्ति लगभग १३,०००। कच्चा फ़िल्म, जो विदेश से आता है, उस पर कर—

सन् १९१४ में	५ प्रतिशत
१९१६ में	७½ ,,
१९२१ में	११ ,,
१९२२ में	१५ ,,
१९३१ में	२० ,,

अब यह कर ब्रिटिश फ़िल्म के लिए १५ प्रतिशत तथा अन्य देशों से आने वाले फ़िल्म पर २५ प्रतिशत है। इसका विरोध भारत में बड़े ज़ोरों से हो रहा है, क्योंकि इससे सिनेमा-व्यवसाय को काफ़ी धक्का पहुँचने की सम्भावना है। विदेशों के फ़िल्म भारत में प्रतिवर्ष कितने फ़ीट आते हैं :—

सन् १९२७	७५,७५,०८७ फ़ीट
१९२८	१,०३,०२,४३२ ,,
१९२९	१,०७,३७,९७४ ,,
१९३०	१,०४,९१,६८६ ,,
१९३१	८२,५७,२८८ ,,

संसार के सिनेमा :—

	बोलते	बेबोलते	जोड़
यूरोप	११,२१७	१८,०९९	२९,३१६
अमेरिका (स्टेट्स)	१३,५००	६,५००	२०,०००
साउथ अमेरिका	१,३७९	४,०५६	५,४३५
सुदूरपूर्व	१,५२९	३,३९६	४,९२५
केनेडा	७०५	३९५	१,१००
अफ़्रीका	२७१	४१९	६९०
निकट पूर्व	१६	६९	८५
भारत	१५५	४५१	६०६
	२८,७७२	३३,३८५	६२,१५७

कच्चे फ़िल्म पर कर

जैसा ऊपर के अङ्कों में दिखाया गया है, भारत में आने वाले कच्चे फ़िल्म पर बढ़ाए गए कर के विषय में बम्बई की 'मोशन पिक्चर सोसाइटी' की ओर से एक डेपूटेशन दिल्ली गया था और व्यापार-सचिव से मिला था। बड़ी धारा-सभा के सभासदों से मिल कर भी उन्होंने इस विषय में कुछ आन्दोलन किया था। कुछ दिन हुए धारा-सभा की बैठक में एक सदस्य ने कर कम करने का प्रस्ताव पेश किया था। सरकार की ओर से कहा गया कि वे स्वयं इस विषय पर सहानुभूतिपूर्ण विचार कर रहे हैं। इसके बाद वह प्रस्ताव प्रस्तावक महाशय ने वापस ले लिया। देखें, सरकार इस विषय में क्या करती है।

'मूविङ्ग पिक्चर मन्थली' का विशेषाङ्क

भारत में अङ्गरेज़ी भाषा में सिनेमा-विषयक कई पत्र अब प्रकाशित होने लगे हैं। बम्बई का 'मूविङ्ग पिक्चर मन्थली' भी कई वर्ष से सिनेमा-प्रेमियों की सेवा कर रहा है। हाल ही में इसका वार्षिक विशेषाङ्क प्रकाशित हुआ है। मुख-पृष्ठ का दिखाव इतना सुन्दर है कि वह विदेशी पत्रों का सा मालूम होता है। सुलोचना, गौहर तथा माधुरी के तिरङ्गे चित्र तथा अन्य प्रसिद्ध अभिनेताओं, अभिनेत्रियों, डाइरेक्टरों आदि के आर्ट पेपर पर छपे हुए अनेक चित्र हैं। 'मिकी माउस', 'अग्फ़ा फ़िल्म कैसे बनाया जाता है', श्री० टेम्बे का 'सवाक चित्रपट तथा सङ्गीत', 'भारतीय फ़िल्मों की कथाएँ' आदि कई मनोरञ्जक तथा ज्ञानवर्द्धक लेखों का इसमें संग्रह किया गया है। हम इसके सम्पादक श्री० आर० के० रेले, बी० ए०, एल्-एल्० बी० को इस सर्वाङ्ग-सुन्दर विशेषाङ्क के लिए बधाई देते हैं। इसका मूल्य १) है और मौज-मजा प्रेस, गिरगाँव, बम्बई से मिल सकता है।

नन्दी-पूजन

[श्रीमान् राजा श्रीराम साहब,
मौरावाँ (उन्नाव) की कृपा से प्राप्त]

[दि फ़ाइन आर्ट प्रिन्टिङ्ग कॉटेज,
इलाहाबाद
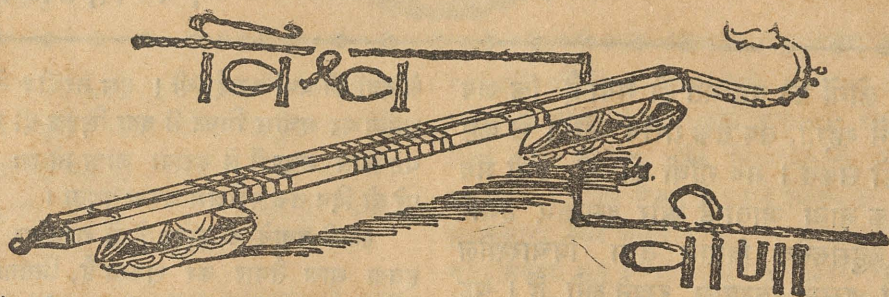
स्त्रियाँ मताधिकार का दावा क्यों करती हैं ?

भारतीय स्त्रियों का राजनीतिक क्षेत्र में प्रवेश करना देश तथा समाज के लिए लाभजनक है अथवा हानिकर—इस प्रश्न पर प्रायः विभिन्न प्रकार की सम्मतियाँ सुनने में आती हैं। हमारे देश में ऐसे उच्च शिक्षा प्राप्त लोगों की भी कमी नहीं है, जो यूरोपियन साहित्य का अध्ययन कर लेने पर भी स्त्रियों को राजनीतिक अधिकार दिए जाने का विरोध करते हैं। ऐसे विचारों के व्यक्तियों के अवलोकनार्थ हम 'स्त्री-धर्म' (मार्च १९३३) में प्रकाशित एक सम्पादकीय टिप्पणी का कुछ अंश नीचे देते हैं :—

पुरुष, स्त्रियाँ तथा बच्चे—इन तीनों से मिल कर ही एक राष्ट्र बनता है, और एक लिङ्ग (Sex) के व्यक्तियों के लिए यह सम्भव नहीं है कि वे दूसरे लिङ्ग वालों के लिए सन्तोषजनक नियम रच सकें। उदाहरणार्थ एक गृहस्थी में पिता-माता और बच्चों का समावेश होता है। अगर इस गृहस्थी का समस्त भार—जैसे धनोपार्जन करना, भोजन बनाना, घर को स्वच्छ रखना, बीमार की सुश्रूषा, बच्चों को शिक्षा देना आदि, पिता और माता में से किसी एक पर ही डाल दिया जाय, तो इसका फल असन्तोषजनक ही होगा। इस प्रकार के लाखों परिवारों के समूह का नाम ही राष्ट्र है, जिसमें लाखों पिता, लाखों माता और लाखों बच्चे होते हैं। जिस प्रकार एक छोटी गृहस्थी के कार्य को सुचारु रूप से चलाने के लिए माता-पिता के सहयोग की आवश्यकता है, उसी प्रकार राष्ट्र-रूपी बड़ी गृहस्थी की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए भी यह आवश्यक है कि उसके माता-पिता सहयोग द्वारा कार्य करें।

× × ×

इस बात से कोई इन्कार नहीं कर सकता कि भारतवर्ष में स्त्रियों का मुख्य कार्यक्षेत्र गृहस्थी ही है। पर व्यवस्थापिका परिषदों में जिन विषयों पर विचार किया जाता है, क्या उनका प्रभाव गृहस्थी पर कुछ कम पड़ता है ? तनिक यह सोचने का कष्ट उठाइए कि व्यवस्थापिका परिषदों में किन विषयों पर वाद-विवाद किया जाता है। बच्चों की शिक्षा—इसका सम्बन्ध स्त्रियों से है; शिशु और प्रसूता की परिचर्या—यह विषय केवल स्त्री-सम्बन्धी है; सफ़ाई—इसका प्रभाव गृहस्थी पर ही पड़ता है; आर्थिक समस्याएँ—स्त्रियाँ सब प्रकार के व्यवसायों तथा कारख़ानों में मज़दूरी करती हैं; बजट—स्त्रियाँ टैक्स अदा करती हैं; युद्ध—स्त्रियाँ ही अपनी सन्तान को युद्ध-क्षेत्र में भेजती हैं और साथ ही उनको युद्ध सम्बन्धी अन्य कार्य भी करना पड़ता है, जिसका अनुभव गत यूरोपीय महायुद्ध के समय भली-भाँति हो चुका है। यही बात अन्य विषयों के लिए भी कही जा सकती है। ऐसी दशा में स्त्रियों को राजनीति से पृथक् रखने तथा यह कह देने से कि 'इन बातों से स्त्रियों का कोई सम्बन्ध नहीं' काम नहीं चल सकता। कौन्सिलों में ऐसा एक भी क़ानून पास नहीं होता, जिसका प्रभाव केवल एक ही लिङ्ग के व्यक्तियों पर पड़ता हो। इसलिए पुरुष और स्त्रियों को सब लोगों के कल्याणार्थ सम्मिलित होकर ही कार्य करना चाहिए।

❁ ❁ ❁

मैशीन का आतङ्क

वर्तमान समय में संसार में जो भयङ्कर बेकारी फैली हुई है, उसका एक कारण मैशीनों की उन्नति होना भी है, और इसलिए

कितने ही लोगों का यह मत हो गया है कि जब तक मैशीनें रहेंगी, तब तक ग़रीब लोगों के कष्ट दूर नहीं हो सकते। म० गाँधी को भी इसी मत का समर्थक माना जाता है और इसलिए हमारे देश के बहुसंख्यक विद्वान तथा विचारशील व्यक्ति भी इसमें विश्वास रखने लगे हैं। यह समस्या यूरोपियन विद्वानों के सम्मुख भी उपस्थित है और उन्होंने इस सम्बन्ध में काफ़ी जाँच-पड़ताल की है। इसी प्रकार के एक विद्वान मि० रॉक थाम्पसन के विचारों का सारांश, जो लन्दन के 'आनसर्स' नामक पत्र में प्रकाशित हुआ है, हम नीचे देते हैं :—

इसमें सन्देह नहीं कि आजकल संसार के प्रत्येक देश में वैज्ञानिकगण मैशीनों को ऐसा सर्वाङ्गपूर्ण बनाने की चेष्टा कर रहे हैं, जिससे वे केवल एक 'लीवर' अथवा बिजली के बटन के दबा देने से ही इतना काम कर सकें, जिसके लिए कुछ वर्ष पूर्व कितने ही कर्मचारियों की आवश्यकता पड़ती थी। मैशीन की इस द्रुतगति के कारण संसार के प्रत्येक भाग में लाखों मज़दूर बेकार होते जाते हैं।

उदाहरणार्थ आज हम सात मनुष्यों द्वारा लोहे की इतनी चद्दरें तैयार कर सकते हैं, जिनके लिए कुछ वर्ष पहले सत्तर मनुष्यों की आवश्यकता होती थी। लङ्काशायर के व्यवसाइयों का कहना है कि यदि उनका व्यापार पूर्ववत् चलने लग जाय तब भी मैशीनों की क्षमता बढ़ जाने के कारण ५ लाख ७० हज़ार मज़दूरों में से ८० हज़ार अवश्य ही बेकार रहेंगे।

आप जिस क्षेत्र में दृष्टि डालिए, यही दृश्य दिखलाई पड़ेगा। 'टॉकी' का आविष्कार होने से सिनेमाओं में काम करने वाले, हज़ारों बजाने वाले बेकार हो गए हैं। बैङ्कों में हिसाब-किताब के लिए ऐसी आश्चर्यजनक मैशीनें लगाई गई हैं, जिनके काम को देख कर भ्रम होता है कि शायद उनमें सोच सकने की शक्ति है। जिस काम को पहले दर्जनों मुनीम और क्लर्क करते थे उसे यह सहज में कर डालती हैं।

हाल में इङ्गलैण्ड के एक किसान ने अपने आलुओं के खेत को कीड़ा लगने से बचाने के लिए हवाई जहाज़ से दवा की वर्षा कराई थी। इस तरकीब से ४० एकड़ ज़मीन पर पचीस मिनट में दवा छिड़क दी गई। अगर यह काम मनुष्यों से कराया जाता तो छः मनुष्यों को पूरे दो दिन तक परिश्रम करना पड़ता।

शीशी बनाने के कारख़ाने में आजकल एक आदमी इतना माल तैयार कर सकता है, जितना पहले ५४ आदमी कर सकते थे। सिगरेट बनाने की नई मैशीन से एक आदमी सौ व्यक्तियों का काम करने लगा है। दो मनुष्य बिजली के 'मैग्नेट' द्वारा इतना कच्चा लोहा गाड़ी से उतार सकते हैं, जिसके लिए पहले १२८ व्यक्तियों की आवश्यकता पड़ती थी। बिजली की दूध दुहने की मैशीन से एक व्यक्ति एक साथ छः गायों को दुह सकता है। अमेरिका में एक मज़दूर मैशीनों की सहायता से ३०० एकड़ खेत की रखवाली कर सकता है, जब कि पहले वह केवल १२ एकड़ की रखवाली कर सकता था।

सुधार का मार्ग

पर इस परिस्थिति के सुधार का उपाय क्या यह है कि इन सब मैशीनों का नाश कर दिया जाय? मेरी समझ में वे लोग नासमझ हैं जो ऐसा विचार करते हैं और वैज्ञानिकों तथा आविष्कारकों को कोसते हैं। वैज्ञानिकों का उद्देश्य तो यही है कि जो काम मनुष्यों को गन्दे जान पड़ते हैं तथा जिनमें अतिरिक्त परिश्रम करना पड़ता है वे मैशीनों से कर लिए जायँ। उनका उद्देश्य मनुष्य-जीवन को सुगम तथा सुखप्रद बनाना तथा सब लोगों को अवकाश प्राप्त कराना है। हम उनकी इस योग्यता द्वारा सुख प्राप्त करने के बजाय दुःख उठाते हैं तो यह हमारी मूर्खता है। अगर हम इच्छा करें तो मैशीनों की सहायता से प्रत्येक व्यक्ति के काम करने के समय को घटा सकते हैं और उसे सब प्रकार के सुख के साधन दे सकते हैं।

❀ ❀ ❀

अत्याचार का परिणाम

प्रो० जदुनाथ सरकार ने अपने 'मुग़ल साम्राज्य का नाश' नामक ग्रन्थ के पहले भाग में ईरान के बादशाह नादिरशाह की कार्रवाइयों का, जो उसने देहली को विजय करने

के बाद कीं, वर्णन करते हुए लिखा है कि नादिर-शाह के ये कार्य न्याय और अनुकम्पा-रहित विशुद्ध पाशविक बल के निदर्शक थे। इस लेख का सारांश, जो 'मॉडर्न रिव्यू' (जनवरी १९३३) में प्रकाशित हुआ है, नीचे दिया जाता है :—

देहली को फ़तह करने के बाद नादिरशाह ने आक्रमणों के सिलसिले को बराबर जारी रक्खा, जिसके फल-स्वरूप पश्चिमी और मध्य एशिया के समस्त देश हिल गए। इनका एक फल यह भी हुआ कि नादिरशाह का बड़ी शीघ्रता से अधःपतन होने लगा। वह एक भीषण अत्याचारी बन गया और निरर्थक रक्तपात तथा निर्दयता में ही प्रसन्नता अनुभव करने लगा। वह प्रायः क्रुद्ध रहता था और इस आवेश में मनमाना अत्याचार करता था। उसका स्वभाव बड़ा शङ्काशील भी हो गया था। उसके हृदय में किसी गम्भीर चिन्ता ने घर कर लिया था और अपनी प्रजा तथा सरदारों पर से उसका विश्वास उठ गया था। इसलिए इनके प्रति भी उसका व्यवहार कठोरतापूर्ण होता था। दाघिस्तान के आक्रमण (सन् १७४२ से १७४४) में असफल होने के कारण उसकी अजेयता का विश्वास भी नष्ट हो गया। इसके फल-स्वरूप उसके साम्राज्य के विभिन्न भागों में बलवे होने लगे और प्रत्येक स्थान में विद्रोहियों ने स्थानीय राजगद्दी के नए-नए दावेदार खड़े करके नादिर के पक्षपाती अधि-कारियों को मार डाला।

निरन्तर युद्धों के कारण नादिरशाह का ख़ज़ाना ख़ाली हो गया था, इसलिए धन बटोरने के लिए वह अत्यन्त निर्दयतापूर्ण उपायों से काम लेने लगा। उसके कर वसूल करने वाले कर्मचारियों में से कितने ही बड़ी यन्त्रणाएँ देकर मार डाले गए, क्योंकि वे अधिक रुपया वसूल न कर सके। जिन प्रजाजनों के पास कुछ सम्पत्ति थी, उनको सदा प्राणों का भय बना रहने लगा। स्वयं उसके निजी मन्त्री ने एक स्थान में लिखा है कि "विद्रोहों से उसका क्रोधीपन और भी बढ़ गया था और वह बिलकुल वहशियों की तरह काम करने लगा था।" ज़रा से सन्देह पर लोगों को मार डाला जाता था, अङ्ग-भङ्ग करा दिया जाता था या आँखें निकलवा ली जाती थीं। इस्फ़हान के बाहर मैदान में उसने कितने ही हिन्दुओं, मुसलमानों और आर्मीनियनों को जीता जलवा दिया था। जनवरी सन् १७४७ में जब वह अपनी राजधानी से ख़ुरासान की तरफ़ रवाना हुआ तो जितने प्रदेशों में होकर वह गुज़रा, वहाँ के रईसों और साधारण नागरिकों को मार कर उनके सरों के बुर्ज बना दिए गए। प्रत्येक विद्रोह घोर निर्दयतापूर्वक दबाया जाता था, पर उसी समय किसी अन्य प्रान्त में नवीन विद्रोह उठ खड़ा होता था। जैसा कि एक इतिहासकार ने लिखा है—"नादिरशाह के शासन के अन्तिम वर्षों में उसकी प्रजा को जैसी विपत्तियाँ झेलनी पड़ीं, उनका वर्णन किया जा सकना असम्भव है।"

ईरान की जनता में सबसे अधिक प्रभावशाली क़िज़िलबाश लोग थे। अब नादिरशाह ने उजबक और अफ़ग़ानी सरदारों की सहायता से, जो इस समय क़िज़िलबाशों के स्थान में बादशाह के प्रिय-पात्र बने हुए थे, इस जाति के समस्त प्रसिद्ध और प्रभावशाली व्यक्तियों को मारने की मन्त्रणा की। पर इस षड्यन्त्र का रहस्य किसी तरह समय से पहले ही प्रकट हो गया।

क़िज़िलबाश सरदारों ने महल के रक्षकों के अफ़सर तथा मुहम्मदख़ाँ कोचर की अध्यक्षता में तुरन्त इस अभिसन्धि के प्रतिकार की चेष्टा की। उनके क़त्ल के लिए जो दिन नियत किया गया था, उससे पहली रात को उनमें से सत्तर व्यक्तियों का एक दल नादिरशाह के ख़ेमे की तरफ़ रवाना हुआ। पर उस अत्याचारी बाद-शाह के आतङ्क से ५७ षड्यन्त्रकारियों ने रास्ते में ही हिम्मत हार दी और वे आगे क़दम न रख सके। केवल १३ व्यक्ति नादिर के ख़ेमे में घुसे और उसे क़त्ल कर दिया।

मगदूम लाला की तीर्थयात्रा

[मुन्शी कन्हैयालाल, एम० ए०, एल-एल० बी०]

"मगदूम भाई !" गम्भीर भाव से लल्लामल ने कहा—"तुम्हें तीर्थयात्रा करनी चाहिए। कुछ परलोक की भी सुधि है या शराब-कबाब में ही सारी ज़िन्दगी स्वाहा कर डालोगे ?"

"जी तो मेरा भी चाहता है, तीर्थयात्रा करने को, मगर × × ×"—मगदूम लाला ने अपना हुक़्क़ा गुड़-गुड़ाते हुए कहा।

"मगर कह कर रुक क्यों गए? कुछ आगे भी कहो।"—लल्लामल ने मगदूम को उकसाते हुए कहा।

"हाँ, यही तो मैं भी सोच रहा हूँ।"—मुँह के धुएँ को आकाश में छितरा कर मगदूम लाला बोले।

"क्या सोच रहे हो ?"

"यही कि मगर के बाद भी कुछ कहना चाहिए।"

लल्लामल हँस पड़े और बोले—कभी काशी गए हो ?

"नहीं।"

"मथुरा ?"

"नहीं।"

"अयोध्या ?"

"ना !"

"गया ?"

"गया तुम जाओ। मुझे क्या किसी का श्राद्ध करना है जो गया जाऊँ ?"—मगदूम लाला ने ज़रा बिगड़ कर कहा।

"अच्छा भई, नाराज़ न हो,"—लल्लामल ने उनके भड़के हुए क्रोध को शान्त करने की इच्छा से पूछा—"अच्छा, कहीं भी गए हो ?"

"हाँ !"—मगदूम लाला ने गम्भीरतापूर्वक उत्तर दिया और मनोयोगपूर्वक हुक्के पर लम्बे कश लगाने लगे।

"कहाँ गए हो ?"—लल्लामल ने फिर छेड़ा।

"बस, कलकत्ता गया हूँ।"—मगदूम ने फ़ौरन् उत्तर दिया और फिर हुक़ा गुड़गुड़ाने लगे।

"यह तो मैं भी जानता हूँ और देख भी रहा हूँ कि तुम कलकत्ता में मेरी कोठरी के अन्दर बैठे तम्बाकू का श्राद्ध कर रहे हो। भला, और भी कहीं गए हो ?"—लल्लामल ने पूछा।

यद्यपि मगदूम लाला को लल्लामल का यह 'तम्बाकू का श्राद्ध' वाला श्लेष कुछ खटका, परन्तु चूँकि कलकत्ते के विख्यात स्थान फ़ौजदारी बालाख़ाने की तम्बाकू चिलम में भरी गई थी और ख़ूब सुलगी हुई थी, इसलिए मगदूम लाला ने अपनी भड़की हुई क्रोधाग्नि को बलपूर्वक दबा कर कहा—"और कहीं नहीं गया हूँ।"

"कहीं नहीं ?"—लल्लामल ने मानों मगदूम लाला की अवस्था पर तरस खाकर कहा—"और सारी ज़िन्दगी यों ही बिता डाली ? नरक में पड़ोगे लाला !"

तम्बाकू के लोभ में मगदूम लाला ख़ून के घूँट पी रहे थे, अन्यथा इस अपमान का वे अवश्य ही बदला लेते। उन्होंने आँखों को मानों पलकों के कठघरे से बाहर निकाल कर एक बार लल्लामल को देखा और पुनः मनोयोगपूर्वक हुक्के से खींच-खींच कर धूम-राशि उगलने लगे, मानों दिल का ग़ुब्बार निकाल रहे हों।

लल्लामल ताड़ गए कि लाला का अधिकांश जामे के बाहर है—पैमाना भर रहा है, छलकने की देर है।

ख़ैर, इतने में लल्लामल की चरस की चिलम भी तैयार हो गई। उन्होंने साफ़ी लगा कर दो-तीन कश लगाया और फिर चिलम को मगदूम लाला की ओर

बढ़ा कर बोले—लो लाला, अपना भचभचा छोड़ कर ज़रा शङ्कर की बूटी का तो मज़ा लो।

आख़िर बेचारे मगदूम लाला कहाँ तक बर्दाश्त करते? लल्लामल ने उनके हुक्के को 'भचभचा' कह दिया था, इसलिए लाला ने भी बिगड़ कर कहा—मैं केवल देवी का प्रसाद लेता हूँ और दूसरे नशों पर लानत भेजता हूँ।

"लानत तुम्हारे मुँह पर।"—लल्लामल ने अपनी लाल-लाल आँखें निकाल कर कहा—"शरम तो आती नहीं कि कलकत्ता छोड़ कर कहीं की यात्रा भी नहीं की और भगवान शङ्कर की बूटी पर लानत भेज रहे हो।"

चरस से मगदूम लाला को चाहे जितनी भी घृणा हो, परन्तु भगवान शङ्कर का अपमान करना उन्हें कदापि अभीष्ट न था। उन्होंने शान्त भाव से कहा—तुमसे कहा किसने कि चरस भगवान शङ्कर की बूटी है। हाँ, गाँजा और भाँग अलबत्ता शङ्कर की बूटियाँ हैं। मगर यह कान की खोंट-सी गन्दी चरस × × ×!

"बस, ज़बान सँभालो लाला, नहीं तो बस हाँ! तुम्हें इतना भी नहीं मालूम कि गाँजे के पौधों पर जो गोंद जम जाती है, उसीको चरस कहते हैं?"

"सच?"

"और नहीं क्या?"

लल्लामल को बाज़ार जाना था। इसलिए उन्होंने इस प्रसङ्ग को यहीं समाप्त किया और कपड़े पहन कर बाहर निकल गए।

२

"अरे अई लल्लामल!"—मगदूम लाला ने हाँफते-हाँफते कहा—"सुनते हैं, गङ्गासागर का मेला है?"

"हाँ, है तो!"

"यार, अगर रुपए होते तो मैं भी नहा आता।"—मगदूम लाला ने बड़ी नम्रता से कहा।

"गङ्गासागर नहाने जाओगे?"

"हाँ यार, इच्छा तो हो रही है। मगर × × ×!"

"मगर क्या?"

"कह तो दिया एक बार!"

"क्या कह दिया?"

"यही कि अगर × × ×!"

"हत्तेरे अगर-मगर की! साफ़-साफ़ कुछ क्यों नहीं कहते।"

मगदूम लाला ने ज़रा ज़ोर से कहा—साफ़ और मैला क्या? बात क्या कोई धोती है या लँगोट है कि उसे साबुन से साफ़ करके कहूँ। जिसे अक़्ल होती है, उसके लिए इशारा ही काफ़ी होता है। इसी से तो कहा है—अक़्लमन्दाँ राँ इशारा काफ़ी अस्त!

"सुनो लाला, अपनी 'काफ़ी' और 'फाफी' को तो अपने पास रहने दो और साफ़ बताओ, क्या गङ्गासागर जाना चाहते हो? रुपए चाहिए?"

"हाँ, चाहिए तो, मगर आएँगे कहाँ से?"

"तुम्हारे पास कितने हैं?"

"कुल तीन!"

"और अगर अपना हुक्क़ा बेच दो तो?"

"हुक्क़ा क्यों बेच दूँ?"—लाला ज़रा बिगड़ गए।

"ख़ैर, मेरे पास बन्धक रख दो।"

"लेकिन रहेगा वह मेरे ही क़ब्ज़े में।"

लल्लामल हँस पड़े। ख़ैर, मगदूम लाला का हुक्क़ा बन्धक रख कर उन्होंने उन्हें सात रुपए दिए। तीन लाला के पास मौजूद थे। गङ्गासागर की तैयारी आरम्भ हो गई। लाला ने हुक्क़ा, चिलम, टिकिया, तम्बाकू, शराब की दो ख़ाली बोतलें, बीड़ी-दियासलाई, लोटा और धोती आदि सब सामान ठीक कर लिया।

लल्लामल ने पूछा—ये ख़ाली बोतलें क्यों बाँध रहे हो?

"उधर से गङ्गासागर का जल लेता आऊँगा।"

"क्यों? क्या आकर देवी जी पर चढ़ाओगे?"

"देवी पर जल नहीं चढ़ा करता।"

"तो आख़िर गङ्गासागर का जल होगा क्या?"

मगदूम लाला ने ज़रा सोच कर जवाब दिया—तुम अपने शङ्कर जी पर चढ़ा देना।

यह सुनते ही लल्लामल बिगड़ गए और बोले—शराब की बोतल का जल भगवान शङ्कर पर चढ़ेगा, बेवक़ूफ़ कहीं के। बस, लाओ मेरे सात रुपए। मैं नहीं देता।

"तो रुपए क्या तुमने मुफ़्त में दे दिए हैं?"

"और नहीं, क्या तुमसे क़र्ज़ लिया था।"

"क़र्ज़ लेने की बात कौन कहता है?"

"तो?"

"तुमने मेरा हुक्क़ा बन्धक में रक्खा है?

"अच्छा, तो हुक़्क़ा ही दे दो !"

"वाह, वह तो मेरे क़ब्ज़े में रहेगा।"

ख़ैर, बड़ी भाँव-भाँव के बाद मगदूम लाला ने अपनी बात वापस ली और मान लिया कि शराब की बोतलों में लाया हुआ जल शङ्कर जी पर नहीं चढ़ सकता। परन्तु साथ ही उन्हाने यह भी लल्लामल को बता दिया कि शराब देवी का प्रसाद है। वह कोई ख़राब वस्तु नहीं है।

३

स्टीम नेवीगेशन कम्पनी का 'करलू' जहाज़ सवेरे सात बजे खुलने वाला था। मगदूम लाला हमेशा आठ बजे सोकर उठा करते थे। इसलिए बेचारे रात भर सोए नहीं और दो बजे रात को ही लल्लामल को जगाया और उन्हें साथ लेकर कलकत्ते के कोयलाघाट पर पहुँचे। लल्लामल ने यात्रा सम्बन्धी ज़रूरी बातें उन्हें पहले से ही बता दी थीं। जैसे समुद्र में चक्कर आवे तो पानी की तरफ़ न देखना, चढ़ने-उतरने के समय जल्दी न करना, खाने-पीने में इहतियात रखना इत्यादि-इत्यादि। परन्तु घाट पर पहुँचते ही लाला जी सारी बातें भूल गए। इसलिए उन्होंने फिर लल्लामल से आवश्यक उपदेश ग्रहण किया और अब की एक काग़ज़ के पुर्ज़े पर पेन्सिल से उन्हें नोट भी कर लिया।

टिकट-घर साढ़े चार बजे ही खुल गया था। लल्लामल के एक साथी ने टिकिट ला दिया। यात्रियों की भीड़ का कहीं ठिकाना न था। लोग एक पर एक ढहे जा रहे थे। जहाज़ पर पहुँचते-पहुँचते लल्लामल और उनके दो साथी, जो मगदूम लाला को जहाज़ पर बैठाने आए थे, भीड़ में इधर-उधर हो गए। बेचारे मगदूम लाला ने उन्हें ढूँढ़ने की चेष्टा की, परन्तु बेफ़ायदा; गला फाड़-फाड़ कर पुकारा, मगर नक्क़ारख़ाने में तूती की आवाज़ सुनता कौन है? कुछ समझ में न आया कि क्या करें? इतने में ख़याल आया कि भीड़ के समय क्या करना चाहिए, इस सम्बन्ध में पुर्ज़े में कोई उपाय अवश्य होगा। पुर्ज़ा पोटली में बँधा था। इसलिए पोटली खोल कर उसे निकाल कर एक बार पढ़ लेने की इच्छा से लाला वहीं बैठ गए और यात्रियों की भीड़ उनके ऊपर से चलने लगी। बेचारे बेहोश हो गए!

होश आने पर उन्होंने देखा कि एक साफ़-सुथरे कमरे में गद्देदार पलङ्ग पर पड़े हैं। सिरहाने की ओर एक छोटे से टेबिल पर दो शीशियाँ, एक काँच का गिलास और एक सुराही रक्खी है। थोड़ी देर के बाद ही उन्हें याद आ गया कि जहाज़ पर चढ़ कर गङ्गासागर जा रहे हैं। लल्लामल की ज़बानी उन्होंने सुन रक्खा था कि जहाज़ में बड़े आदमियों के लिए 'केबिन' हुआ करते हैं। उन्होंने सोचा, शायद लल्लामल ने उनके लिए भी केबिन ही 'रिज़र्व' करा दिया होगा। बेचारे ख़ूब ख़ुश हुए और सोचने लग कि लल्लामल के लिए गङ्गासागर से कोई अच्छी चीज़ लावेंगे। इतने में कुछ भूख सी मालूम हुई। पोटली में चबेना, मठरी और दालमोट रक्खा था। हुक़्क़ा-चिलम भी उसी में था। लाला उठ बैठे। मगर न मालूम क्यों दिमाग़ में एक चक्कर सा आ गया और फिर लेट गए। थोड़ी देर बाद तबीयत सँभली तो फिर उठे और कमरे का दरवाज़ा खोल कर बरामदे में आए। सड़क पर नज़र पड़ी। गाड़ी, मोटर, ट्राम और इधर से उधर जाते-आते आदमियों की भीड़। कुछ बङ्गाली एक मुर्दे को लिए चिल्लाते जा रहे थे—"बोलो हरी! हरी बोल!" लाला सोचने लगे, यह तो अजीब जहाज़ है। उन्होंने इधर-उधर नज़र दौड़ाया। कम्बख़्त समुद्र किधर गया! पानी तो कहीं दिखाई ही नहीं देता। तो आख़िर यह जहाज़ चलता कैसे है? शायद अगले स्टेशन पर ठहर गया है।

इतने में एक सुफ़ेद कपड़े वाली गोरी स्त्री ने लाला के पास आकर कहा—वेल, टुम उठा काहे को?

लाला ने उसे आपाद-मस्तक देख कर पूछा—यह कौन स्टेशन है? क्या गङ्गासागर का स्टेशन यही है?

नर्स ने मुस्कुराते हुए उत्तर दिया—नो माई ब्वाय! यह गङ्गासागर का स्टेशन नहीं, हॉसपिटल है!

"क्या कहा, अस्पताल है?"

"हाँ, यह अस्पटाल है। टुम अबी उठो नहीं, टुमारा सरीर बहुट कमजोर है। जहाज में टुमको बहुट चोट लगा है। अबी उठने से टुम जलडी नहीं अच्छा होगा।"
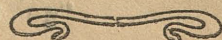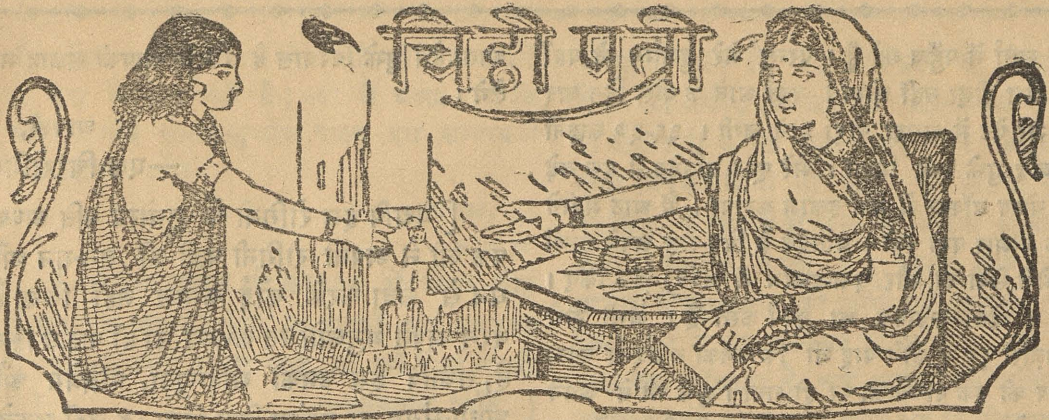
महिला-कवि-सम्मेलन

महिला-कवि-सम्मेलन की स्वागताध्यक्षा श्रीमती महादेवी वर्मा ने निम्नलिखित सूचना हमारे पास प्रकाशनार्थ भेजी है :—

प्रयाग-महिला-विद्यापीठ की महिला-साहित्य-सभा के निश्चय के अनुसार भारतवर्ष की समस्त हिन्दी-कवियों का वृहद् महिला-कवि-सम्मेलन १५ अप्रैल, १९३३ को प्रयाग में महिला-विद्यापीठ-हाल में होना निश्चय हुआ है। सम्मेलन की सभानेत्री का आसन हिन्दी की सुप्रसिद्ध कवि श्रीमती सुभद्राकुमारी जी चौहान ग्रहण करेंगी।

१—विषय

१—रजनी, २—विश्ववैचित्र्य, ३—झाँसी की रानी, ४—अछूत, ५—आँसू।

२—समस्या-पूर्ति

१—अबला न जानो हमें हम सबलाएँ हैं। २—करती रहें। ३—कहावेंगी। ४—मोतियों का मेरा वह हार। ५—इस ओर।

३—स्वतन्त्र रचनाएं

स्वागतकारिणी समिति ने यह निश्चय किया है कि जो कविताएँ सम्मेलन में पढ़ी जावेंगी या पढ़ने के लिए प्राप्त होंगी, उन कविताओं का एक संग्रह प्रकाशित किया जायगा, जिसमें प्रत्येक कवि का परिचय दिया जायगा, और यथासम्भव उनका चित्र भी देने का प्रयत्न किया जायगा। कवियों (स्त्री) को चाहिए कि यथासम्भव शीघ्र अपनी जीवनी, फ़ोटो, समस्या-पूर्ति, निश्चित विषयों पर कविता और अपनी किन्हीं पाँच अन्य कविताओं को, जिनको वे अपनी सबसे उत्तम रचना समझती हों, भेज दें। यदि वे किसी कारण-वश न आ सकें तो भी इनको भेज दें।

स्वागत-समिति ने बाहर से आने वाली स्त्रियों के ठहरने का प्रबन्ध किया है, किन्तु आने के ३ दिन पहिले सूचना दे दीजिएगा।

महिला-कवि-सम्मेलन,
प्रयाग-महिला-विद्यापीठ
प्रयाग।

विनीत
महादेवी वर्मा
स्वागताध्यक्षा
रामेश्वरी देवी गोयल
मन्त्राणी

[वास्तव में प्रयाग-महिला-विद्यापीठ के सञ्चालकों ने एक अभिनव आयोजन किया है। हमें आशा है कि उनका यह आयोजन अवश्य ही सफल होगा और कवि तथा अन्य साहित्यानुरागिनी बहिनें स्वयं पधार कर तथा अपनी रचनाएँ भेज कर इस सम्मेलन को सफल बनाने की चेष्टा करेंगी। —सम्पादक 'चाँद']

❀ ❀ ❀

एक पतिव्रता की आकांक्षा

एक देवी ने लिखा है :—

माननीय सम्पादक जी,

सादर प्रणाम। विवाह के बाद विमाता के अकथ अत्याचारों से छुटकारा पाकर जब मैं अपनी ससुराल में आई, तो मुझे मालूम हुआ कि मैं नरक से निकल

कर स्वर्ग में पहुँच गई हूँ। परन्तु मेरे दुर्भाग्य ने यहाँ भी मेरा पीछा नहीं छोड़ा। यहाँ आने के बीस दिन बाद ही मेरे पेट में असह्य पीड़ा होने लगी। ३६-३७ लङ्घनों के बाद मुझे पथ्य मिला। मेरे पूज्य पतिदेव ने एक बड़े ही योग्य डॉक्टर से मेरा इलाज कराया। मैं आठ महीने तक बीमार पड़ी रही। पतिदेव ने दिन-रात अपने हाथों से मेरी सेवा की और दवा-इलाज में ५००) ख़र्च किए। मेरे पतिदेव अध्यापक का कार्य करते हैं। अभी मेरी कमज़ोरी दूर न होने पाई थी कि उनका तबादला कोटा राज्य की एक पाठशाला पर हो गया। मुझे भी वे अपने साथ लेते गए। जिस मकान में मैं रहती थी, उसमें एक दिन अचानक प्रेत-दर्शन हुआ। पतिदेव पाठशाला गए हुए थे और मैं ऊपर अटारी में रोटी पका रही थी। प्रेतात्मा को देख कर मैं डर से सीढ़ियों की ओर दौड़ी और पैर फिसल जाने के कारण नीचे गिर कर बेहोश हो गई। मकान में कोई दूसरा आदमी न था। सात घण्टे बाद जब मुझे होश हुआ तो देखा कि पतिदेव आँखों में आँसू भरे घावों पर दवा लगा रहे हैं।

६ महीने तक दवा-इलाज होता रहा, परन्तु कोई फल नहीं हुआ। बल्कि जहाँ-जहाँ चोट लगी थी, वहाँ फोड़े हो गए। पतिदेव ने कई जगह इलाज कराया। अन्त में पैरों में ग्यारह नासूर हो गए। बरसों तक दवा-इलाज हुआ। पतिदेव के १,२००) ख़र्च हो गए, पर फल कुछ नहीं हुआ।

इस तरह आज पाँच वर्षों से मैं खाट पर पड़ी हूँ। मेरे अद्भुत आत्म-संयमी पति उसी तत्परता से मेरी सेवा और दवा-इलाज करते जाते हैं। उनकी हालत देख कर मेरा कलेजा फटा जाता है। मैं ऐसी अभागिनी हूँ कि एक दिन भी उनकी सेवा नहीं कर सकी और उलटे वही मेरी सेवा कर रहे हैं। पतिदेव के हितैषी और कुटुम्बी उन्हें दूसरा ब्याह कर लेने को कहते हैं। मेरी भी यही इच्छा है कि वे पुनर्विवाह करके सुखी होवें, परन्तु किसी तरह राज़ी नहीं होते। मेरा मरना अनिवार्य है। अतः मैं यही चाहती हूँ कि वे दूसरी शादी करके मुझे अनुगृहीत करें। मुझे दुःख है कि उनकी सेवाओं से उऋण न हो सकी। मैं चाहती हूँ कि आप 'चाँद' द्वारा मेरे पतिदेव को इस सम्बन्ध में उचित सम्मति दें। 'चाँद' उनकी पाठशाला के पुस्तकालय में आता है। मुझे विश्वास है कि वे आपकी सलाह मान लेंगे।

आपकी,

—एक चिररोगिनी

[यद्यपि इस रोगिनी के सुयोग्य पति अध्यापक जी ने अपनी रोगिनी पत्नी की तन-मन और धन से सेवा करके कोई कमाल नहीं किया है, वरन् अपने मनुष्योचित कर्त्तव्य का ही पालन किया है, तथापि हम उनकी सहिष्णुता, पत्निप्रेम और आत्म-संयम की प्रशंसा किए बिना रह नहीं सकते। क्योंकि दुर्भाग्यवश हिन्दू-समाज में ऐसे कर्तव्यशील पतियों का नितान्त अभाव है। यहाँ तो स्त्रियाँ पैर की जूतियाँ समझी जाती हैं। अब रह गया, अध्यापक जी के पुनर्विवाह का प्रश्न। हमारी समझ में इसके लिए उन पर किसी प्रकार का दबाव नहीं डालना चाहिए और इस सम्बन्ध में अपना कर्तव्य निर्धारित करने के लिए उन्हें सम्पूर्ण स्वतन्त्र छोड़ देना चाहिए। रोगिनी बहिन को भी हमारी सलाह है कि वह इसके लिए अपने पतिदेव से अनुरोध न करें। वे स्वयं विवेचना करके जैसा उचित समझेंगे करेंगे।

—स० 'चाँद']

❀ ❀ ❀

एक विवाहाकांक्षी युवक

प्रिय सम्पादक जी,

मैं अमृतसर (पञ्जाब) का रहने वाला खत्री-राजपूत हूँ। मेरी उम्र ३१ साल की है। मैंने इङ्गलैण्ड में इञ्जिनियरी की शिक्षा प्राप्त की है और भारत के एक विख्यात 'पेपर-मिल' में ७००) मासिक वेतन पर नौकर हूँ।

आज से दस वर्ष पूर्व मेरी शादी हुई थी और चार बच्चे भी हुए। परन्तु पारस्परिक मतभेद के कारण स्त्री अब अलग रहती है और भरण-पोषण के लिए नियमित ख़र्च पाती है।

अब मैं किसी ऐसी सुन्दरी विधवा से पुनर्विवाह करना चाहता हूँ, जोकि पढ़ी-लिखी, गृह-कार्य में चतुर

और पवित्र आचरण वाली हो। जाति-पाँति के बन्धनों पर मेरा विश्वास नहीं है। क्या मैं आशा करूँ कि 'चाँद' के कोई समाज-सुधारक पाठक इस सम्बन्ध में मेरी सहायता करेंगे।

आपका,

×××

[उपर्युक्त सज्जन के सम्बन्ध में अगर कोई सज्जन कुछ जानना चाहें या उनकी इस सम्बन्ध में कोई सहायता करना चाहें, तो हमें लिख सकते हैं। —सम्पादक 'चाँद']

❋ ❋ ❋

अनमेल विवाह का दुष्परिणाम

गोरखपुर ज़िले से एक बालिका ने लिखा है :—

मान्यवर सम्पादक जी,

एक भाई ने मुझे बताया है कि आप अपने 'चाँद' पत्र द्वारा दुःखिनी बहिनों को उनके दुःखों से बचने का उपाय बताया करते हैं। मैं भी इसी आशा से यह पत्र आपकी सेवा में भेजवा रही हूँ। मैं एक अहीर-कुल की लड़की हूँ। पढ़ना-लिखना नहीं जानती। उसी भाई से यह पत्र लिखवा रही हूँ। मेरी उम्र १६ साल की है। मैं जब आठ वर्ष की थी तभी मेरी शादी एक पाँच वर्ष के बालक के साथ कर दी गई थी। परन्तु उसके बाद से मुझे ससुराल जाने का सौभाग्य नहीं हुआ। मेरे पतिदेव या मेरी ससुराल वाले भी मुझे नहीं बुलाते हैं। घरवाले भी इसकी कोई चरचा नहीं करते। मैं स्वयं लाज के मारे किसी से कुछ नहीं कह सकती। परन्तु मेरी समझ में नहीं आता कि मेरी ज़िन्दगी कैसे व्यतीत होगी। बड़ी कृपा हो, यदि मुझे आप कोई उपाय बतावें।

आपकी

×××

[इस तरह के बेजोड़ सम्बन्धों की हमारे देश में कोई कमी नहीं है। अभागा हिन्दू-समाज तो किसी प्रकार कन्याओं को विवाहिता कर देना भर जानता है। उसे इस बात की कोई चिन्ता नहीं कि जिसे वह कन्या सौंपता है, वह योग्य है या अयोग्य, लड़का है या बूढ़ा, रोगी है या कोढ़ी। फलतः ऐसे बेजोड़ सम्बन्धों का जो घृणित परिणाम होता है, वह भी किसी से छिपा नहीं है। ऐसे बेजोड़ विवाहों के फल-स्वरूप कितनी ही लड़कियाँ अपनी कुल-मर्यादा को तिलाञ्जलि देकर विपथगामिनी हो जाती हैं अथवा गुण्डे-बदमाशों के चङ्गुल में फँस कर अपना लोक और परलोक बिगाड़ बैठती हैं। परन्तु इतने पर भी अभागे हिन्दू-समाज की आँखें नहीं खुलतीं। अस्तु, जिस भाई ने इस बालिका की मनोऽव्यथा को हमारे पास तक पहुँचाया है, उन्हें चाहिए कि बालिका के अभिभावकों को समझा-बुझा कर किसी सुपात्र के साथ उसका पुनर्विवाह करा दें। —स० 'चाँद']

❋ ❋ ❋

एक सराहनीय उद्योग

एक उदार-हृदय सज्जन लिखते हैं :—

सम्पादक जी,

सादर नमस्ते! कान्यकुब्ज ब्राह्मण-समाज में, दहेज़-प्रथा के कारण धनहीन भाइयों को अपनी कन्याओं का विवाह करने में बहुत कष्ट होता है। बल्कि बहुत सी कन्याएँ तो अपने अभिभावकों की धनहीनता के कारण आजन्म अविवाहिता ही रह जाती हैं। इस गन्दी प्रथा को समूल नष्ट कर डालने की इच्छा से कान्यकुब्ज ब्राह्मण जाति के कुछ उत्साही नवयुवकों ने प्रतिज्ञा की है कि वे अपना विवाह किसी धनहीन की कन्या से बिना तिलक-दहेज़ लिए ही करेंगे! और अन्य युवकों को भी इसके लिए उत्साहित करेंगे। अतः जो कान्यकुब्ज ब्राह्मण भाई धनहीनता के कारण अपनी कन्याओं का विवाह न कर सकते हों, वे पत्र द्वारा मुझे सूचना देवें। मैं यथासाध्य उनकी सहायता करूँगा।

आपका,

छेदालाल शुक्ल,

C/o दी एडवर्ड मिल्स कम्पनी लि०

ब्यावर (राजपूताना)

[हम श्री० छेदालाल जी शुक्ल और उनके साथी कान्यकुब्ज ब्राह्मण युवकों को अन्तःकरण से धन्यवाद प्रदान करते हैं। वास्तव में उनका

प्रयत्न सराहनीय है। साथ ही समस्त कान्यकुब्ज ब्राह्मण युवकों से हमारा निवेदन है कि वे अपने उपर्युक्त सजातीय युवकों का अनुकरण करें और उन्हीं की तरह प्रतिज्ञा कर लें कि अपने विवाह में तिलक-दहेज के नाम पर एक पैसा भी न लेंगे और जैसा कि कुछ बिहारी नवयुवकों ने किया है, प्रतिज्ञा कर लें कि किसी ऐसे विवाह में सम्मिलित न होंगे, जहाँ लेन-देन होगा। हमें यह कहने में ज़रा भी सङ्कोच नहीं होता कि इन पुरानी रूढ़ियों के पोषक हमारे कमज़ोर दिल वाले नवयुवक ही हैं। वे यदि मनुष्योचित सत्साहस से काम लें तो ऐसे दक़ियानूसी रिवाजों को एक ही दिन में दूर कर सकते हैं। अगर श्री० छेदालाल जी शुक्ल की नवयुवक मण्डली अपने समाज के कम से कम एक सौ नवयुवकों को भी अपने मत का अनुगामी बना सके, तो हमारा विश्वास है कि कान्यकुब्ज ब्राह्मण-समाज से यह प्रथा सदा के लिए दूर हो जाएगी।

—स० 'चाँद']

❀ ❀ ❀

रईस के लाड़ले

एक बिहारी बहिन ने लिखा है :—

श्रीमान सम्पादक जी,

मैं विवाहिता हूँ। मेरी उम्र १५-१६ साल की और मेरे पतिदेव की २०-२१ साल की है। मैं अपर प्राइमरी पास हूँ और वे मिडिल पास हैं। ईश्वर की कृपा से खाने-पहनने की कोई कमी नहीं है। परन्तु इतने पर भी मैं दुःखिनी हूँ। क्योंकि पतिदेव कोई काम-धन्धा नहीं देखते। बस, दो-चार लड़कों को लेकर दिन-रात खेल-तमाशा और थियेटर-सिनेमा देखा करते हैं। लौंडे के नाच के तो इतने प्रेमी हैं कि रात-रात भर बैठे यह नाच देखा करते हैं। इनकी एक साइकिल की दूकान है। उसके मैनेजर को धमका कर उससे दस-बीस रुपए ले लेते हैं और खेल-तमाशे में ख़र्च कर देते हैं। इनके माता-पिता यह हाल देखते हैं, पर बोलते नहीं, कि कहीं रूठ कर चले न जाएँ। मेरी ओर तो फूटी आँख भी नहीं देखते। अगर कभी मेरे कमरे में आ जाते हैं और मैं कुछ कहना चाहती हूँ, तो झट बाहर निकल जाते हैं। शराब और मांस तो नहीं व्यवहार करते, परन्तु बीड़ी दो-चार बण्डल रोज़ फूँक देते हैं। मेरे बहुत ख़ुशामद करने पर तो 'चाँद' के ग्राहक बने, पर जब साल पूरा हुआ और वी० पी० आई तो उसे लौटाने लगे। अन्त में मैंने सास जी से रुपए लेकर वी० पी० छुड़वाई। पढ़ने-लिखने से तो ये कोसों दूर रहते हैं। इनकी यह आवारगी देख कर मैं मन ही मन कुढ़ा करती हूँ। कुछ समझ में नहीं आता कि इनके साथ ज़िन्दगी कैसे कटेगी। अभी तो सास-ससुर हैं। परन्तु जब ये न रहेंगे तब क्या होगा। आप मेरे पिता-तुल्य हैं। कृपा करके कोई उपाय बताइए कि इनका सुधार हो। आप मुझे ज़रूर कोई अच्छी सलाह दीजिए।

आपकी,

—एक दुखिनी बालिका

[इसमें लड़के का उतना दोष नहीं, जितना कि उसके अपरिणामदर्शी अभिभावकों का है। क्योंकि ये लोग थोथे वात्सल्य और लाड़-प्यार के फेर में पड़ कर स्वयं ही अपने बच्चों का अनिष्ट कर डालते हैं। हमारी राय है कि यह बालिका अपने सास-ससुर का ध्यान इधर आकर्षित करे और वे लोग अपने नालायक़ लड़के के हाथ में रुपया-पैसा न पड़ने दें। साथ ही उसके साथ किसी ऐसे नवयुवक को लगा दें, जो धीरे-धीरे उसकी रुचि को बदलने की चेष्टा करे। बालिका को भी चाहिए कि अपने अटूट प्रेम द्वारा अपने पति को वश में करने की चेष्टा करे। गत मार्च के 'चाँद' में 'हठीली दुलहिन' नाम की एक कहानी छपी है। यह बालिका उसे पढ़ कर उससे शिक्षा ग्रहण कर सकती है।

—स० 'चाँद']

❀ ❀ ❀

मुँहासे की दवा

'चाँद' के गताङ्क में श्री० कृष्णादेवी नाम की एक बहिन ने मुँहासे की आज़मूदा दवा पूछी है। इस सम्बन्ध में उपर्युक्त श्री० बी० एल० काश्यप तथा अन्यान्य कई सज्जनों और देवियों ने कई नुसख़े हमारे पास लिख भेजे हैं, जिनमें से कुछ नीचे दिए जाते हैं—

१—रोज़ाना सवेरे उठ कर सबसे पहले किसी भी तरकीब से २-३ छींकें ले लिया करें, जिससे नाक से कुछ मवाद रोज़ाना निकल जाया करे, इस तरह १५-२० दिन के बाद आगे को मुँहासे निकलना बन्द हो जायँगे। अगर किसी तरह छींकें न आवें, तो काग़ज़ की बत्ती बना कर ही काम निकाल लें। अब रहा उन मुँहासों का इलाज, जोकि निकल रहे हैं या अधनिकले हैं। उन पर रात को सोते समय सीसा धातु को किसी पत्थर पर घिस कर गाढ़ा-गाढ़ा लगा दें। सवेरे धोकर तथा तौलिया से अच्छी तरह पोंछ कर चमेली का तेल ४-६ बूँद मल दें। अगर सवेरे सादा पानी के बदले किसी अच्छे साबुन से मुँह धोकर कड़ी तौलिया से अच्छी तरह सख़्ती से पोंछ कर तेल लगा दें तो और भी अच्छा।

—डॉक्टर बी० एल० काश्यप

२—मसूर की दाल गाय के दूध में पीस कर उबटन की तरह प्रतिदिन दो-तीन बार लगाने से मुँहासे दूर हो जाते हैं और चेहरे का लावण्य बढ़ता है।

३—चकोतरा नींबू का रस १ छटाँक एक प्याली में रख कर उसमें एक आने भर भुने हुए सुहागे का चूर्ण और थोड़ी सी दानेदार चीनी मिला कर एक शीशी में तीन-चार दिन रख दें। फिर उसे दिन में ३-४ बार लगावें।

—भैरवनाथ अग्रवाल 'आनन्द'

४—लौंग ८ अदद, इन्द्रजौ ६ माशे और आमा-हल्दी १ तोला। तीनों चीज़ों को आक (मदार) के दूध में पीस कर एक बड़ी गोली बना कर रख दें और रात को पानी में घिस कर मुँहासों पर लगा दें। फिर सवेरे ठण्डे पानी से मुँह धोकर साबुन से धो डालें।

—श्रीधर दर

(५) जवासे की पत्तियों को लोहे के खरल में कूट-कर कपड़-छान कर लेना चाहिए। इस सफ़ूफ़ में थोड़ा-थोड़ा ग्लेसरीन (Glycerine) मिला कर खरल में ख़ूब घोंट कर मरहम की शकल का बना लेना चाहिए और एक साथ डिब्बी में रख लेना चाहिए। रात को सोते वक्त मुहासों पर ख़ूब रगड़ देना चाहिए। सुबह को गरम पानी, बेसन या आँवलों से मुँह धोना चाहिए। किसी क़िस्म के भी साबुन से मुँह धोना मुहासों को और निकालता है और सख़्त मुज़िर है।

(६) दिन में लगाने के लिए धुली हुई तिल्ली के तेल में इन पत्तियों को ख़ूब उबाल कर और छान कर रख लेना चाहिए। सुबह को मुँह धोने और दोपहर को स्नान के बाद इसे लगाते रहना चाहिए।

(७) पाव भर जवासा की पत्ती और ढाई बोतल पानी, एक एलूमीनियम की पतीली में धीरे-धीरे आग पर ख़ूब उबाला जाय, पानी जब आधे बोतल के क़रीब जल जाय तो उतार कर ठण्डा करके बोतलों में भर लिया जाय। इस पानी से दिन-रात में कई मरतबा मुँह धोया जाय।

—डॉक्टर जैजैराम गुप्त

❀ ❀ ❀

औरत के चेहरे पर बाल

महाशय जी, नमस्ते!

आपके 'चाँद' में अक्सर अच्छे-अच्छे हकीमों और लायक़ भाई-बहिनों के नुसख़े वग़ैरा निकलते हैं। क्या कोई कृपालु भाई-बहिन ऐसा कोई इलाज बता सकते हैं कि यदि किसी औरत के चेहरे या ठोढ़ी पर बाल हो गए हों तो उनको हमेशा के वास्ते हटाने का क्या इलाज है। वह बाल हट जावे और फिर न आवे। जिस भाई-बहिन को बताना हो, 'चाँद' में ही दे देवें, इससे और भी लोगों का भला होगा।

—लीलावती
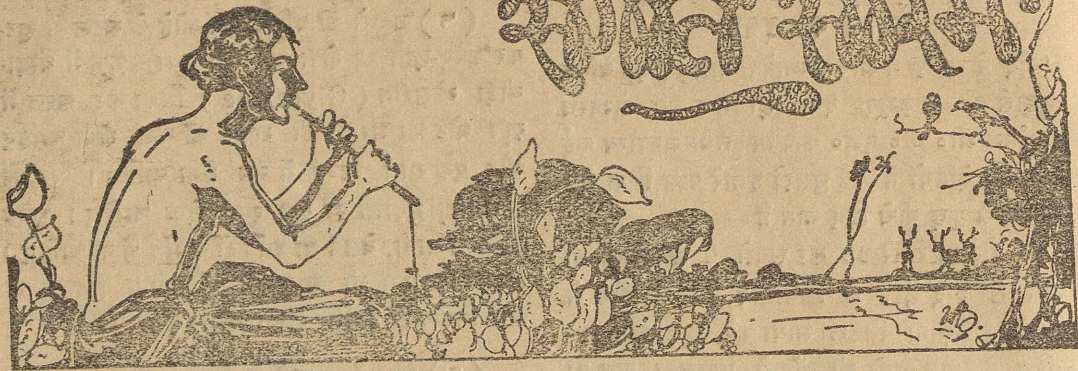
[स्वरकार—प्रोफ़ेसर नीलू बाबू]।

खम्माच—तीन ताल

[शब्दकार—प्रोफ़ेसर नीलू बाबू]

स्थायी—हरी बिना और न पीर हरैया।
पीर हरैया, धीर धरैया॥

अन्तरा—जो करमन लिख दीन्ह विधाता,
ताहु सों एक तिल घटे न बढ़ैया।

स्थायी

०				१				×				३			
स	स	ग	ग	म	—	प	ध	सं	—	(क)नि	ध	प	म	ग	—
ह	री	बि	ना	औ	—	र	न	पी	—	र	ह	र	ऐ	या	—
नि	—	नि	नि	सं	—	प	ध	सं	—	(क)नि	ध	प	म	ग	—
पी	—	र	ह	रै	—	या	आ	धी	—	र	ध	र	ऐ	या	—

अन्तरा

म	—	ध	ध	(क)नि	ध	प	ध	नि	—	नि	सं	ध	नि	सं	—
जो	—	क	र	म	न	लि	ख	दी	—	न	वि	धा	आ	ता	—
नि	—	नि	नि	सं	सं	प	ध	सं	सं	(क)नि	ध	प	म	ग	—
ता	—	हु	सों	ए	क	ति	ल	घ	टे	न	ब	ढ़	ऐ	या	—

विजय-विकास अर्थात् श्रीमद्भगवद्गीता भाष्य—लेखक, शरणभिक्षु ओङ्कारसिंह, बी० ए०, और आपने ही इसे ओङ्कार उपासना प्रचार कार्यालय, सुजानपुर, पो० राया, ज़िला मथुरा से प्रकाशित भी किया है। आकार डिमाई आठ पेजी, सजिल्द, दाम ३)

इसमें भूमिका है, निवेदन है, समर्पण है और श्रीमद्भगवद्गीता की महिमा और उसके प्रत्येक अध्याय की विस्तृत आलोचना है। इसके सिवा इसमें भाष्यकार बी० ए० महोदय की स्वरचित हिन्दी कविता भी प्रत्येक अध्याय के अन्त में है। हमारी समझ में यह परिश्रम आपने पाठकों को गीता का ज्ञान जल्दी से जल्दी करा देने के लिए ही किया है और इससे पुस्तक की कलेवर-वृद्धि में भी ख़ासी मदद मिली है। परन्तु कविता और पिङ्गल आदि को तो आपने उलटे छुरे से मूड़ डाला है।

सरस-साहित्य—संग्रहकर्ता, श्री० गुरांदित्ता खन्ना; प्रकाशक, साहित्य-भवन, घण्टाघर, अमृतसर, पृष्ठ-संख्या २८६, मूल्य १)

यह सूर, तुलसी, कबीर, मीरा, गुरु नानक और गुरु गोविन्द आदि भक्त कवियों के चुने हुए भजनों का संग्रह है। भक्त-जनों के बड़े काम की चीज़ है।

स्वास्थ्य और रोग—लेखक, श्री० त्रिलोकीनाथ वर्मा, बी० एस-सी०, एम० बी० बी० एस०, डी० टी० एम०; सिविल सर्जन इत्यादि-इत्यादि! आपने ही इसे प्रकाशित भी किया है! पृष्ठ-संख्या प्रायः ९००, चित्र-संख्या ४०७, छपाई काग़ज़ और जिल्द उच्च कोटि की। मिलने का पता—इलाहाबाद लॉ-जर्नल प्रेस, प्रयाग। मूल्य ७

इधर हिन्दी में स्वास्थ्य-विषयक बहुत सी छोटी-बड़ी पुस्तकें निकली हैं और उनमें कई अधिकारियों द्वारा लिखी गई हैं; विद्वानों ने उनकी तारीफ़ें भी की हैं। परन्तु प्रस्तुत पुस्तक अपने ढङ्ग की निराली है। इसके विद्वान लेखक ने बड़ी खोज और बड़े परिश्रम से यह पुस्तक तैयार की है। इसमें निहायत सीधी-सादी भाषा में, उत्तम स्वास्थ्य प्राप्त करने की विधियाँ और नाना प्रकार के भीषण रोगों से बचने के सरल उपाय बताए गए हैं। विषय को सुगमतापूर्वक समझने के लिए स्थान-स्थान पर चित्र भी दिए गए हैं। समस्त पुस्तक २८ बड़े अध्यायों में विभक्त है और प्रत्येक अध्याय में शरीर, जीवन, स्वास्थ्य, रोग और आरोग्यता सम्बन्धी अगणित विषयों पर विशद प्रकाश डाला गया है। इस पुस्तक के पढ़ने से केवल स्वास्थ्य और रोग सम्बन्धी ज्ञान ही नहीं, वरन् शरीरतत्त्व सम्बन्धी ज्ञान की भी प्राप्ति हो सकती है। भाषा इतनी सरल है कि हिन्दी का साधारण ज्ञान रखने वाला पाठक भी इस पुस्तक से लाभ उठा सकता है। लेखक महोदय का परिश्रम, सुन्दर और मज़बूत जिल्द तथा चित्रों के बाहुल्य को देखते हुए ७) दाम भी अधिक नहीं हैं। ऐसी सुन्दर पुस्तक को समालोचनार्थ भेजने के लिए हम इलाहाबाद लॉ-जर्नल प्रेस के अधिकारियों के कृतज्ञ हैं।

'विशाल भारत' (कहानी-अङ्क)—सम्पादक श्री० बनारसीदास जी चतुर्वेदी, वार्षिक मूल्य ६), इस अङ्क का मूल्य १।) पता—विशाल भारत कार्यालय, १२०।२, अपर सरकूलर रोड, कलकत्ता।

'विशाल भारत' हिन्दी का एक उच्च कोटि का मासिक पत्र है। यह अपने ऊँचे पैमाने और गम्भीर

लेखों के लिए काफ़ी सुख्याति प्राप्त कर चुका है। इसमें उच्चकोटि के देशी तथा विदेशी लेखकों के लेख छपा करते हैं। 'विशाल भारत' का यह कहानी-अङ्क भी उसके उपयुक्त ही हुआ है। इसमें हिन्दी के प्रायः सभी विख्यात कहानी-लेखकों की कहानियों के अलावा अङ्गरेज़ी, फ्रेञ्च, बँगला, मराठी और उर्दू आदि कई भाषाओं के अच्छे कहानी लेखकों की भी चुनी हुई कहानियाँ संग्रहीत हैं। इस दृष्टि से 'विशाल भारत' का यह अङ्क अच्छी कहानियों का एक सुन्दर संग्रह है। अच्छा होता, अगर इस अङ्क में 'कहानी-कला', कहानी कैसे लिखी जाए, कहानियों का इतिहास और हिन्दी कहानियों के सम्बन्ध में एक आलोचनात्मक लेख भी होता। जो हो, प्रस्तुत अङ्क सुन्दर और संग्रह करने योग्य है। इस अङ्क में कई तिरङ्गे और एकरङ्गे चित्र भी हैं।

'जागरण' (होलिकाङ्क)—सम्पादक श्री० प्रेमचन्द जी, वार्षिक मूल्य ३।।) पता; जागरण कार्यालय, सरस्वती प्रेस, काशी।

'जागरण' का होलिकाङ्क देख कर हमें अतीव प्रसन्नता हुई। सचमुच बड़ा ही सुन्दर निकला है। कई लेख विशुद्ध हास्यरस-पूर्ण और सुन्दर हुए हैं। व्यंग्य चित्र भी अच्छे रहे।

'आर्यमित्र' (होलिकाङ्क)— सम्पादक पं० हरिशङ्कर जी शर्मा, वार्षिक मूल्य ३।।) पता—आर्यमित्र कार्यालय, आगरा।

प्रति वर्ष की तरह 'आर्यमित्र' का इस वर्ष का होलिकाङ्क भी अच्छा निकला है। बल्कि रङ्ग-रूप, आकार-प्रकार आदि में विशेष और समयोपयोगी परिवर्तन हो जाने के कारण इस साल के 'आर्यमित्र' के होलिकाङ्क में कुछ निराला ही मज़ा रहा। हमें अपने सहयोगी का नवीन रूप देख कर बड़ी प्रसन्नता हुई।

माधुरी—सम्पादक, श्री० मातादीन शुक्ल, वार्षिक मू० ६।।) एक प्रति का मू० ।।=) पता—नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ।

फाल्गुन, तुलसी सम्वत् ३०९ की 'माधुरी' हमारे पास 'सम्मति के लिए' आई है। इसमें 'चाँद' के आकार के २७२ पृष्ठ हैं। काग़ज़ और छपाई साफ़ है। आवरण-पृष्ठ पर 'माधुरी' के नाम के उपयुक्त हकीम जी का एक सुन्दर बहुरङ्गा चित्र है। अन्दर भी कई रङ्गीन और एक-रङ्गे चित्र हैं। लेखों और कविताओं का चुनाव बहुत ही सुन्दर हुआ है। हिन्दी के कई विख्यात लेखकों के लेख हैं। सम्पादकीय टिप्पणियाँ भी यथेष्ट और सामयिक विषयों पर लिखी गई हैं। हास्य के नाम पर जो कई पन्ने व्यर्थ काले कर दिए गए हैं, वे अगर निकाल दिए जाएँ तो 'माधुरी' का यह अङ्क निःसङ्कोच सर्वाङ्ग सुन्दर निकला है।

वसुधा— सम्पादक श्री० वंशीलाल। वार्षिक मूल्य ५) 'चाँद' के आकार के ३८४ पृष्ठ, पता—वसुधा कार्यालय, जम्मू (काश्मीर)

यह नई मासिक पत्रिका अभी हाल से ही निकलने लगी है। अब तक इसकी चार संख्याएँ निकली हैं। सभी संख्याएँ सचित्र हैं। हिन्दी के अन्यान्य मासिकों की तरह 'वसुधा' भी सर्व-विषय-विभूषिता है। सम्पादन, छपाई और सफ़ाई आदि सभी दृष्टियों से 'वसुधा' होनहार प्रतीत होती है।

वैदिक विज्ञान—अवैतनिक सम्पादक श्री० प्रो० विश्वनाथ जी विद्यालङ्कार, वार्षिक मूल्य ४) प्रति अङ्क ।=) । पता—आर्य-साहित्य-मण्डल लि०, अजमेर।

यह वैदिक विज्ञान (मासिक पत्र) उपर्युक्त आर्य-साहित्य-मण्डल का मुख पत्र है। यह "वेद और उस पर आश्रित आर्ष ग्रन्थों के तत्वों पर गम्भीर अनुसन्धान, खोज, आलोचन, प्रत्यालोचन, तथा विशुद्ध वैदिक आर्ष सिद्धान्तों और आर्ष वैदिक सभ्यता का प्रकाशक, रक्षक और प्रचारक" है। यह 'चाँद' के आकार के २८२ पृष्ठों पर छपा करता है। इसमें छपे लेख इसके उद्देश्य के अनुरूप होते हैं। अब तक इसकी ६ संख्याएँ निकली हैं।

अमृत—मुख्य सम्पादक प्रो० गङ्गासिंह और सम्पादक श्री० भजनसिंह ज्ञानी, पृष्ठ-संख्या ८० वार्षिक मूल्य ३।।) पता—हिन्दी अमृत ऑफ़िस, जण्डियाला रोड, तरनतारन, पञ्जाब।

यह गुरु नानक के मतावलम्बियों का एकमात्र धार्मिक तथा आत्मिक मासिक पत्र अभी हाल ही से निकलने लगा है। इसका उद्देश्य गुरु नानक देव की वाणी का प्रचार है। इसमें इसी विषय के लेखादि छपते हैं। इसकी भाषा और छपाई आदि अच्छी है।
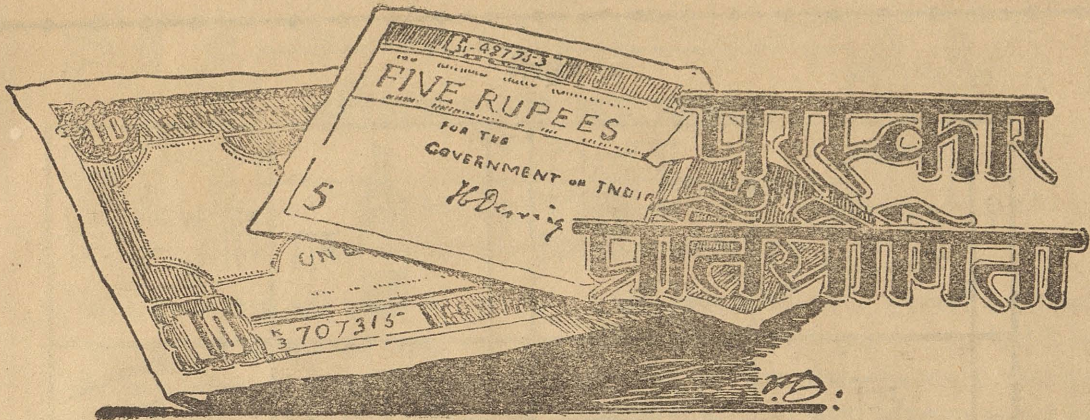
इस मास की पहेली

नियम

१—इस पहेली का उत्तर 'चाँद' के सभी पाठक भेज सकते हैं। जो ग्राहक हैं, उन्हें प्रत्येक उत्तर के साथ ।) का टिकट भेजना आवश्यक है और जो ग्राहक नहीं हैं उन्हें ।।।) का टिकट भेजना चाहिए! पाठकों को एक से अधिक उत्तर भेजने का भी अधिकार है।

२—नीचे छपी हुई पहेली में छः ख़ाने हैं। प्रत्येक ख़ाने में दो चित्र हैं। इन दोनों चित्रों के नाम को मिला कर एक शब्द बनता है। यदि चित्र के आगे या पीछे कुछ अक्षर लिखे हुए हैं, तो वे अक्षर चित्र के नाम में जोड़ देने चाहिए। यदि आगे या पीछे कोई अक्षर कटा हुआ है, तो वह चित्र के नाम में से निकाल देने चाहिए। उदाहरण के लिए; दूसरे ख़ाने में शराब की बोतल का चिन्ह है और उसके आगे लिखा है 'न'; इसलिए चित्र के नाम 'मद' में 'न' जोड़ कर 'मदन' हुआ। दूसरा चित्र बकरी का है, जो तलवार से काटी जा रही है। चित्र का नाम हुआ 'हनन'। इसके आगे 'मो' जोड़ कर और पीछे से 'न' निकाल कर 'मोहन' बना। दोनों को जोड़ कर 'मदनमोहन' हो गया।

३—उत्तर साफ़ हों, कटे-छटे न हों। पत्र-व्यवहार नियम के विरुद्ध होगा।

४—उत्तर ता० १५ मई तक आ जाने चाहिए।

पता—प्रतियोगिता-विभाग,
चाँद प्रेस, लिमिटेड, इलाहाबाद

५—जिसका उत्तर हमारे उत्तर से मिल जायगा, उसे नक़द २५) का पुरस्कार मिलेगा। कई उत्तर ठीक होने पर पुरस्कार बराबर-बराबर बाँट दिया जायगा। यदि किसी का उत्तर बिलकुल ठीक न होगा, तो सब से कम अशुद्धियों वाले उत्तरदाता को पुरस्कार मिलेगा।

६—चाँद प्रेस के कर्मचारियों को इसमें सम्मिलित होने का अधिकार नहीं है।

कूपन

१		२	मदनमोहन
३		४	
५		६	

ग्राहक-नं०————————

नाम————————

पता————————

मैंने 'चाँद' की प्रतियोगिता के नियम पढ़ लिए हैं। मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि मैं उनका पालन करूँगा और सम्पादक के निर्णय को स्वीकार करूँगा, तथा इस विषय में कोई पत्र-व्यवहार न करूँगा। (जो इस प्रकार की प्रतिज्ञा न करना चाहें, वे कृपया उत्तर न भेजें।)

पहेली
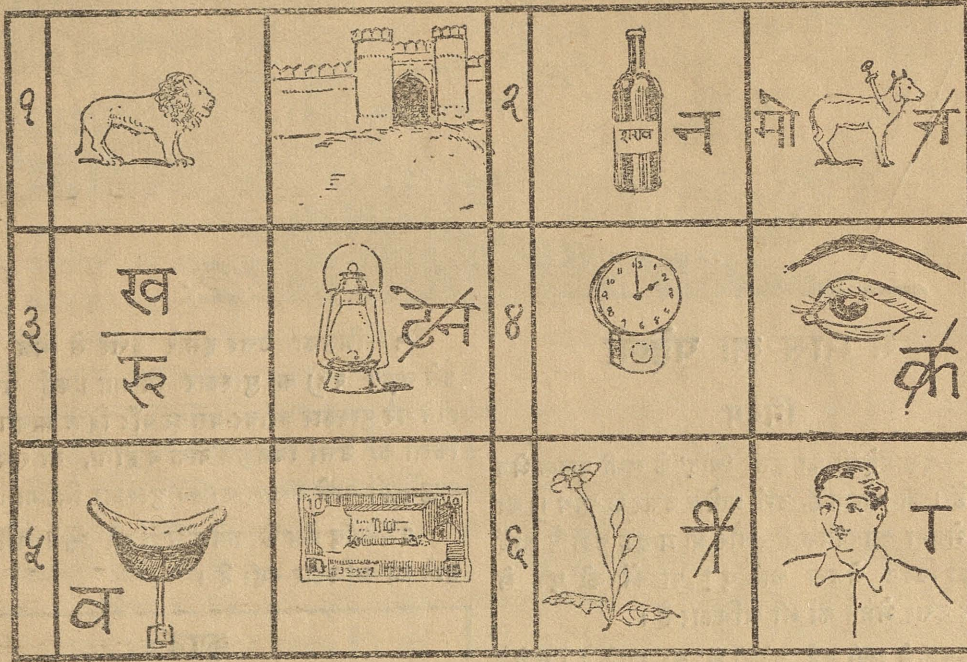
गत दिसम्बर सन् १९३२ की पहेली का ठीक उत्तर :—

❀	❀	▨	स	रि	ता	▨	▨	म	धु	र
❀	▨	स	म	▨	▨	का	म	ना	▨	▨
❀	▨	ड़	▨	प्र	थ	म	▨	▨	तै	ल
▨	स	क	ल	▨	▨	दे	व	र	▨	त
क	र	▨	▨	प्र	भा	व	▨	ज	ब	र
▨	स्व	रा	ज्य	▨		▨	प	नी	र	▨
अ	तो	त	▨	प	त	न	▨	▨	सा	ल
म	▨	को	य	ल	▨	▨	प्र	भा	त	▨
र	न	▨	▨	ट	स	र	▨	र	▨	आ
▨	▨	का	र	न	▨	▨	रा	त	▨	र
य	मु	ना	▨	▨	वा	रि	ज	▨	स्त	म्भ

प्रतियोगिता-फल

हमारे सुरक्षित उत्तर से मिलता हुआ एक भी उत्तर हमें नहीं मिला। पाँच सज्जनों के उत्तरों में तीन २ अशुद्धियाँ थीं। परन्तु तीन से कम अशुद्धियाँ किसी भी उत्तर में नहीं थीं, इसलिए पुरस्कार उन्हीं में बाँट दिया जायगा। उनके नाम तथा पते ये हैं :—

१—कुमारी ईश्वरदेवी गुप्ता (नं० १७५६७)

C/o श्री० राजकृष्णा, एम० ए०, लॉरेन्स रोड, अमृतसर (पञ्जाब)

२—पं० काशीरामसिंह (नं० २९८५७) छोटापाड़ा, रायपुर (सी० पी०)

३—श्री० रामदेवसिंह (नं० ३१६४९) C/o अधाराम कण्ट्राक्टर, डिगबाई (आसाम)

४—पं० धर्मदत्त विद्यार्थी, उपदेशक विद्यालय, गुरुदत्त-भवन, लाहौर (पञ्जाब) (ग्राहक नहीं)

५—श्रीमती सुवीरादेवी (नं० २८३१) C/o आर० एस० लाला बनवारीलाल जी, ५६, सी० के० आश्रम, मॉडल, टाउन लाहौर।

नोट :—तालिका में 1 Across की जगह भूल से ख़ाली न थी, वरन् जान-बूझ कर वैसा किया गया था।

[हिज़ होलीनेस श्री० वृकोदरानन्द जी विरूपाक्ष]

करम प्रधान विश्व करि राखा,
जो जस करई सो तस फल चाखा !

यद्यपि बाबा तुलसीदास की यह उक्ति बावन तोले पाव रत्ती ठीक है, परन्तु वर्णाश्रमियों के डेपुटेशन ने जब यही बात महालाट की सेवा में निवेदन की तो अख़बार वाले उनकी दिल्लगी उड़ाने लगे और बाज़-बाज़ ने तो उन्हें बेवक़ूफ़ तक कह डाला ! शिव ! शिव !!

❀

कुछ लोगों ने पूर्वजन्म में पाप किया था, इसलिए अल्लाह मियाँ ने इस जन्म में उन्हें अछूत बना कर वर्णाश्रमियों की लीद उठाने का काम सौंप दिया और पदवी दी 'हलालख़ोर' की । बरअक्स इसके जिनकी पुण्य की पोटली भारी थी, उन्हें वर्णाश्रमी बना कर हराम में हलुआ-पूरी चाबने की व्यवस्था कर दी । अब यह विचार करना आपका काम है कि 'हलालख़ोर' अच्छे हैं या 'हरामख़ोर !'

❀

हाँ, तो अछूत अपने पूर्व जन्मकृत कर्मों के फल भोग रहे हैं । लेहाज़ा अछूतपन के विरुद्ध क़ानून बनाना मानों विधाता की विधि-व्यवस्था में दस्तन्दाज़ी करना है । ऐसी दशा में अगर कहीं क़ानून पास हो गया और विधाता का अस्पृश्यता सम्बन्धी क़ानून टूटा तो वे ऐसे ऑर्डिनेन्स पास करेंगे कि महालाट साहब को भी पनाह माँगते फिरना पड़ेगा ।

❀

अस्पृश्यता गई तो ऊँच-नीच जातियों वाली वर्ण-व्यवस्था क्या कोंपर चाट कर जिएगी ? फिर तो ब्राह्मण विधाता के मुँह में, क्षत्रिय बाहुओं में, वैश्य जङ्घों में और शूद्र पैरों में समा जायँगे । बुढ़ौती के शरीर में जब यह करोड़ों की संख्या वाला जन-समूह घुसने लगेगा, तो बेचारे विधाता बाबा अफर कर मर जायँगे ; बड़ी विषम समस्या उपस्थित होगी ।

❀

ख़ैर, भगवान भला करें, सुहरवर्दी साहब का । क्योंकि अबकी आपने फिर कृपा करके कुछ दिनों के लिए सनातनधर्म की जान बचा दी । अर्थात् जिस समय असेम्बली में श्रीरङ्गऐयर अपना अस्पृश्यता सम्बन्धी बिल पेश करने वाले थे, उस समय सुहरवर्दी साहब ने एक शैतान की आँत सी लम्बी स्पीच देकर सारे समय का श्राद्ध कर दिया ! सनातन-धर्म की रक्षा के लिए मानों भगवती शारदा स्वयं आपकी जिह्वा पर चढ़ बैठी थीं ।

❀

चलो, अच्छा हुआ । एसेम्बली के आगामी अधिवेशन तक के लिए बिल वितरण का प्रस्ताव स्थगित रह गया । अपनी प्रार्थना से पत्थर की मूर्त्तियों को भी पिघला कर 'वरं ब्रूहि वरं ब्रूहि' कहवा लेने वाले वर्णाश्रमियों ने महालाट को तो पहले से ही प्रसन्न कर लिया है । बस, 'अब बात रही थोड़ी, ज़ीन लगाम घोड़ी !' काशी के महामहोपाध्यायों को चाहिए कि एक दिन शुभ मुहूर्त में कहीं एकत्र होकर गाली सहस्रनाम का पाठ आरम्भ कर दें और एक बार ज़ोर से सनातनधर्म की जय बोल दें । बस, बेड़ा पार !

❀

हमें यह जान कर प्रसन्नता हुई कि सुप्रसिद्ध 'प्रतिवादि भयङ्कर' मठ के महामहन्त श्री० अनन्ताचार्य जी के सभापतित्व में सनातनी पण्डितों ने यह सदनुष्ठान कर भी डाला है । अब आवश्यकता इस बात की है कि सनातनी विद्वानों की एक कमिटी बना दी जाए और उसे बता दिया जाए कि वह भठिहारख़ानों का दौरा करके उपर्युक्त सहस्रनाम के लिए उपयुक्त शब्दों का संग्रह कर डाले, ताकि आवश्यकता पड़ने पर फ़र्र-फ़र्र पारायण करने में कोई दिक़्क़त न होने पाए ।

❀

कुछ भी हो, दिल्ली की सनातनी सभा के बाद से अब लोगों को 'प्रतिवादि भयङ्कर' शब्द का अर्थ समझने

में कोई दिक़्क़त न पड़ेगी। क्योंकि प्रभुवर श्रीअनन्ताचार्य महोदय के चेलों ने सिद्ध कर दिया है कि अपने प्रतिवादी या विपक्षी को अनर्गल गालियाँ देना और कुकरौंछी के काटे हुए जन्तु-विशेष की तरह लाठियाँ लेकर इधर-उधर दौड़ना ही 'प्रतिवादि भयङ्करता' के प्रधान लक्षण हैं।

❀

युक्ति, तर्क, वाद, प्रतिवाद और शास्त्रार्थ द्वारा सत्यान्वेषण करना पण्डितों का काम हो सकता है, प्रतिवादि भयङ्करों को इन बातों से कोई मतलब नहीं। अल्लाह के फ़ज़्ल से उनकी भयङ्करता बनी रहे—नख-रद सुतीक्ष्ण हों, फिर धर्म क्या, वह चाहें तो धर्म के मरे बाप की भी रक्षा कर डालें। भला, किसको पड़ी है जो इनके सामने अपना मुँह नुचवाने जाएगा?

❀

परन्तु सुनते हैं, महामना मालवीय जी की त्रिवेणी-तट वाली सनातनी-सभा के महामन्त्री जी ने वर्णाश्रम-सभा को चैलेञ्ज दिया है कि आओ शास्त्रार्थ करें कि हरिजनों को मन्दिर आदि सार्वजनिक स्थानों में जाने का अधिकार है या नहीं? प्रतिवादि-भयङ्करी दल ने यह चैलेञ्ज स्वीकार तो कर ही लिया होगा। फलतः 'तबेले में लतिहाउज' का नज़ारा शीघ्र ही दिखाई देगा, आमीन! आमीन!!

❀

परन्तु सनातनी सभा के मन्त्री जी से हमारा निवेदन है कि भई, प्रतिवादि-भयङ्करों के सामने ज़रा सावधानी से जाना। पुराने ज़माने का बख़्तर या कवच तो आजकल कहाँ नसीब होगा, इसलिए कम से कम कोई मोटा कम्बल अवश्य ओढ़ लेना। क्योंकि उससे पैने नखों से शरीर की बहुत कुछ रक्षा हो सकेगी। अन्यथा आप जानें और आपका काम जाने।

❀

'रङ्गऐयर-बिल' के आफ़ते नागहानी से दादा सनातन-धर्म की—अन्ततः कुछ दिनों के लिए ही सही—रक्षा करके श्री० सुहरवर्दी तथा अन्य वक्ताओं ने अचार के मटके सी चिकनी वर्णाश्रमी तोंदों का बड़ा ही उपकार किया है। इसलिए वर्णाश्रम-स्वराज्य-सङ्घ वालों को चाहिए कि इन्हें 'सनातनधर्म-रक्षक' या 'धर्मधीर महावीर' की पदवी से विभूषित कर दें। अन्यथा अकृतज्ञता की कालिमा मनों गोबर-पानी ख़र्च करने पर भी दूर न होगी।

❀

मुर्दे को, उसके स्थान विशेष के फ़ालतू बालों को नोच कर, हलका कर लेने वाले इतिहास-प्रसिद्ध बुद्धिमानों की कहानी तो आपने सुनी होगी। माशा अल्लाह, 'रङ्गऐयर-बिल' में बाधा डाल कर एसेम्बली के धर्मवीरों ने यह प्रमाणित कर दिया है कि अभी उन बुद्धि-विशारदों का विमल वंश डूबा नहीं है—उनके नामलेवा अभी मौजूद हैं।

❀

इस घटना से यह साबित हो गया है कि यह बिल यजमान-प्रदत्त मालपूए से पली तोंदों के लिए ही नहीं, वरन् भारतीय राष्ट्रीयता की सौत के पुत्रों के लिए भी ख़तरनाक है। इसीलिए वे भी येन-केन-प्रकारेण थोड़ा सा अड़ङ्गा डाल देते हैं। इससे और कुछ न सही, दिल का थोड़ा सा बुग़ज़ ही निकल जाता है और लोगों को उनकी वंश-मर्यादा का थोड़ा सा परिचय प्राप्त हो जाता है। इसे क्या आप कोई कम लाभ की बात समझते हैं?

❀

बात यह है कि ये परम कुलीन सज्जन भारत के परम बन्धु हैं। इनका खाना, पीना, जीना—यहाँ तक कि लेक्चर देना तक केवल भारत की भलाई के लिए ही होता है। इनकी राय है कि श्री० रङ्गऐयर का बिल अगर पास हो जाएगा तो भारत में अशान्ति का भीषण दावानल धधक उठेगा। उसकी गरमी से सारी मोटी तोंदें पिघल कर पानी हो जाएँगी और सखी नौकरशाही को अपना लँहगा उठा कर मूँड़ पर रख लेना पड़ेगा।

❀

अस्पृश्यता अगर किसी प्रकार दूर हो गई तो इस अगणित उपजातियों वाली हिन्दू-जाति में नवजीवन का सञ्चार होगा, भावगत और प्राणगत परस्पर विच्छिन्न योग संयोग के रूप में परिणत हो जाएगा। उस समय अपना उल्लू सीधा करने की तमाम आशाएँ मर मिटेंगी। इसीसे ये बेचारे ताबमक़दूर इस चेष्टा में हैं कि यह अस्पृश्यता—यह भेदभाव बना रहे! परन्तु बेचारों के इस साधु-उद्देश्य की कोई दाद देने वाला नहीं।
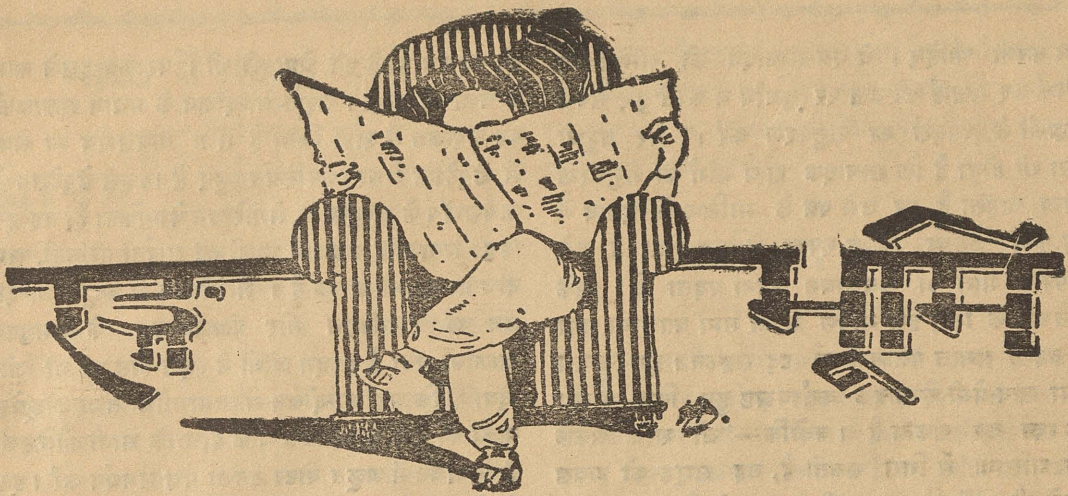
[सम्पादकीय]

हिन्दी-सम्पादक-सम्मेलन

इन्दौर के हिन्दी-सम्पादक-सम्मेलन के अध्यक्ष की हैसियत से प्रो० इन्द्र विद्यावाचस्पति ने जो भाषण दिया है, वह सभी हिन्दी-पत्रकारों के मनन करने योग्य है। यद्यपि विदेशों में पत्र-सम्पादन का पेशा बहुत उच्च तथा प्रतिष्ठित माना जाता है तथा उसमें आमदनी भी ख़ासी होती है, पर भारतवर्ष में और विशेषतया हिन्दी में सर्वथा इसके विपरीत अवस्था देखने में आती है। जहाँ अन्य देशों में इस कार्य के लिए पूर्ण विद्वान बहुदर्शी तथा प्रभावशाली व्यक्तियों को ढूँढ़ कर नियुक्त किया जाता है, वहाँ हमारे देश में कोई भी स्कूल या कॉलेज से तुरन्त का निकला २०-२२ साल का युवक सम्पादक की कुर्सी पर जा बैठता है और राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक आदि सभी समस्याओं पर सम्मति देने का अपने को अधिकारी समझ लेता है। यहाँ पत्र-सम्पादकों की आमदनी भी इतनी कम है कि विद्वान तथा बहुज्ञ व्यक्ति कदाचित् ही उस तरफ़ निगाह उठाते हैं और प्रायः साधारण योग्यता के लोगों से ही काम चलाना पड़ता है। एक और दोष, जो हमारे यहाँ के पत्रकारों में घुसता जाता है, वह स्वार्थ-साधन के लिए समाचार-पत्रों का उपयोग करना है। ऐसे लोगों की आलोचना करते हुए सम्पादक-सम्मेलन के अध्यक्ष ने सत्य ही कहा है कि:—

"पश्चिम में और भारत में भी पत्रों का एक सम्प्रदाय है, जिसका नाम 'गठकतरा सम्प्रदाय' रक्खा जाय तो अनुचित न होगा। उस सम्प्रदाय के लोग रुपए के लोभ से अनुचित लेखों को प्रकाशित करते और उचित विषयों को प्रकाशित होने से रोकते हैं। वह हर एक समाचार का दाम चाहते हैं। वह किसी राजा या धनी को इसलिए कोसते हैं कि पैसे मिलें—वह किसी धनी आदमी के विरुद्ध इसलिए नहीं लिखते कि उनके मुँह में मीठा डाला जा चुका है। ऐसा करने वाले सम्पादक सम्पादक नहीं, गठकतरे हैं।"

वास्तव में समाचार-पत्रों का उद्देश्य लोकहित और लोक-सेवा ही है। वे जनमत को सुमार्ग पर चलाने वाले हैं। यदि वे ही स्वार्थ के वशीभूत होकर अन्याय का समर्थन करने लगें तथा असत्य को सत्य सिद्ध करने की चेष्टा करें, तो सर्वसाधारण को भ्रम में पतित होने से किस प्रकार बचाया जा सकता है। यह सच है कि अब समाचार-पत्रों का कार्य भी एक व्यापार बन गया है तथा उसके लिए काफ़ी पूँजी की आवश्यकता होती है, तो भी यह स्वीकार नहीं किया जा सकता कि पत्र की आमदनी बढ़ाने अथवा रुपया कमाने के लिए सत्य और असत्य तथा न्याय और अन्याय के अन्तर पर परदा डाल दिया जाय। इसलिए पत्रकारों से अध्यक्ष की यह अपील सर्वथा युक्तियुक्त है कि उनको—"बड़ी सावधानीपूर्वक अपनी आत्मा की

रक्षा करनी चाहिए। वे पत्र-सम्पादन को आजीविका समझ कर सचाई को उस पर क़ुर्बान न करते हुए सच्चे ब्राह्मणों के आदर्श का अनुकरण करें।" पर बहुधा ऐसा भी होता है कि सम्पादक सत्य मार्ग का अनुकरण करना चाहता है, पर उसे पत्र के मालिक के दबाव में पड़ कर, जिसका उद्देश्य रुपया कमाना होता है, उसे विपरीत मार्ग का अवलम्बन करना पड़ता है। इसके प्रतिकार के लिए इस भाषण में जो मार्ग बतलाया गया है, वह है समस्त पत्रकारों का दृढ़ सङ्गठन। इस उपाय द्वारा सत्य-प्रेमी सम्पादक कर्तव्यभ्रष्ट हुए बिना आत्मा की रक्षा कर सकता है। क्योंकि—"जो शक्ति अकेले को आसानी से गिरा सकती है, वह समूह को प्रयत्न करके भी नहीं गिरा सकती।" इसके सिवा इस पेशे की उन्नति के लिए अध्यक्ष ने एक प्रस्ताव और किया है और वह है सम्पादन-कला के एक विद्यालय की स्थापना। ऐसे विद्यालय द्वारा सम्पादन-क्षेत्र में प्रवेश करने वाले व्यक्ति पहले से इस विषय का कुछ अभ्यास कर लेंगे तथा उनको इसके नियमों का भी ज्ञान हो जायगा। ऐसे लोग कम से कम उन भद्दी भूलों से बच जायँगे, जिन्हें आजकल के बहुत से सर्वथा अनुभवहीन सम्पादक बनने वाले कर डालते हैं। सम्मेलन ने और भी कई उपयोगी प्रस्ताव पास किए हैं, जिनमें से एक हिन्दी न्यूज़ एजेन्सी की स्थापना तथा दूसरा समाचार-पत्र डायरेक्टरी का निर्माण है। यदि सम्मेलन इन कार्यों को पूरा कर सकने और हिन्दी-सम्पादकों के सङ्गठन को सुदृढ़ नींव पर स्थापित करने में सफल हुआ, तो उसके इन्दौरी संयोजक अवश्य ही हिन्दी-संसार के सदैव के लिए कृतज्ञता-भाजन रहेंगे।

❀ ❀ ❀

अछूत और सनातनी

महात्मा गाँधी का उठाया अछूतोद्धार आन्दोलन जैसे-जैसे ज़ोर पकड़ता जाता है और उसके प्रति जनता की सहानुभूति बढ़ती जाती है, वैसे-वैसे ही उन लोगों की, जो जनता की अन्धश्रद्धा से लाभ उठा कर अपना पेट भरते हैं, घबराहट बढ़ती जाती है। आरम्भ में गाँधी जी को गालियाँ देकर तथा कॉङ्ग्रेस पर स्वार्थपरता का इलज़ाम लगा कर उन्होंने इस आन्दोलन को बदनाम करने की चेष्टा की थी। पर जब इससे काम न चला तो उन्होंने अछूत-आन्दोलन के प्रधान सञ्चालकों पर अदालत में दावा किया है तथा वायसरॉय की सेवा में डेपुटेशन लेकर उपस्थित हुए हैं। इस डेपुटेशन ने वायसरॉय के सम्मुख जो मेमोरेण्डम पेश किया है, वह इन 'कट्टर सनातनी' कहलाने वालों की मूर्खता ही नहीं, वरन् नीचता का भी द्योतक है। मेमोरेण्डम में अछूत-आन्दोलन को सोशलिज़्म और बोलशेविज़्म के समतुल्य बतलाया गया है। इन लोगों ने इस बात पर भी ज़ोर दिया है कि यह आन्दोलन महात्मा गाँधी तथा कॉङ्ग्रेस वालों की एक राजनीतिक चाल है, ताकि भावी कौन्सिलों के निर्वाचन में अछूत वोटर उनका पक्ष समर्थन करें। इस निर्लज्जतापूर्ण असत्य भाषण का यही आशय हो सकता है कि अछूत-आन्दोलन के प्रति सरकार के हृदय में विद्वेष का भाव उत्पन्न हो जाय और वह इस आन्दोलन की सफलता के न्यायोचित मार्ग में अपने विशेष अधिकार द्वारा बाधा डाले। मेमोरेण्डम में धर्म के एक गूढ़ रहस्य का भी उद्घाटन किया गया है। उसमें बतलाया गया है कि अछूत लोग अपने पूर्व जन्म के सञ्चित पाप-कर्मों के फल से ऐसी नीच सेवा करने वाली जातियों में जन्म लेते हैं। इसलिए कोई बाहरी शक्ति अथवा क़ानून बनाने वाली व्यवस्थापक सभा उनका उद्धार नहीं कर सकती। हम नहीं जानते कि वायसरॉय और उनके पार्श्ववर्त्ती लोग इस शास्त्रीय दलील को सुन कर मुस्कराए होंगे या नहीं, पर हम इन कट्टरपन्थियों से यह पूछना चाहते हैं कि जब वे 'कर्म-सिद्धान्त' पर ऐसा अटल विश्वास रखते हैं तो वे स्वयं इस आन्दोलन का विरोध करने के लिए अदालतों और वायसरॉय की शरण में क्यों दौड़ते फिरते हैं? अगर अछूतों के 'कर्म' में ऐसी दुर्दशा और पतित अवस्था में रहना ही लिखा होगा तो आन्दोलन होने और क़ानून बन जाने पर भी वे जैसे के तैसे ही बने रहेंगे। सच तो यह है कि ये धर्म और कर्म की दलीलें ढकोसला हैं और वास्तविक कारण पेट पर आघात होने का भय है। क्योंकि यह स्पष्ट है कि अगर यह धर्म-कर्म तथा जातपाँत का 'तिलस्म' टूट गया, तो मख़मली गद्दी पर बैठ कर पैर पुजाने वाले महन्तों और आचार्यों आदि को कोई कौड़ी का तीन भी न पूछेगा।

❀ ❀ ❀

भारत में मज़दूर-पार्टी

भारत के भावी शासन-विधान का चाहे और कुछ फल न निकले पर उससे इतना अवश्य होगा कि कितने ही ऐसे लोगों को देश के राजनीतिक जीवन में भाग लेने का अवसर मिल जायगा, जो अब तक उससे यत्नपूर्वक पृथक् रक्खे गए थे। ऐसे लोगों में सर्व-प्रथम स्थान स्त्रियों और मज़दूरों का समझना चाहिए। यद्यपि वर्तमान कौन्सिलों में भी मज़दूरों के दो-एक प्रतिनिधियों को स्थान दिया गया है, पर वे सरकार द्वारा मनोनीत होते हैं और उनको इतनी शक्ति प्राप्त नहीं होती कि सरकार की शासन-नीति पर किसी तरह का प्रभाव डाल सकें। वे केवल मज़दूरों की शिकायतों को प्रार्थना के रूप में सरकारी अधिकारियों तथा कौन्सिलों के सदस्यों के सम्मुख पेश कर सकते हैं, जो अपनी इच्छानुसार उनको स्वीकृत अथवा अस्वीकृत करते हैं। पर नवीन शासन-विधान के अनुसार जब बहुसंख्यक मज़दूरों को भी 'वोट' देने का अधिकार प्राप्त हो जायगा तब अवस्था ऐसी न रहेगी। उस समय कौन्सिलों में उनके चुने प्रतिनिधियों का एक दल रहेगा जो उनके अधिकारों के लिए उसी प्रकार लड़ेगा, जिस प्रकार अन्य राजनीतक दलों के प्रतिनिधि लड़ते हैं। धीरे-धीरे ऐसा समय भी आ सकता है जब कि शासन की बागडोर मज़दूर प्रतिनिधियों के ही हाथ में आ जाय और श्रम-जीवियों के हितों को सर्व प्रथम स्थान प्रदान किया जाय। यह कोई असम्भव कल्पना नहीं है और इस विषय में स्वयं इङ्गलैण्ड का उदाहरण हमारे सामने है। आज से २५ वर्ष पहले जहाँ एक मात्र मि० केयर हार्डी पार्लामेण्ट में मज़दूरों के प्रतिनिधि थे। आज उस दल के सदस्यों की संख्या दो सौ तक जा पहुँची है और एक मज़दूर प्रतिनिधि को ही मन्त्रि-मण्डल का प्रधान बनाया गया है। इस दृष्टि से भारत में मज़दूर-पार्टी की स्थापना अवश्य ही मङ्गलजनक समझी जायगी। हर्ष का विषय है कि इस कार्य का श्रीगणेश मद्रास प्रान्त से हो गया है। वहाँ के एक भूतपूर्व चीफ़ मिनिस्टर तथा अन्य सुप्रसिद्ध राजनीतिज्ञों की अध्यक्षता में मज़दूर-पार्टी की स्थापना कर दी गई है। आशा है, अन्य प्रान्त भी मद्रास का अनुकरण करने में पीछे न रहेंगे और शीघ्र ही वह दिन आएगा जब कि यहाँ की सुसङ्गठित मज़दूर-पार्टी राजनीतिक क्षेत्र में एक महत्व-पूर्ण स्थान ग्रहण करेगी।

❋ ❋ ❋

सच्ची शिक्षा का अभाव

भारतवर्ष के शिक्षा-विशारदों में प्रायः इस प्रश्न पर मतभेद रहा करता है कि भारतवर्ष के विश्वविद्यालयों से परीक्षोत्तीर्ण होने वाले छात्रों की संख्या आवश्यकता से अधिक है या नहीं। जो लोग इस प्रश्न पर देश के शिक्षितों में फैली हुई बेकारी की दृष्टि से विचार करते हैं, वे वर्तमान अवस्था में विश्व-विद्यालयों द्वारा प्रतिवर्ष हज़ारों ग्रेजुएट तैयार करने के विरोधी हैं। पर जो भारतवर्ष में फैली अशिक्षा की दृष्टि से विचार करते हैं और यहाँ की अवस्था की तुलना अन्य देशों से करते हैं, उनका मत है कि यहाँ के ३० करोड़ अधिवासियों की दृष्टि से इस देश में स्थापित १८ विश्वविद्यालयों तथा उनमें उत्तीर्ण होने वाले ग्रेजुएटों की संख्या नगण्य है और उसकी जितनी ही वृद्धि हो उतना ही कल्याणप्रद है। इस सम्बन्ध में वे इङ्गलैण्ड का उदाहरण देते हैं, जहाँ ४॥ करोड़ जन-संख्या के लिए १७ विश्वविद्यालय मौजूद हैं। यही दशा फ्रान्स जर्मनी, अमेरिका आदि की है। इस दृष्टि से विचार करने पर भारतवर्ष शिक्षा में अत्यन्त पिछड़ा जान पड़ता है और यही प्रतीत होता है कि यदि भारतवर्ष इन उन्नत देशों के समकक्ष होना चाहता है तो उसे अवश्य ही शिक्षा के क्षेत्र में विशेष रूप से अग्रसर होना चाहिए। इन दोनों पक्षों की बहस को सुन कर प्रत्येक देश-हितैषी के चित्त में यह संशय उत्पन्न हो जायगा कि वास्तव में कल्याणजनक मार्ग कौन सा है। इसे तो कोई समझदार व्यक्ति अस्वीकार नहीं कर सकता कि भारतवर्ष में शिक्षा का बहुत अभाव है और उसके अनेक कष्टों तथा त्रुटियों का मूल कारण अशिक्षा ही है। पर साथ में यह भी कहना आवश्यक जान पड़ता है कि भारतवर्ष में आज-कल जैसी शिक्षा दी जा रही है, वह अत्यन्त त्रुटिपूर्ण है और उसके प्राप्त करने में जितना अधिक समय तथा धन

व्यय किया जाता है तथा जितना परिश्रम करना पड़ता है, उसे देखते हुए उससे लाभ बहुत कम होता है। वर्तमान समय में विश्वविद्यालयों में से निकलने वाले ग्रेजुएटों में से अधिकांश पुस्तक-कीट ही होते हैं, व्यवहारिक ज्ञान उनमें बहुत कम देखा जाता है। ऐसे व्यक्ति जब संसार में प्रवेश करते हैं तो वे देश और समाज का उपकार तो क्या अपना जीवन-निर्वाह भी भली-भाँति नहीं कर सकते। इसलिए हमारी सम्मति में विश्वविद्यालयों तथा ग्रेजुएटों की संख्या का विरोध करने के बजाय शिक्षा-प्रणाली का विरोध करना समुचित जान पड़ता है। क्योंकि यदि ये विश्वविद्यालय अपने विद्यार्थियों को इस प्रकार की शिक्षा प्रदान करें, जिससे उनमें जीवन-संग्राम में सफलता प्राप्त कर सकने की यथोचित योग्यता उत्पन्न हो तो कोई ऐसी शिक्षा का विरोध नहीं करेगा। ऐसे नवयुवक देश पर भार-स्वरूप होने के बजाय उसे उन्नति के मार्ग में अग्रसर करने वाले सिद्ध होंगे और उनकी शिक्षा अपने ही लिए नहीं वरन् अपने कम योग्यता रखने वाले भाइयों के लिए भी हितकर होगी।

❀ ❀ ❀

भारत में चाय का व्यवसाय

भारतवर्ष के निर्यात-व्यवसाय में चाय एक प्रधान वस्तु है। सन् १९३०-३१ में ३५ करोड़ ७० लाख पौण्ड चाय विदेशों को भेजी गई थी, जिसका मूल्य कम से कम १५-१६ करोड़ रुपए से कम न होगा। इस व्यवसाय से कई लाख मज़दूरों को रोटी भी मिलती है। इस कारबार में लाभ काफ़ी है। शेयर-होल्डरों को २० सैकड़े से लेकर २०० सैकड़े तक का मुनाफ़ा मिल जाता है। एक चाय-बागान में, जिसे सन् १९२१ में २५,००० रुपए की पूँजी से जारी किया गया था, दस वर्ष के भीतर २ लाख ७१ हज़ार मुनाफ़ा मिला और सम्पत्ति का परिमाण २५ हज़ार से ३ लाख तक जा पहुँचा। चाय का प्रचार भी इन दिनों बढ़ता जाता है। सन् १९२१ में जहाँ इस देश में ३ करोड़ १० लाख पौण्ड चाय ख़र्च हुई थी, सन् १९३२ में उसका परिमाण दुगने से अधिक अर्थात् ६ करोड़ ५० लाख पौण्ड हो गया। इस प्रकार इस व्यवसाय के सब तरह से लाभजनक होते हुए भी, खेद है कि हमारे देश-भाइयों ने इस तरफ़ बहुत कम ध्यान दिया है और इस पर प्रायः यूरोपियनों का ही एकाधिकार है। इस देश के ४,७४२ चाय-बागानों में से केवल ५२१ भारतीयों के अधिकार में हैं और ३९ करोड़ १० लाख पौण्ड चाय में से केवल ५ करोड़ ५० लाख पौण्ड चाय इन बगीचों में उत्पन्न होती है। चाय के व्यवसाय का सञ्चालन करने वाली जो तीन संस्थाएँ—इण्डियन टी एसोसिएशन, कलकत्ता टी ब्रोकर्स एसोसिएशन और इण्डियन टी सेस कमिटी—इस देश में हैं उन पर भी यूरोपियनों का ही प्रभुत्व है। भारतीय चाय उत्पन्न करने वालों को इन्हीं संस्थाओं की कृपा पर आधार रखना पड़ता है और उन्हीं के द्वारा तमाम माल बेचना पड़ता है। यह अवस्था सन्तोषजनक नहीं कही जा सकती। इसका अर्थ यह है कि इस व्यवसाय से भारत को प्रतिवर्ष जो कुछ करोड़ रुपए का लाभ होता जान पड़ता है, वह वास्तव में विदेशियों की जेब में जाता है और एक प्रकार जहाँ का तहाँ पहुँच जाता है। हमारे देश के उद्योगी तथा व्यवसाय-कुशल व्यक्तियों को इस तरफ़ ध्यान देना चाहिए।

❀ ❀ ❀

पुरलिया का कुष्ठाश्रम

भारत में ईसाई-धर्म का प्रचार-कार्य करने वाले मिशनरियों ने यद्यपि स्कूल, कॉलेज, अस्पताल आदि की स्थापना करके कितने ही लोकोपकारी कार्यों की जड़ जमाई है, पर उनके द्वारा स्थापित कुष्ठाश्रमों से उनके आदर्श मानव-प्रेम तथा सहृदयता का जितना अधिक परिचय मिलता है उतना और किसी कार्य से नहीं मिल सकता। इन कुष्ठाश्रमों में सुशिक्षित यूरोपियन पुरुष और महिलाएँ ऐसे मैले-कुचैले तथा असाध्य कोढ़ियों की अपने हाथों से सेवा-शुश्रूषा करती हैं, जिनको उनके सम्बन्धी भी त्याग देते हैं और विवाहित पत्नी भी जिनका स्पर्श करने में सङ्कोच करती है। ये यूरोपियन महिलाएँ जिनको 'सिस्टर्स' कहते हैं, अपने

हाथों से इन कोढ़ियों के बहते हुए घावों को धोती-पोंछती हैं, उनकी मरहम-पट्टी करतीं, उनको नहलाती-धुलातीं तथा उनको किसी प्रकार का कष्ट न हो, इसकी चेष्टा करती हैं। यद्यपि कुछ लोग इस सम्बन्ध में यह एतराज़ करते हैं कि इन ईसाई कार्यकर्ताओं का उद्देश्य इन रोगियों को अपने धर्म में दीक्षित करना होता है, पर जिन लोगों को हमने सड़क पर डाल दिया है और जिनकी परछाईं पड़ना भी हम बुरा समझते हैं, यदि ईसाई मिशनरी उनको लेकर गले से लगाते हैं और घृणा करने के बजाय उनकी सेवा-शुश्रूषा करते हैं, तो ऐसे लोगों का झुकाव उस धर्म की तरफ़ हो जाना स्वाभाविक ही है और इसके लिए हम किसी पर दोषारोपण नहीं कर सकते। वरन् ये मिशनरी ऐसे भयङ्कर रोग में ग्रस्त व्यक्तियों को, जिनका प्रबन्ध हम नहीं कर सकते, अपने प्रबन्ध में लेकर सर्वसाधारण की इस छुतैल बीमारी के प्रकोप से रक्षा करते हैं, इसके लिए वे हमारे धन्यवाद के पात्र ही माने जायँगे। इस प्रकार के एक कुष्ठाश्रम का, जो बिहार प्रान्त के पुरलिया नगर में है, वर्णन 'विशाल-भारत' के सम्पादक श्री० बनारसीदास चतुर्वेदी ने हमारे पास भेजा है। उससे विदित होता है कि उस आश्रम में ७५८ कोढ़ी हैं। इस आश्रम के प्रबन्धकर्ता मि० ए० डोनल्ड मिलर हैं, जिन्होंने सांसारिक वैभव को लात मार कर अपना जीवन इन भाग्यहीन प्राणियों की सेवा में अर्पित कर दिया है। आश्रम में इस बात का बड़ा पक्का प्रबन्ध किया गया है कि कोढ़ियों के बच्चे उनसे सर्वथा अलग रक्खे जायँ, ताकि उन पर इस छुतैल बीमारी का प्रभाव न पड़े। यहाँ पर बच्चों को पढ़ना और दस्तकारी सिखलाई जाती है। लड़कियाँ कपड़ा बुनना तथा गृह-कार्य सीखती हैं। कितने ही कोढ़ी खेती का काम भी करने लग गए हैं। आश्रम के सञ्चालकों का इस बात पर सदा ध्यान रहता है कि आश्रम के निवासी अपने को भिखारी न समझें और उनके हृदय में स्वाभिमान का भाव जाग्रत हो। इसलिए वे प्रत्येक आश्रमवासी को प्रति सप्ताह कुछ चावल तथा कुछ आने पैसे दे देते हैं, जिसे वे स्वतन्त्रतापूर्वक ख़र्च कर सकते हैं। इन पैसों में से वे लोग कुछ बचा भी लेते हैं और उसे दूसरे लोगों के सहायतार्थ व्यय करते हैं। यहाँ पर कुष्ठ रोग का इलाज करने का जो अस्पताल है, उसमें प्रति वर्ष हज़ारों रोगियों को दवा का इञ्जेक्शन दिया जाता है। सन् १९३१ में ऐसे प्रायः तीस हज़ार इञ्जेक्शन देने पड़े थे। यद्यपि इस संस्था का काम बहुत विस्तृत अवस्था में है, पर उसके कार्यकर्ता नामवरी और विज्ञापनबाज़ी से दूर रह कर ऐसा चुपचाप काम करते हैं कि बाहरी दुनिया को इसका नाम भी अच्छी तरह विदित नहीं। इसका समस्त व्यय प्रायः विदेशों से प्राप्त धन से चलता है, और सरकार से भी कुछ सहायता मिलती है। पर भारतीयों से नाम मात्र को थोड़ा सा दान प्राप्त होता है। यदि इस संस्था को कुछ अधिक आर्थिक सहायता मिले तो उसका कार्य-क्षेत्र और भी व्यापक हो सकता है और जिन अनेक कोढ़ियों को आज आश्रम से लौटा देना पड़ता है, उन्हें भी वहाँ स्थान मिल जाय। पर खेद का विषय है कि हमारे देश-भाई अन्य अनेक सद्गुणों के साथ दान देने के लिए सुपात्र और कुपात्र के अन्तर को भी भूल गए हैं। वे दूध-मलाई खाकर दुराचार की वृद्धि करने वाले साधुओं तथा निरर्थक मन्दिरों के लिए करोड़ों रुपए ख़र्च कर डालते हैं, पर जो लोग टुकड़े-टुकड़े को तरसते हैं उन्हें प्रायः दुत्कार देते हैं। हम इस सम्बन्ध में श्री० बनारसीदास जी के इस कथन से सर्वथा सहमत हैं कि "यदि भारत में कोई संस्था दान की पात्र है तो निस्सन्देह यह आश्रम है। बाँधने के लिए पट्टी (Bandage), पहिनने के लिए कपड़े, पढ़ने के लिए सात्विक साहित्य, खाने के लिए अन्न, दवा के लिए पैसा, जो कुछ भी सहायता इस आश्रम की, जिससे बन सके, अवश्य करनी चाहिए।"*

❀ ❀ ❀

द्विवेदी-मेला

हर्ष का विषय है कि आधुनिक हिन्दी-साहित्य के आचार्य पण्डित महावीरप्रसाद जी द्विवेदी के सम्मानार्थ जिस द्विवेदी-मेले की योजना प्रयाग के कुछ उत्साही सज्जनों ने की थी, उसका मई के आरम्भ में

* सहायता भेजने का पता :—A. D. Miller, Purulia, Bihar.

होना निश्चित हो गया है और नियमित रूप से तैयारी की जाने लगी है। मेले में साहित्य-चर्चा के अलावा कवि-सम्मेलन, वाद-विवाद तथा देशी खेलों का भी आयोजन किया गया है। एक पूजनीय तथा वयोवृद्ध साहित्य-सेवी की कृतियों का, जिसने अपना समस्त जीवन मातृ-भाषा की उन्नति के लिए अर्पण कर दिया है, इस प्रकार समादर करना उचित ही है, बशर्ते आगे चल कर लोग इसे भी 'परम्परा की प्रथा' का रूप न दे दें। दरअसल इस प्रकार की सम्वर्द्धना उसी दशा में शोभा देती है, जब उसकी प्रेरणा हमारे हृदय में स्वयमेव उत्पन्न हो। किसी की नक़ल करके या किसी के अनुरोध करने से इस प्रकार के जो समारोह किए जाते हैं उनकी विशेषता नष्ट हो जाती है। हम आशा करते हैं कि आचार्य द्विवेदी जी के सम्मानार्थ किया जाने वाला यह उत्सव सब प्रकार की कृत्रिमता से रहित, उन्हीं के स्वरूप तथा महत्व के अनुकूल, गम्भीरतापूर्वक सम्पन्न किया जायगा। जो सज्जन इस कार्य को सम्पन्न करने के लिए परिश्रम कर रहे हैं, वे समस्त हिन्दी-प्रेमियों के प्रशंसा-भाजन हैं।

❀ ❀ ❀

स्वदेशी मिल वालों को चेतावनी

जापान से आने वाले माल ने इस देश के स्वदेशी वस्त्र-व्यवसाय को कैसी सङ्कटपूर्ण अवस्था में डाल दिया है, इसका पता इससे लग सकता है कि ऐसे देश-व्यापी स्वदेशी आन्दोलन तथा जापानी कपड़े पर ५० सैकड़ा की चुङ्गी होने पर भी इस देश की सूत कातने तथा कपड़ा बुनने वाली मैशीनों का पाँचवाँ भाग बन्द पड़ा है। बम्बई के कई दर्जन कारख़ानों में ताला पड़ चुका है और लाखों मज़दूर बेकार घूम रहे हैं। जब इस समय ऐसी अवस्था है तो स्वदेशी आन्दोलन के शिथिल हो जाने या चुङ्गी के कम हो जाने पर कैसी अवस्था होगी, उसकी कल्पना सहज ही में की जा सकती है। यदि देशी मिलों के मालिक समझते हों कि जनता तथा सरकार इसी प्रकार सदैव उनका समर्थन तथा सहायता करती रहेगी तो यह उनकी बड़ी भूल है। एसेम्बली के वर्तमान अधिवेशन में ही आगे के छः महीनों के लिए जापानी माल पर चुङ्गी को क़ायम रखने का प्रस्ताव बड़ी मुश्किल से पास हो सका है। वहाँ उपस्थित सदस्यों ने स्पष्ट कहा कि वे इस प्रकार ग़रीब लोगों की हानि करके मिल वालों के फ़ायदे का समर्थन अधिक समय तक नहीं कर सकते। इसलिए मिल वालों का कर्तव्य है कि वे अभी से सावधान होकर अपने व्यवसाय के प्रबन्ध में ऐसा सुधार करें, जिससे उनका ख़र्च कम हो और वे लोगों के हाथ सस्ते दर में माल बेच सकें। पर इसका यह अर्थ नहीं है कि वे ग़रीब मज़दूरों का पेट काटें। क्योंकि अगर उनके मज़दूर उनसे सन्तुष्ट न रहेंगे तो कारबार की उन्नति हो ही नहीं सकती। इसका उपाय केवल वर्तमान समय की अपेक्षा अधिक उत्तम सङ्गठन तथा अनावश्यक मैनेजिङ्ग एजेण्ट, दलाल, आढ़तिए आदि को कम करना है।

❀ ❀ ❀

स्वदेशी फ़िल्म की सफलता

हाल में कलकत्ते के 'न्यू थियेटर्स लिमिटेड' की जिस 'पूरन भक्त' फ़िल्म का प्रदर्शन प्रयाग के 'चित्रा' सिनेमा-भवन में किया गया था, वह अभिनय तथा गाने की दृष्टि से अद्वितीय सिद्ध हुआ है। इलाहाबाद जैसे शहर में उसका लगातार कितने ही दिनों तक चलते रहना और दर्शकों का स्थानाभाव से लौट जाना बतलाता है कि साधारण जनता ने उसे बहुत पसन्द किया है। 'पूरन भक्त' की कहानी वैसे भी बहुत लोकप्रिय है और इस सुन्दर फ़िल्म के रूप में उसका आकर्षण कई गुना अधिक बढ़ गया है।

सचित्र सामाजिक मासिक पत्रिका

वर्ष ११, खण्ड १

नवम्बर, सन् १९३२ से अप्रैल, सन् १९३३ ई० तक

सम्पादक—

मुन्शी नवजादिकलाल जी श्रीवास्तव

प्रकाशक :—

चाँद प्रेस, लिमिटेड

चन्द्रलोक—इलाहाबाद

वार्षिक चन्दा ६॥)]   [छःमाही चन्दा ३॥)

Printed and Published for and on behalf of

THE CHAND PRESS, LIMITED

BY

MUNSHI NAUJADIK LAL SRIVASTAVA, (Editor),

AT

THE FINE ART PRINTING COTTAGE

28, Edmonstone Road—Chandralok

Allahabad

१—गद्य

❀ ❀ ❀

रङ्ग-भूमि

(सम्पादकीय)

❀ ❀ ❀

विविध-विषय

❀ ❀ ❀

सम्पादकीय विचार

❀ ❀ ❀

२—पद्य

चित्र-सूची

तिरङ्गे

आर्ट पेपर पर रङ्गीन

सादे

निम्न-लिखित नए ग्राहकों का चन्दा फ़रवरी तथा मार्च माह में प्राप्त हुआ है। ग्राहकों को चाहिए कि वे अपने नम्बर स्मरण रक्खें और पत्र-व्यवहार के समय इसे अवश्य लिखा करें। बिना ग्राहक-नम्बर के पत्रों की उचित कार्यवाही करना किसी भी दशा में सम्भव नहीं है।

ग्राहक-नम्बर	पता	प्राप्त रक़म
३२२४४	चौबे सतकूरदास राव, पो० भरथना	६॥)
३२२४५	बाबू कामताप्रसादसिंह, औरङ्गाबाद (गया)	,,
३२२४७	कैप्टेन राजा दुर्गानारायणसिंह, तीर्वा, फ़तेहगढ़	६)
३२२४८	श्रीयुत काशीराम, पो० हरीयाना	६॥)
३२२४९	सेक्रेटरी आर्यसमाज, पो० घिरोर (मैनपुरी)	५)
३२२५०	श्रीयुत श्यामसुन्दरलाल, पो० काकवन (कानपुर)	६॥)
३२२५१	श्रीमती सावित्रीदेवी भाटिया, इटावा	३॥)
३२२५२	श्रीयुत मथुराप्रसाद, पो० सुपौल	३)
३२२५३	मास्टर भगवानस्वरूप, झूनझुनू	६॥)
३२२५४	श्रीयुत बी० आर० गुप्त, काकोरी, (लखनऊ)	,,
३२२५५	बाबू गङ्गानारायण जी शुक्ल, अजमेर	,,
३२२५६	श्रीयुत द्वारकादास गुप्त, अलवलपुर (जालन्धर)	३॥)
३२२५७	हेडमास्टर, के० एच० ई० स्कूल इस्लामपुर, अतासराय (पटना)	६॥)
३२२५८	श्रीयुत गोविन्दसिंह राजपूत, जयपुर स्टेट	,,
३२२५९	एस० अमरसिंह, पो० घुघली (गोरखपुर)	,,
३२२६०	श्रीयुत भगवतप्रसाद, पो० खुसरूपुर	,,
३२२६१	श्रीयुत चैनसिंह राजपूत, पो० लकवा (सिवसागर)	,,
३२२६२	चौधरी मूलचन्द रतनचन्द जैन, पो० गोटेगाँव (होशङ्गाबाद)	,,

ग्राहक-नम्बर	पता	प्राप्त रक़म
३२२६३	जोशी सुरेशचन्द जी, रामगढ़	६॥)
३२२६४	लाइब्रेरियन सिटी रिडिङ्ग रूम और लायब्रेरी, मुलतान सिटी	३॥)
३२२६५	श्री० एम० आर० विद्यार्थी, पो० बालोदा बाज़ार (रायपुर)	६॥)
३२२६६	मिसेज़ आर० एस० पं० श्यामसुन्दर लालधर, श्रीनगर (काश्मीर)	,,
३२२६७	श्री० जे० आर० मेहता, पो० मेतूर प्रोजेक्ट	,,
३२२६८	श्रीयुत बी० एम० खण्डाकर, लोहिया बाज़ार, लश्कर	,,
३२२६९	कुमारी शीलकुमारी (झाँसी)	,,
३२२७०	एम० एस० गोपालकृष्ण सेठी, पो० चिन्तामणी	३॥)
३२२७२	बा० कमलाप्रसाद पाँडे ज़मींदार, पो० खीरहर (दरभङ्गा)	,,
३२२७३	श्रीयुत लेखराज शिव, फ़िरोज़पुर	६॥)
३२२७४	बा० कुन्दनलाल, पो० मोहन (उन्नाव)	३॥)
३२२७५	श्रीमती सुशीलादेवी, खगौल, दीनापुर (पटना)	३॥)
३२२७६	श्रीयुत के० एन० सोलङ्की, थाना	६॥)
३२२७७	मेसर्स पहलवानसिंह दौलतसिंह, मु० पो० दरयापुर	,,
३२२७८	श्रीयुत लक्ष्मीचन्द जैन, कानपुर	,,
३२२७९	पं० नन्दलाल शर्मा, नाथद्वारा	३॥)
३२२८०	श्रीयुत भगवतीप्रसाद, पो० जलालाबाद	,,
३२२८१	श्रीयुत निरञ्जनलाल, भिवानी (हिसार)	,,
३२२८२	श्री० करीकन्दप्रसाद सिंह, पो० बरहीया (मुङ्गेर)	,,
३२२८३	श्रीयुत धनवन्तनारायण चड्ढा, इलाहाबाद	,,
३२२८४	श्रीयुत धर्मकीर्ति अग्रवाल, मुरादाबाद	६॥)
३२२८५	श्रीयुत किशोरीलाल अरोरा, ग़ाज़ियाबाद	,,

ग्राहक-नम्बर	पता	प्राप्त रक़म
३२२८६	मिसेज़ सी० शान्ता अग्निहोत्री, लाहौर	६॥)
३२२८७	श्रीयुत जगदीशबिहारी माथुर, पो० राथ	,,
३२२८८	श्रीमान् जगन्नाथप्रसाद ज़मींदार, छिरौना, चिरगाँव (झाँसी) ...	,,
३२२८९	श्रीयुत पुष्पराज भाटोडिया, भागलपुर	३॥)
३२२९०	श्रीयुत रतनसिंह, पूना, लश्कर ...	६॥)
३२२९१	बी० मेकमीलन बी० ए०, हाट पीपलिया	,,
३२२९२	श्रीमती मेहरा कुमारी शर्मा, (एटा)	,,
३२२९३	श्रीयुत रामफलसिंह, येननग्याङ्ग (बर्मा)	३॥)
३२२९४	मेसर्स हरीदास नारायणदास भाटिया, नाथद्वारा (मेवाड़) ...	६॥)
३२२९५	मिस सन्तोष मोंगिया, डेरा इस्माइल ख़ाँ	,,
३२२९६	श्रीयुत आर० डी० सिंह वर्मा, पो० नेवरा (रायपुर)	,,
३२२९७	डॉक्टर ए० एन० भाला, उगपड़ा ...	६॥=)
३२३००	सेक्रेटरी, श्रीजैन स्वेताम्बर तिरपन्थी पुस्तकालय, मु० राजगढ़ (बीकानेर)	३॥)
३२३०२	श्रीमती विमला देवी, छपरा ...	६॥)
३२३०३	श्रीयुत हरीराम पिटी, पाली मारवाड़	,,
३२३०४	चौधरी किशनसिंह शर्मा, मु० पो० अहेरीपुर (इटावा)	,,
३२३०५	मिसेज़ के० एन० बानचू, मुज़फ़्फ़रनगर	,,
३२३०६	श्रीमती एस० शकुन्तला देवी, गुण्टूर (आन्ध्र देश)	,,
३२३०७	डॉक्टर चण्डीप्रसाद, मुरादाबाद ...	,,
३२३०८	श्रीयुत बेनीप्रसाद श्रीवास्तव, पो० गढ़ी	,,
३२३०९	श्रीयुत रामाशीषसिंह, बाँकीपुर ...	३॥)
३२३१०	सोसल सर्विस लीग, मोमबासा ...	८॥)
३२३११	श्रीमती चन्द्रानीदेवी, घाटसीला ...	१॥=)
३२३१२	सेक्रेटरी, सोसल एण्ड रिक्रीएसन क्लब, चीनहील (बर्मा) ...	६॥)
३२३१४	सेक्रेटरी, लोकहितकारिणी पुस्तकालय, पो० कुजाही (गया)	५)
३२३१५	श्रीयुत रामेश्वरप्रसाद पाँडे, पो० मक्कुआ (बलिया)	३)
३२३१६	श्री० महेन्द्रनारायण सिनहा, भागलपुर	३॥)
३२३१७	श्री० एस० डी० शर्मा, पो० वेटलेट	६॥)
३२३१८	बा० रणवीरसिंह, पो० थास्टका (बर्मा)	३॥)
३२३१९	श्रीयुत विक्रमसिंह, पो० थोचे ...	६॥)

ग्राहक-नम्बर	पता	प्राप्त रक़म
३२३२०	सेक्रेटरी, बिहार हितकारिणी लायब्रेरी, पटना	६)
३२३२१	श्रीयुत केशरचन्द बंसल, आगरा सिटी	६॥)
३२३२२	मेसर्स मामराज मनीराम, कानपुर ...	,,
३२३२३	श्रीयुत करनसिंह, पो० बाबूगढ़ (मेरठ)	,,
३२३२४	सेक्रेटरी, विद्यानन्द राजीशाला जकोबा-बाद	६)
३२३२५	मे० घासीमल कल्याणदास, उज्जैन	३॥)
३२३२९	श्रीयुत होशियारसिंह वैद्य, पो० लाहौरी सराय (मेरठ) ...	५)
३२३३०	श्रीयुत जगन्नाथप्रसाद, नैनीताल ...	६॥)
३२३३१	मिसेज़ पण्डित कृष्णस्वरूप ओझा, मु० पो० बोझा (इटावा) ...	,,
३२३३३	श्रीयुत रणछोरदास खत्री, जोधपुर (मारवाड़)	३॥)
३२३३४	श्रीमती सीतादेवी, मुज़फ़्फ़रपुर ...	,,
३२३३५	सेक्रेटरी, हरिजन पुस्तकालय मु० राजाडीह, पो० छतमी ...	६॥)
३२३३६	दीवान हरिकिशनदास, लाहौर ...	३)
३२३३७	श्रीयुत देवीशरण, अजमेर ...	६॥)
३२३३८	ठाकुर श्यामसुन्दरसिंह, पो० गौरी-बाज़ार (गोरखपुर)	,,
३२३३९	बाबू जमुनाप्रसाद, पो० हरौली ...	,,
३२३४०	श्रीमती स्नेहलता देवी, खरगपुर ...	,,
३२३४१	श्रीयुत एन० मोहन, पो० दरगाह हुसेन शाह वली	,,
३२३४२	श्री० अमरनाथ अग्रवाल, फ़ीरोज़पुर कैण्ट	,,
३२३४३	श्री० जरीवान्धव पाँडे, बस्ती ...	,,
३२३४४	श्रीयुत एच० पी० थप्पा, टाँगी ...	,,
३२३४५	ऑनरेरी सेक्रेटरी, विक्टोरिया एडवर्ड हॉल, मथुरा	,,
३२३४६	श्रीमती शकुन्तला देवी, गन्तूर (मद्रास)	,,
३२३४७	बाबू नन्दकिशोर मेहता, पो० बहुबरात	,,
३२३४८	श्रीमती उर्मिला देवी, पो० भगया	,,
३२३४९	कुँवर गनेशलाल जी बपना, उदय-पुर (मेवाड़)	,,
३१३५०	ऑनरेरी सेक्रेटरी श्रीयुत सुमतिरत्न सूरी, जैन लायब्रेरी, कैरा ...	,,

ग्राहक-नम्बर	पता	प्राप्त रक़म
३२३५२	श्रीयुत जनकनारायण, पो० देवधा (दरभङ्गा)	३॥)
३२३५३	श्रीयुत टी० सी० गुप्त, छिन्दवाड़ा ...	६॥)
३२३५४	मैनेजर, श्रीब्रह्म पुस्तकालय, पो० गजनेर (कानपुर)	५)
३२३५६	श्रीमती हुक्मकुमार जी, किशनगढ़ स्टेट	६॥)
३२३५७	बाबू दुर्गाप्रसाद, वकील, राधाकुण्ड, गोंडा	,,
३२३५८	श्रीयुत अमृतलाल, गुना ...	,,
३२३५९	श्रीयुत जे० पी० बघेल, बालोदा बाज़ार	८॥)
३२३६१	श्रीयुत सूर्यनाथ गुप्त पो० मधुबन (आज़मगढ़)	३॥)
३२३६२	मिस सुशीला देवी पुरी, अमृतसर	६॥)
३२३६३	कुमारी कौशल्या देवी, पो० छबरपुर (देहरादून)	,,
३२३६४	अखौरी योगेश्वरी चरणलाल पो० सिमडेगा, (राँची)	,,
३२३६५	सेक्रेटरी डिबेटिङ्ग क्लब शेरघाटी (गया)	३॥)
३२३६७	श्रीयुत जगविशुनप्रसाद झरिया, (मानभूम)	६॥)
३२३६८	श्रीयुत रामसरन दास, पो० तलम्बा (मुलतान)	३॥)
३२३७०	डॉक्टर रामनारायण, कानपूर ...	६॥)
३२३७१	बाबू नन्दलाल जी सरदार, पटना सिटी	,,
३२३७२	डॉक्टर छतरबिहारी लाल जी, ड्रोल	,,
३२३७३	श्रीयुत जलहरीशङ्कर, कसेरा दिल्ली	६॥)
३२३७४	मिसेज़ के० एल० कपूर, लाहौर कैन्ट	,,
३२३७७	सेक्रेटरी नवजीवन पुस्तकालय, सहारनपुर	५)
३२३७८	श्रीयुत आर० एन० गुप्त, पो० ठकुरिया	६॥)
३२३७९	श्री० तारनीप्रसाद, भागलपुर ...	,,
३२३८०	मेसर्स उगरसेन पुरुषोत्तमदास, हापुड़	,,
३२३८१	श्रीयुत राधाकिशन, पो० रतनवाड़ा ..	,,
३२३८३	श्रीयुत गोपालनारायण, दिल्ली ...	,,
३२३८५	श्रीयुत शिवनाथप्रसाद, बनारस ...	,,
३२३८७	मेसर्स एच० एन० सिंह एण्ड ब्रादर्स, फ़ीजी आइलैण्ड	९)
३२३८८	श्रीयुत गुरुदेवप्रसाद, हाजीपुर (मुज़फ़्फ़रपुर)	६॥)
३२३८९	मिस्टर चन्द्रभान, नुसकी (बलूचिस्तान)	,,

ग्राहक-नम्बर	पता	प्राप्त रक़म
३२३९०	मेसर्स रामलाल जगन्नाथ, मु० पो० करनजा	६॥)
३२३९१	श्री० एच० एस० गोंध, शाहपुर सिटी	३॥)
३२३९२	श्रीयुत रघुवीरप्रसाद जी, पो० राजमहल	३॥)
३२३९३	श्रीयुत एच० कृष्ण, जलन्धर सिटी	६॥)
३२३९४	श्रीयुत विश्वनाथ बाजपेयी, मण्डला...	,,
३२३९५	बाबू मथुराप्रसाद सिनहा, मु० गोपालपुर, पो० बोधा (भागलपुर) ...	,,
३२३९६	श्रीयुत बच्चूनारायण, पो० रामगढ़ (हज़ारीबाग़)	,,
३२३९८	श्री० दीनबन्धु संस्था, पो० भगवानपुर (मुज़फ़्फ़रपुर) ...	५)
३२३९९	श्रीयुत सुगनचन्द, आगरा ...	६॥)
३२४००	श्रीयुत दीनदयाल एडवोकेट, इलाहाबाद	,,
३२४०१	श्रीयुत कमलाप्रसाद, आगरा ...	,,
३२४०२	श्री० के० जी० अग्रवाल, राजपुर बारवानी स्टेट	,,
३२४०३	डॉक्टर प्यारेलाल वर्मा (हिसार)	३॥)
३२४०४	सेठ झूमरमल लूनकरन, बालाघाट	,,
३२४०५	श्रीयुत रामलखण शुक्ल, मण्डले बर्मा	,,
३२४०६	श्रीयुत द्वारकासिंह, रङ्गून ...	,,
३२४०७	प्रेसिडेन्ट, स्कूल लायब्रेरी, सेन्धवा	६॥)
३२४०८	श्रीयुत वी० डी० गोपाल, मुदालियर, लउटोका फ़ीज़ी	८॥=)
३२४०९	सेक्रेटरी राजकीय देहाती वाचनालय एण्ड पुस्तकालय, भानपुरा ...	६॥)
३२४१०	श्रीमती कमला राठी, अमरावती	,,
३२४११	श्रीयुत इन्द्रजीत, राम चौक पेशावर सीटी	,,
३२४१२	हेड मास्टर ट्रेनिङ्ग स्कूल पो० माहेन्द्रू (पटना)	६)
३२४१३	श्रीयुत एल० सिनहा, पो० बोकारो (मानभूम)	३॥)
३२४१४	सेक्रेटरी श्रीसनातनधर्म पुस्तकालय, सिरसागनी (मैनपुरी) ...	५)
३२४१५	सेक्रेटरी शान्ति कुटी लायब्रेरी, गुलज़ार बाग़, पटना	५)
३२४१६	श्रीयुत पन्नालाल पुरोहित, पो० नामली (रतलाम)	३॥)
३२४१७	श्रीयुत तारादत्त, करनाटक, सिपरी बाज़ार, झाँसी	६॥)

ग्राहक नम्बर	पता	प्राप्त रक़म
३२४१८	श्रीयुत शाहीन्द्रसिंह, पठानकोट ...	६॥)
३२४१९	श्रीयुत बी० गाज़ी, सुवा, फ़ीजी आइलैण्ड	७॥।≡)
३२४२०	श्रीमती कमलादेवी अग्रवाल, फ़िरोज़-पुर सिटी	६॥)
३२४२१	श्रीयुत केशवजी बसनजी, गिरगाँव बम्बई नं० ४	,,
३२४२२	श्रीमती सोना देवी, बस्ती ...	,,
३२४२३	मिसेज राजेन्द्रलाल, लण्डन ...	८॥)
३२४२४	कुमारी श्यामादेवी, इलाहाबाद ...	५॥)

निम्न-लिखित पुराने ग्राहक-नम्बर के ग्राहकों के रुपए हमें मिले हैं :—

ग्राहक-नं०	प्राप्त रक़म	ग्राहक-नं०	प्राप्त रक़म
२४१६७	६॥)	२४४४५	६॥)
२४८४७	,,	२३९०५	,,
२४६६१	,,	१२७९९	,,
२२९२५	,,	२२०७९	,,
२६०६७	,,	२७४६७	,,
२८८६६	,,	३०९७४	,,
३०९०९	,,	१६९०९	,,
१६८५४	,,	२२८३९	,,
१६७२३	,,	१६६०९	,,
१६५३१	,,	१६४८०	,,
१६४७१	,,	१६१४८	,,
२४९४२	,,	२४८९०	,,
२४८४२	,,	२४७९२	,,
२४६९८	,,	२४५०४	,,
२४४४९	,,	२४३८७	,,
२४३८०	,,	२४३७२	,,
२४३६५	,,	२४३३८	,,
२२३०९	,,	२४२७९	,,
२४२१५	,,	२४०१५	,,
१०१३७	,,	१२५९३	,,
३४२८	,,	१५६१	,,
३०२०३	,,	२७८९३	,,
६९१	,,	२७८२९	,,
२७७२८	,,	२४३४१	,,
२९९५७	३॥)	२९०४४	३)
१९६१६	६॥)	१७०५७	६॥)

ग्राहक-नं०	प्राप्त रक़म	ग्राहक-नं०	प्राप्त रक़म
१६५९१	६॥)	१६९६४	६॥)
१६९६८	,,	२७९४६	,,
२७९५७	,,	२७८६५	,,
५३७९	,,	५५२४	,,
१२७५१	,,	१२९६२	,,
८१४१	,,	८१३९	,,
३०२११	,,	३०२९४	६)
२४७३०	,,	२४७३२	६॥)
२५०७२	,,	२४९९४	,,
३५१०	,,	७८२	,,
९८६	,,	१९८०	,,
१४०९	,,	११४७	,,
३६१०	,,	२५९०७	,,
१२९६१	,,	३०१९९	,,
३०२३२	,,	११७६	,,
११३४	,,	२७६२७	,,
२७६९२	,,	२७७८२	,,
२७८५५	,,	२९१९३	,,
२५९०७	,,	२५०९१	,,
२५७७३	,,	२४६५२	,,
२८११०	,,	२७८२६	,,
२७८२४	,,	२७८९५	,,
११६१	,,	१०९२	,,
३००७२	,,	२८२६९	,,
५५७७	,,	१९४७८	,,
३०२८२	,,	३०२०१	,,
३०२९९	,,	३०११०	,,
१७०३७	,,	१२८७५	,,
१४८३९	,,	२०४५	,,
१६८२८	,,	३५३३	,,
३६३७	,,	२०७६	,,
३५२०	,,	३५२९	,,
२०३०	,,	१३४९	,,
१०८८	,,	१७०८२	,,
२५८७३	,,	१६८८२	,,
१२८५०	,,	१२८८६	,,
१२७७८	,,	४२८८	,,
६७१२	,,	२०१४	,,
३६४८	,,	३५२४	,,
११०६	,,	३०१६९	,,

ग्राहक-नं०	प्राप्त रक़म	ग्राहक-नं०	प्राप्त रक़म	ग्राहक-नं०	प्राप्त रक़म	ग्राहक-नं०	प्राप्त रक़म
११०६	६॥)	३०२४९	६॥)	३०२३५	६॥)	३०२९७	६॥)
३१२१३	,,	३०२५३	,,	३०२५९	,,	३०१८२	,,
५३६९	,,	२९१४७	,,	३०१५१	,,	१६१६३	,,
२७९८८	५)	२७७७५	,,	११७४	,,	३५८४	,,
२७७१३	६॥)	२७९५६	,,	११६५	,,	१७०७८	,,
३७८०६	,,	२७९१४	,,	१७२७५	,,	१७०६६	,,
२७९६१	,,	२४८७५	,,	१६९४०	,,	१२९०१	,,
२४६८७	,,	२४६९९	,,	१२३२३	,,	२७९५२	,,
२५१०८	,,	२४९६३	,,	२८३२९	,,	३११०९	,,
२४९३०	,,	३१२०३	३॥)	८२२६	,,	८२७९	,,
२८००१	,,	२८०००	६॥)	१०४४२	,,	३६४४	,,
२६५८२	,,	१०५१९	,,	२६१७	,,	१०६६	,,
८१५६	,,	८१५४	,,	१७१६६	,,	२४७२९	,,
८०५५	,,	३०१७०	,,	२४९७८	,,	२५२९३	,,
३०२६३	,,	३०१९२	,,	२५१०७	,,	२४७५३	,,
३०२२७	,,	३०१८३	,,	२४६४३	,,	२६०४७	,,
३०१२८	,,	३१०७५	,,	२५४२५	,,	२५८२८	,,
३१३३४	,,	१७३२९	,,	२७९८६	,,	२७७०४	,,
२९२५०	,,	२४८७३	,,	३११४३	,,	३०१९३	,,
२५०८८	,,	२४८८४	,,	३०२५३	,,	३०२१०	,,
२४६८२	,,	२४७७१	,,	३०३०२	,,	३१०८५	,,
२४८१५	,,	२४५६५	,,	३०३००	,,	३१२७९	,,
११३९	,,	१९६४	,,	३०१६४	,,	२७९२३	,,
२००१	,,	११२८	,,	२७९२१	,,	२९८११	,,
३३४८	,,	३०९५८	३॥)	२८०९०	,,	५५७९	,,
१६८३२	,,	१६८२८	६॥)	१२७४४	,,	१२३८१	,,
१६९३९	,,	१७०१६	,,	१२५७६	,,	१२८८२	,,
१७०५६	,,	१७१६१	,,	२२३५४	,,	२३०९९	,,
२५८४६	,,	१२८१६	,,	१६९३७	,,	१६७०१	,,
१२९०६	,,	१२९३०	,,	३११२५	३॥)	३६०७	,,
१२८३४	,,	१२९५४	,,	१७०७९	६॥)	३०२२४	,,
२५४१८	,,	२५२८८	,,	२७८५७	,,	२७९०९	,,
२५००३	,,	२७८४४	,,	२७९४९	,,	२७९८३	,,
२७९०१	,,	२७७९५	,,	२४९२२	,,	२४८०७	,,
२७८३९	,,	२७७९३	,,	२५११२	,,	३००९५	,,
५५२२	,,	२५१६१	,,	३०३४६	,,	१०९८	,,
२७२४४	,,	२५२१६	,,	३३७५	,,	२९८०९	,,
२५२६२	,,	२४९९९	,,	२९०६७	,,	३११९४	,,
५४१४	,,	४२६५	,,	२६२०२	,,	३११७९	,,
३००९८	,,	३०२५१	,,	१४१५३	,,	१६७६९	,,

ग्राहक-नं०	प्राप्त रक़म	ग्राहक-नं०	प्राप्त रक़म
८०४२	६॥)	२५३४८	६॥)
१२६८७	,,	१४४२६	,,
१३१५१	,,	६७०६	,,
३०१२४	,,	३०२४१	,,
२४८५६	,,	२५१२५	,,
३१४०५	३॥)	१७००१	,,
१२९२५	६॥)	४४७२	,,
३१२३८	,,	२४६०६	,,
२७७७६	,,	२५८७५	,,
२०५२५	,,	२७८६३	,,

निम्न-लिखित ग्राहक-नम्बर के ग्राहकों को आगामी मास का 'चाँद' वी० पी० द्वारा पहले सप्ताह में भेजा जायगा। ग्राहकों को चाहिए कि वी० पी० भेजने के पहले ही आगामी वर्ष का चन्दा मनीऑर्डर से भेज दें या वी० पी० पहुँचने पर उसे स्वीकार कर लें।

६७८ ६६७ ८२२ १४२६ २१८४ २२३८ २२४७
२२५८ २२७६ २३१० २३३० २५६५ २६७३ ३४१५
३५६३ ३७०६ ३८०१ ३८०२ ३८१२ ३८२० ३८३३
३८५६ ३८६३ ३८६६ ३८७७ ३८७८ ३८८४ ३८६२
३६१५ ३६४८ ३६६७ ३६८७ ३६८८ ३६६२ ४०२४
४०७६ ४०६० ५७६६ ५७८७ ५८०६ ५८३३ ५८४६
५८५३ ५८६४ ५८८७ ५८८६ ५६०२ ५६०४ ५६०५
५६२५ ५६२६ ५६२७ ५६३२ ५६६८ ५९६४ ६००४
६००८ ६०२१ ६०५२ ६०२७ ६३०२ ६३३२ ६३४६
६५६७ ६७५५ ६७६८ ६७७० ६६३२ ७३५० ८५७६
६७५५ ८८६१ ८८७२ ८८७६ ८६४४ ८६५० ६०३६
६०४६ ६०५४ ६०५६ ६०८६ ६१३६ ६१३७ ६१६७
६१६१ ६१६३ ९२२८ ६२६६ ६२७३ ६३०९ ६३१०
६३२२ ६३२५ ६३२६ ६३७० ६३८१ ६३८८ ६४०३
६३०६ ६४१४ ६४३५ ६४६१ ६४६३ ६५२३ ६५५३
६६७८ ६७७५ ६६६२ १०१७६ १०२३७ १०२८७
१०६४८ ११०२२ ११५१४ ११७८६ ११८३४ १२०००
१२०३१ १२५१६ १३११२ १३१२७ १३१७१ १३१६१
१३१६८ १३२०० १३२०३ १३२४१ १३२५५ १३२५७
१३२८४ १३२६८ १३२६६ १३३०७ १३३०८ १३३१५
१३३१७ १३३३४ १३३३५ १३३५१ १३३६२ १३३७०
१३३७२ १३३८८ १३४०१ १३४०४ १३४२२ १३४२८
१३४४७ १३४७५ १३४७७ १३४६० १३५०१ १३५२४
१३५२७ १३५४४ १३५६६ १३६१८ १३६८० १३६३७
१४६४२ १३६४६ १३६६४ १३६७४ १३७१५ १३७४३
१३८७६ १४०६२ १४०६३ १४१५५ १४१६० १४१६४
१४२५२ १४२६८ १४७६७ १४८७४ १४६६६ १५१२६
१५१६४ १५२६५ १७१८१ १७१८३ १७१८४ १७१८८
१७१८६ १७२६० १७२८५ १७२६३ १७२६५ १७२६७
१७३५० १७३५४ १७३५६ १७३६२ १७४०६ १७४१२
१७४२२ १७४२४ १७४२७ १७४२८ १७४३१ १७४५१
१७४५२ १७४५३ १७४५५ १७४८१ १७४६१ १७५१८
१७५१६ १७५२३ १७५३१ १७५३३ १७५६० १७५६७
१७५७३ १७५७६ १७५८५ १७५८७ १७५९१ १७६११
१७६२१ १८६३० १७६४० १७६४२ १७६४७ १७६५०
१७६५२ १७६५४ १७६५६ १७६७१ १७६७८ १७६७६
१७६८२ १७६८८ १२६६६ १७६६७ १७६९८ १७६६६
१७७०० १७७०६ १७७१३ १७७१४ १७७१५ १७७१८
१७७२१ १७७२२ १७७२६ १७७३८ १७७३६ १७७४३
१७७४४ १७७४६ १७७४७ १७७४६ १७७५६ १७७५६
१७७६१ १७७६२ १७७६३ १७७६६ १७७६८ १७७६६
१७७७२ १७७७४ १७७८४ १७७८८ १७७६० १७७६४
१७८०१ १७८१३ १७८२६ १७८२७ १७८४३ १७८५३
१७८५४ १७८५८ १७८६० १७८६१ १७८६५ १७८६६
१७८६८ १७८६६ १७८८२ १७८८४ १७८८८ १७६०४
१७६१० १७६३२ १७६३३ १७६४१ १७६४४ १७६४६
१२६४६ १७६५० १७६७१ १७६७२ १७६७७ १७६८०
१७६६१ १८०१४ १८०१६ १८०२० १८०२१ १८०२४
१८०२६ १८०३३ १८०३४ १८०३७ १८०३६ १८०४०
१८०४१ १८०४६ १८०४७ १८०४८ १८०५० १८०५१
१८०६३ १८०६४ १८०६६ १८१०६ १८१०८ १८१०६
१८११० १८११३ १८११४ १८१२० १८१२४ १८१२७
१८१२८ १८१३७ १८१५३ १८१५७ १८१५८ १८१५६
१८१६० १८१६० १८२०१ १८२०२ १८२०३ १८२१३
१८२२३ १८२६३ १८२६८ १८२६० १८२६४ १८३०४
१८३२८ १८३५२ १८४४८ १८४८४ १८५६० १८६१५
१८६२२ १८७०० १८७०१ १८७०२ १८७०५ १६६८२
२२००३ २५२४४ २५३५४ २५४५८ २५४५६ २५४६२
२५४६६ २५५४१ २५५४६ २५५८८ २५५८६ २५५६६
२५६०५ १५६१० २५६११ २५६१३ २५६१८ २५६३३
२५६३६ २५६४० २५६४६ २५६४६ २५६५३ २५६५४
२५६५६ २५६५८ २५६६४ २५६६५ २५६६८ २५६७२
२५६८१ २५७०३ २५७०४ २५७०५ २५७१२ २५७१३
२५७१५ २५७२५ २५७२६ २५७२८ २५७३६ २५७५२
२५७६७ २५८१६ २५८३६ २५८३७ २५८५४ २५८५६
२५८६८ २५९११ २५९१३ २५९१७ २५९३० २५९३८

२५९४९ २५९६५ २५९६७ २५९६९ २५९८२ २५९८४
२५९८९ २५९९७ २६०१२ २६०१८ २६०६१ २६१५८
२६१६४ २६७०० २६७०९ २६७३४ २६८३० २७२९१
२७७४९ २८०५२ २८१२१ २८१४८ २८१५२ २८१७६
२८१७७ २९१८३ २८१८४ २८१८६ २८१८९ २८१५८
२८२०३ २८२१८ २८२२१ २८२३४ २८२३५ २८२४०
२८२४२ २८२४३ २८२४६ २८२४८ २८२५४ २८२७३
२८२७७ २८२७९ २८२९० २८२९२ २८२९३ २८२९५
२८२९८ २८३०३ २८३११ २८३१२ २८३१३ २८३१७
२८३१९ २८३२३ २८३२४ २८३३१ २८३३४ २८३३६
२८३४५ २८३५१ २८३५३ २८३६४ २८३६६ २८३६७
२८३७० २८३७७ २८३८६ २८३९३ २८३९४ २८४४४
२८४४७ २८४४९ २८४५० २८४६३ २८५१२ २८६८४
२९२५४ २९३६४ २९४२२ २९४७२ २९४८७ २९४९१
२९४९२ २९५७५ २९५८७ २९६०० २९७०० २९९१६
३००१३ ३०३६९ ३०३७० ३०३७३ ३०३७५ ३०३८१
३०३८२ ३०३९१ ३०३९२ ३०३९४ ३०३९९ ३०४०४
३०४०६ ३०४०७ ३०४०९ ३०४१० ३०४१५ ३०४२०
३०४२१ ३०४२२ ३०४२४ ३०४२६ ३०४२७ ३०४२८
३०४२९ ३०४३४ ३०४३५ ३०४३६ ३०४३७ ३०४३८
३०४४० ३०४४१ ३०४४३ ३०४५० ३०४५१ ३०४५३
३०४५४ ३०४५५ ३०४५७ ३०४५८ ३०४६१ ३०४६२
३०४६३ ३०४६५ ३०४६६ ३०४७२ ३०४७३ ३०४७४
३०४७५ ३०४७६ ३०४७७ ३०४८१ ३०४८५ ३०४८६
३०४८७ ३०४८८ ४०४८९ ३०४९३ ३०४९४ ३०४९५
३०४९६ ३०४९७ ३०४९८ ३०५०१ ३०५०७ ३०५१२
३०५१३ ३०५१४ ३०५१५ ३०५१९ ३०५२० ३०५३१
३०५३३ ३०५३४ ३०५४३ ३०५४६ ३०५५४ ३०५५५
२५८५८ ।

निम्न-लिखित ग्राहक-नम्बर के ग्राहकों के पते बदल दिए गए हैं :—

२९९५६ १६३०० २८८७९ ३१४९२ ३१६१९ ३०३४०
३१४५१ ३१८०० २५६११ ३१४२४ ३२०३४ १८१०६
३११३३ १४०३४ २९६०४ २७८९३ ३१०५६ ४२८९

निम्न-लिखित ग्राहकों को फ़रवरी १९३३ का अङ्क दुबारा भेजा गया है :—

३०४९१ ८५७० २९८७२ १२९०१ २०६६३ ७६७४
२८०२६ १७३२८ २८०३१ २४८८४ २५०२६ ३१०८१
२६९२५ २८०२५ २६३३३ ३०७२० १३९८९ १३९००
२८३५७ २५६१३ २६२७१ २७१७६ ३१४७७ २२३४३
३१९८८ १९९६३ ११०४६ ३३७१ ६०५ २६८२२
२७४३६ २७४७३ ।

अमृतांजन

सर्वश्रेष्ठ दर्द-नाशक भारतीय महौषध। सिर-दर्द, जलन, पीड़ा, फोड़ा, सूजन, कटना, घाव, बात, गठिया, कमर का दर्द, सर्दी, खाँसी, कीड़ों का डङ्क आदि सभी वेदनाओं में "अमृताञ्जन" आश्चर्य-जनक फ़ायदा करता है।

अमृताञ्जन डिपो—

बम्बई, मद्रास, कलकत्ता

सोल-एजेण्ट—

बेनीप्रसाद लक्ष्मीनारायण
चौक, इलाहाबाद।

सूचनार्थ निवेदन है

"मेरी भतीजी ६ महीना राज्यक्षमा (तपेदिक़) रोग से पीड़ित थी। श्री० स्वामी अमृतानन्द जी महाराज जो १६ सेण्ट जेम्स लेन नीबूतल्ला (बहु-बाज़ार) फ़ोन ३५२३ कलकत्ता में रहते हैं, उन्होंने उसे सिर्फ़ डेढ़ महीना के अन्दर ही बिलकुल अच्छा कर दिया। हालाँकि कलकत्ते के सब डॉक्टरों ने जवाब दे दिया था। परमात्मा स्वामी जी को अधिक दिन तक जीवित रक्खे और वे उपकार कर सकें।" भवदीय, ज्योतिष-चन्द्र सेन, पो० बरीसा, २४ परगन तारीख़ ५ अगस्त, १९३२।

मनुष्य मात्र के लिए उपयोगी पुस्तक

आरोग्य-प्रकाश

ग्रन्थ का प्रत्येक अक्षर मूल्यवान है। एक-एक बात हज़ारों रुपयों का काम देगी। कसरत, भोजन, जलवायु, आहार आदि विषयों को पढ़ के निरन्तर बीमार रहने वाला रोगी भी बिना किसी दवा के निरोग हो जायगा। प्रत्येक रोग का कारण, चिकित्सा, पथ्य आदि सरल भाषा में ऐसे अनुभव-सिद्ध लिखे हैं कि मामूली पढ़ा-लिखा भी वैद्य बन सकता है। सुन्दर छपाई, एन्टिक काग़ज़ ३२० पृष्ठ की पुस्तक की क़ीमत सिर्फ़ १) सुनहरी जिल्द १।)

पता—श्री वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन

पो० ब० ६८३५; कलकत्ता

(नोट—बुकसेलरों को काफ़ी कमीशन दिया जायगा)

आश्चर्य नहीं, धोखा नहीं, बिलकुल सच है
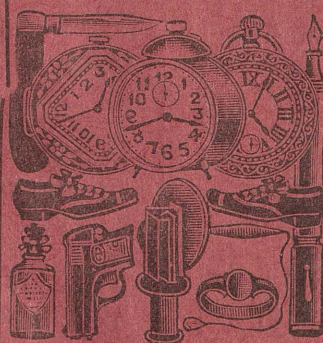
२ घड़ियाँ और सब सामान सिर्फ़ ३॥) में। हमारा ओटो दिल-ख़ुश, जो ताज़े फूलों का निकाला हुआ सार है, अपनी मस्तानी ख़ुशबू से दिल को मस्त और दिमाग़ को तर रखता है, ३० शीशी ३॥) में एक साथ ख़रीदने वाले को १ जर्मन 'बी' टाइमपीस गारण्टी १० साल, १ इनफ़ैण्ट पॉकेटवाच और १ आइडियल रिस्टवाच मय फ़ीता के, १ क़लम-तराश बढ़िया चाक़ू, १ सोनहरी निब वाला बढ़िया फ़ाउण्टेनपेन, १ पिस्तौल, १ केमिकल गोल्ड रिङ्ग, १ पाकेट चश्मा, १ जोड़ा बढ़िया जूता, जिसका नाप ऑर्डर के साथ आना चाहिए।

नोट—माल नापसन्द होने से ७ दिन के अन्दर माल फिरता लेकर दाम वापस।

पता—सूरजदीन शिवराम

नं० ६२, क्लाइव स्ट्रीट, कलकत्ता

Printed and Published for and on behalf of The Chand Press, Limited, by Munshi Naujadik Lal Srivastava, Editor, at The Fine Art Printing Cottage, 28, Edmonstone Road, Chandralok—Allahabad